कलकत्ता
२०१ हरिसन रोड के "नरसिंह प्रेस" में
पण्डित काशीनाथ जैन,
द्वारा मुद्रित।

प्राग्वचन

जैन ग्रन्थोंमें जो ज्ञानका अक्षय भण्डार भरा पड़ा है, उसके चार विभाग किये गये हैं—द्रव्यानुयोग, कथानुयोग, गणितानुयोग और चरणकरणानुयोग। द्रव्यानुयोग फ़िलासफ़ी अर्थात् दर्शनको कहते हैं। इससे वस्तुओंके स्वरूपका ज्ञान प्राप्त होता है। जीव-सम्बन्धी विचार, षड्द्रव्य सम्बन्धी विचार, कर्म-सम्बन्धी विचार—सारांश यह, कि सभी वस्तुओंकी उत्पत्ति, स्थिति और नाशका तात्त्विक बोध इसमें भरा हुआ है। यह अनुयोग बड़ा ही कठिन है और बड़े-बड़े आचार्योंने इसे सरल करनेकी भी बड़ी चेष्टा की है। इस अनुयोगमें अतीन्द्रिय विषयोंका भी समावेश हो जाता है, इसलिये इसके रहस्य समझनेमें कठिनाई का होना स्वभाविक ही है। इसके बाद ही कथानुयोगका नम्बर आता है। इस ज्ञाननिधिमें महात्मा पुरुषोंके जीवनचरित्र और उनके द्वारा प्राप्त होनेवाली शिक्षाएँ भरी हैं। तीसरे अनुयोगमें गणितका विषय है। इसमें गणित और ज्योतिषके सारे विषय भरे है। चौथे अनुयोगमें चरण-सत्तरी और करण-सत्तरीका वर्णन और तत्सम्बन्धी

विधियाँ दी हुई हैं। इन चारों अनुयोगों पर बहुतसे सूत्रों और ग्रन्थोंकी रचना हुई है। इनमेंसे बहुतेरे तो नष्ट हो चुके हैं। तो भी अभीतक बहुत से जैन ग्रन्थ मौजूद हैं, जिनमें किसीमें तो एक और किसी-किसीमें एकसे अधिक अनुयोगोंका विवेचन किया गया है।

वर्त्तमान ग्रन्थ चरितानुयोगका है। इस तरहके ग्रन्थोंसे साधारण व्यक्तियोंसे लेकर विद्वान् तक एक समान लाभ उठा सकते हैं। सब मनुष्योंका बुद्धिबल एकसा काम नहीं कर सकता। ख़ास करके द्रव्यानुयोगके गहन विषयोंको तो सर्वसाधारण भली भाँति समझ भी नहीं पाते इसके विपरीत कथा-कहानियोंमें सबका जी लगता है। बड़े-बड़े पण्डितोंसे लेकर गँवई-गाँवके रहनेवाले अनपढ़ किसान तक कथा-कहानी कहते, सुनते और पढ़ते हैं। प्रायः देखा जाता है, कि कोई धार्मिक या राजनीतिक व्याख्यान सुनकर घर लौटने पर उसकी कुल बातें मुश्किलसे ही याद रहती हैं, लेकिन कहींसे कोई कथा सुनकर आओ, तो रातको दस-पाँच आदमियोंको तुम स्वयं उसकी आवृत्ति करके सुना सकते हो। मनुष्य-स्वभावका परिचय रखनेवाले शास्त्रकारोंने यही देखकर इससे लाभ उठानेका तरीक़ा निकाला और कथाके छलसे धर्म, ज्ञान, व्यवहार, नीति, चारित्र सम्बन्धी जीवनको उच्चय बनानेवाले नियमोंको मनुष्य-समाजमें प्रचारित करना आरम्भ किया। बड़े-बड़े महात्माओं और महापुरुषोंने किस ढंगसे जीवन व्यतीत कर संसारमें सब तरहके सुख पाये किन किन

गुणोंका अवलम्बन करनेसे उनका जीवन आदर्श बन गया, यही सब बातें बतलाकर मनुष्यके चरित्रकी उन्नति करनेका प्रयास किया गया। इसी चेष्टाके परिणाम स्वरूप कथा-शास्त्र और इतिहासोंकी सृष्टि हुई। इन शास्त्रीय कथाओंमें सभी तरहके गहन विषयोंको सरलताके साथ सर्वसाधारणमें प्रचलित करनेकी चेष्टा की गयी। संस्कृत साहित्यमें ऐसे अनेक गद्य-पद्यमय ग्रन्थ हैं। प्राकृतमें भी बहुतसे ऐसे ग्रन्थ बने। इस कथानुयोग द्वारा मनुष्य-समाजका बड़ा उपकार हुआ है और आगे भी होता रहेगा।

कलिकाल-सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य जैन-धर्मके एक बड़े भारी आचार्य हो गये हैं। उन्होंने ही कुमारपाल राजाको धर्मोपदेश देकर जैनी बनाया था और समस्त देशमें जैन-धर्मकी विजयपताका फहरायी थी। उनके नामसे जैन-धर्मावलम्बी-मात्र भली भाँति परिचित हैं। इन्हीं आचार्य महोदयने राजा कुमारपालके अनुरोधसे 'त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र' नामका एक बड़ा ही उत्तम ग्रन्थ, लोक-कल्याणके निमित्त, लिख डाला। जिस ग्रन्थके रचयिता कलिकाल सर्वज्ञकी पदवी धारण करनेवाले श्री हेमचन्द्राचार्य हों और जो राजा कुमारपाल जैसे श्रेष्ठ आर्हत राजाके बोधके निमित्त लिखा गया हो, उसकी उत्तमता, काव्य-चमत्कार और विषयकी उपयोगिताके सम्बन्धमें भला किसे सन्देह हो सकता है?

आचार्य हेमचन्द्रने इस ग्रन्थमें इतने चरित्रोंका इस खूबीसे समावेश किया है, उनके लिखनेका ढंग ऐसा रोचक और प्रभावोत्पादक है, कि पाठकों और श्रोताओंको उनकी बुद्धिकी विशा-

लता, वर्णनकी शक्ति और प्रतिभाकी अलौकिकता देखकर आश्चर्यमें डूब जाना पड़ता है। आचार्यने इस ग्रन्थको दस भागोंमें बाँटा है। प्रत्येक भाग पर्व कहलाता है। इन पर्वोंमें आचार्यने जैन-सिद्धान्तके सारे रहस्योंको कूट-कूटकर भर दिया है। भिन्न-भिन्न प्रभुओंकी देशनामें नयका स्वरूप, क्षेत्र-समास, जीव-विचार, कर्मस्वरूप, आत्माके अस्तित्व, बारह भावना, संसारसे वैराग्य, जीवनकी चञ्चलता और बोध तथा ज्ञानके सभी छोटे-बड़े विषयोंका इस सरलता और मनोरञ्जकताके साथ इसमें समावेश किया गया है, कि कथानुयोगकी महत्ता और प्रभावोत्पादकता स्पष्टही विदित हो जाती है। इन सब बातोंको पढ़-सुनकर पाठकों और श्रोताओंके मनपर स्थायी प्रभाव पड़ता है और उनकी कर्त्तव्य-बुद्धि जागृत हो जाती है। इस ग्रन्थकी बड़े-बड़े पाश्चात्य विद्वानोंने भी प्रशंसा की है। यह संवत् १२२० में अर्थात् आजसे प्राय, आठसौ वर्ष पहले लिखा गया था।

वर्त्तमान ग्रन्थ उसी 'त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरित्र' नामक महाकाव्यके प्रथम पर्वका अनुवाद है। इसमें ६ सर्ग हैं। पहले सर्गमें श्री ऋषभदेवके प्रथमके १२ भावोंका वर्णन है, जिसमें धर्मघोष सूरिकी देशना ख़ास करके देखने लायक़ है। महाबल राजाकी सभामें मंत्रियोंका धार्मिक संवाद भी ख़ूब ग़ौरके साथ पढ़नेकी चीज़ है। अन्तमें मुनियोंको उपार्जित लब्धियों तथा २० स्थानकोंका वर्णन भी पाठ करने योग्य है।

दूसरे सर्गमें कुलधारोत्पत्ति और श्री ऋषभदेव भगवान्‌के

जन्मसे लेकर दीक्षा लेनेकी इच्छा उत्पन्न होनेतक की कथा लिखी है। प्रारम्भमें कुलकर विमलवाहनके पूर्वभवकी—सागरचन्द्र-की—कथा पढ़ने योग्य है। इसमें दुष्टोंकी दुष्टता और सतीके सतीत्व और दृढ़ताका अच्छा चित्र अङ्कित किया गया है। देव-देवियोंके द्वारा किये हुए प्रभुके जन्मोत्सव और प्रभु तथा सुन-न्दाके रूपका वर्णन बड़े विस्तारके साथ किया गया है। देव-ताओंने भगवान्के विवाहका जो महोत्सव किया था, उसका और वसन्त ऋतुका जो ख़ासा वर्णन इसमें किया गया है, वह कविके गौरवका सच्चा चित्र है।

तीसरे सर्गमें प्रभुके दीक्षा-महोत्सव, केवल-ज्ञान और देश-नाका समावेश किया गया है। चौथेमें भरतचक्रीके दिग्विजयका वर्णन है। यह कथा बड़ी ही मनोरञ्जक है। पाँचवें सर्गमें बाहु-बलिके साथ विग्रहकी कथा है। इसी प्रसङ्गमें सुवेगका दौत्य भी दर्शनीय है। उस ज़मानेके युद्धोंका इसमें ख़ासा चित्र अङ्कित किया गया है। छठे सर्ग में भगवान्के केवली हो जाने पर विहार करनेका वर्णन है। भगवान् तथा भरतचक्रीके निर्वाण तककी कथा इसमें लिखी गयी है। इसमें अष्टापद और शत्रुञ्जय तथा अष्टा-पदके ऊपर भरतचक्रीके बनाये हुए सिंह-निषद्या-प्रसादका वर्णन ख़ास कर पढ़ने योग्य है।

प्रत्येक सर्गमें जहाँ जहाँ इन्द्र तथा भरतचक्री आदिने प्रभुकी स्तुति की है, वह ध्यान देकर पढ़ने योग्य है, क्योंकि उसमें बहुत सी बातें बतलायी गयी हैं।

आज हम पाठकोंके सामने इस महोपकारी ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद उपस्थित करते हुए आशा करते हैं, कि हमारा यह उद्योग उनकी सहायता, उदारता और कृपाका भाजन हो सकेगा। अबतक हिन्दी भाषामें इस ग्रन्थका कोई अनुवाद नहीं था, इसलिये लोग बडे ही लालायित थे। इस कार्यमें हमें बहुत सा श्रम और व्यय उठाना पडा है। आशा है, कि इस ग्रन्थ को अपनाकर हमें इसके अन्यान्य पर्वोंको प्रकाशित करनेके लिये उत्साहित करेंगे।

इस पुस्तक में दृष्टि दोष से अनेक अशुद्धियों एवम् दोषोंका रह जाना संभव है, अतएव मैं आप लोगोंसे इसके लिये क्षमा याचना पूर्वक इसकी त्रुटियोंको सुधार कर पढ़ने के लिये प्रार्थना करता हूँ।

शेष में हम अपनी परम माननीया साध्वी शिरोमणि सोहनश्रीजी तथा विदुषी विनयश्रीजी के पूर्ण उपकृत है, जिन्होंने इस पुस्तकके निमित्त पहले से ग्राहक बनानेकी कृपा की है। अस्तु।

ता० २५ जनवरी १९२४
"नरसिंह प्रेस"
२०१ हरिसन रोड,
कलकत्ता।

आपका—
काशीनाथ जैन।

में आपको आपके पुत्रके केवल ज्ञान होनेके उत्सवकी खबर सुन कर प्रतीति हो जायगी।

भरत का भगवान की वन्दना को चलना।

मरुदेवा की मोक्ष।

इधर दादी पोतेमें यह बातें होही रही थीं, कि इतनेमें प्रतिहारीने महाराज भरतसे निवेदन किया कि महाराज! द्वार पर दो पुरुष आये हुए हैं। उनके नाम यमक और शमक है। राजाने अन्दर आनेकी आज्ञा दी। उनमेंसे यमकने महाराजको प्रणाम कर कहा— "हे देव! आज पुरिमताल नगरके शकटानन बगीचेमें युगादिनाथ को 'केवल ज्ञान' हुआ है। ऐसी कल्याण-कारिणी बात सुनाते मुझे मालूम होता है,—"कि भाग्योदयसे आपकी वृद्धि हो रही है। शमकने कहा—"महाराज! आपकी आयुधशाला या शस्त्रागार में अभी चक्र पैदा हुआ है।" यह बात सुनकर भरत महाराज क्षण-भरके लिये इस चिन्तामें डूब गए, कि उधर पिताजीको केवल ज्ञान हुआ है और इधर चक्र पैदा हुआ है, मुझे पहले किसकी अर्चना करनी चाहिए। कहाँ तो जगतको अभयदान देने वाले पिताजी और कहाँ प्राणियोंका नाश करने वाला चक्र? इस तरह विचार कर, अपने आदमियोंको पहले स्वामीकी पूजा की तैयारीका हुक्म दिया और यमक तथा शमकको यथोचित इनाम देकर विदा किया। इसके बाद मरुदेवा मातासे कहा—"हे देवी! आप सदैव करुण स्वरसे कहा करती थी कि मेरा भिक्षा

र्थंकरपने की लक्ष्मी अपनी आँखों से देखी। उसके देखने से जो आनन्द उत्पन्न हुआ, उससे मरूदेवा देवी तन्मय हो गईं। तत्काल समकाल में अपूर्व्व करण के क्रमसे क्षपक श्रेणी में आरूढ़ हो, श्रेष्ट कर्मको क्षीण कर केवल ज्ञान को प्राप्त हुईं और उसी समय आयु पूरी हो जाने से अन्तकृतकेवली हो, हाथीके कन्धे पर ही अव्ययपद—मोक्ष-पद को प्राप्त हुईं। इस अवसर्पिणी-कालमें मरुदेवा पहली सिद्ध हुईं। उनके शरीरका सत्कार कर देवताओंने उसे क्षीर सागरमे फेंक दिया। उसी समय से इस लोकमें मृतक-पूजा आरम्भ हुई। क्योंकि महात्मा जो कुछ करते हैं, वही आचार होजाता है। माता मरुदेवाकी मुक्ति हो गई यह जानकर मेघ की छाया और सूरज की धूपसे मिले हुए शरद ऋतुके समयके समान हर्ष और शोकसे भरत राजा व्याप्त हो उठे। इसके बाद, उन्होंने राज्य चिह्न-त्याग, परिवार सहित पैदल चलकर, उत्तर के दरवाजे से समवसरण में प्रवेश किया। वहाँ चारों निकायके देवताओंसे घिरे हुए, दृष्टि रूपी चकोर के लिए चन्द्र के समान प्रभु को भरत राजने देखा। भगवान् की तीन प्रदक्षिणा दे, प्रणाम कर, मस्तक पर अञ्जलि जोड़, चक्रवर्त्ती महाराज भरत ने स्तुति करना आरम्भ किया।

भरत द्वारा की हुई प्रभु स्तुति।

“हे अखिल जगन्नाथ! हे विश्व संसार को अभय देने वाले! हे प्रथम तीर्थङ्कर! हे जगतारण! आप की जय हो! आज

परलोक गत श्रीमान् बाबू लक्ष्मीचन्दजी करणावट के
ज्येष्ठ पुत्र बाबू छन्नुलालजी करणावट के पुत्ररत्न
बाबू रिखबदासजी
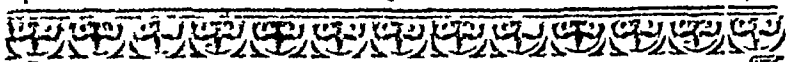
प्रेमोपहार
श्रीमान्

आदिनाथ चरित्र

सकलार्हत्प्रतिष्ठानमधिष्ठानं शिव श्रियः।
भूर्भुवः स्वस्त्रयीशानमार्हन्त्यं प्रणिदध्महे ॥१॥

सारे तीर्थङ्करोंकी प्रतिष्ठा—महिमाके कारण, मोक्षके आधार, स्वर्ग, मर्त्य और पाताल—इन तीनों लोकों के स्वामी "अरिहन्त-पद" का हम ध्यान करते हैं।

खुलासा—जो "अरिहन्त-पद" समस्त तीर्थङ्करों की प्रतिष्ठा का कारण है, जो अरिहन्त मोक्ष या परमपद का आश्रय है, जो स्वर्गलोक, मृत्युलोक और पाताल लोक—इन तीनों लोकों का स्वामी है, हम उसी अरिहन्त-पद का ध्यान करते हैं, अर्थात् हम अनन्त ज्ञानादिक अन्दरूनी विभूति और समवसरण आदि बाहरी विभूति का ध्यान करते हैं।

नामाकृतिद्रव्यभावैः, पुनतस्त्रिजगज्जनम् ।
क्षेत्रे काले च सर्व्वस्मिन्नर्हतः समुपास्महे ॥२॥

समस्त लोकों और सब कालों में, अपने नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव—इन चार निक्षेपों के द्वारा, संसार के प्राणियों को पवित्र करने वाले तीर्थङ्करों की उपासना हम अच्छी तरह से करते हैं।

खुलासा—तीर्थङ्कर क्या करते हैं? तीर्थङ्कर जगतके प्राणियोंको पापमुक्त या पवित्र करते हैं। हां, तीनों लोक और तीनों कालों में तीर्थङ्कर प्राणियों को पवित्र करते हैं, उनको पापों—दुःखों से छुड़ाते हैं। तीर्थङ्कर किसके द्वारा प्राणियों को पवित्र करते हैं? अपने नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चार निक्षेपों† द्वारा। ऐसे संसार को पवित्र करनेवाले तीर्थङ्करों की उपासना या आराधना सभी लोगों को करनी चाहिए। ग्रन्थकार महाशय कहते हैं, जो

†नाम=नाम अरिहन्त=किसी व्यक्ति की अरिहन्त संज्ञा। स्थापना=स्थापना अरिहन्त=अरिहन्त का चित्र या मूर्त्ति। द्रव्य=द्रव्य अरिहन्त=जो अरिहन्त पद पा चुका या पानेवाला है। भाव=भाव अरिहन्त=जो वर्त्तमान काल में अरिहन्त-पद का अनुभव कर रहा है। नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव—ये शब्द के विभाग हैं। इन विभागों को ही "निक्षेप" कहते हैं।

इन चारों निक्षेपों द्वारा तीर्थङ्कर प्राणियोंको पवित्र करते हैं। दूसरे शब्दों में हम यों भी कह सकते हैं कि, हम जगत् के प्राणी अरिहन्तों के नाम, अरिहन्त की मूर्त्तियों या तस्वीरों, अरिहन्त-पद पा चुकने वाले या पाने ही वाले और वर्त्तमान समयमें अरिहन्त-पदका अनुभव करनेवालों द्वारा पवित्र होते हैं।

तीर्थङ्कर जगत् के प्राणियों को पवित्र करते हैं, हम सुन्दर विधि से उन्हीं की उपासना करते हैं।

आदिमं पृथिवीनाथमादिमं निष्परिग्रहम्।
आदिमं तीर्थनाथं च ऋषभस्वामिनं स्तुमः॥३॥

जो इस अवसर्पिणी कालमें पहला ही राजा, पहला ही त्यागी मुनि और पहला ही तीर्थङ्कर हुआ है, उस ऋषभदेव स्वामी की हम स्तुति करते हैं।

खुलासा—इस महीका पहला महीपति कौन हुआ ? ऋषभदेव स्वामी ! इस पृथ्वी पर पहला त्यागी कौन हुआ ? ऋषभदेव स्वामी ! पहला तीर्थ नाथ या तीर्थङ्कर कौन हुआ ? ऋषभदेव स्वामी ! ग्रन्थकर्त्ता-आचार्य कहते हैं—इस संसार के पहले राजा, पहले त्यागी और पहले तीर्थङ्कर ऋषभदेवजी हुए हैं। हम उन्हीं सब से पहले नरेश, सब से पहले त्यागी और सब से पहले तीर्थङ्कर की स्तुति करते हैं।

अर्हन्तमजितं विश्व कमलाकर भास्करम्।
अम्लान केवलादर्श संक्रान्त जगतं स्तुवे॥४॥

जिस तरह सूर्य्य से कमल-वन आनन्दित होता है, उसी तरह जिस से यह सारा जगत् आनन्दित या प्रफुल्लित है, जिसके केवल ज्ञान रूपी निर्मल दर्पण में सारे लोकों का प्रतिबिम्ब पड़ता है, उस अजितनाथ प्रभु की हम स्तुति करते हैं।

खुलासा—जिस अजितनाथ स्वामी से संसार उसी तरह सुखी होता है, जिस तरह कमल-वन सूर्य्य से सुखी या प्रफुल्लित होता है, जिस के ज्ञानरूपी आईने में सारे लोकों—सारी दुनियाओं का प्रतिबिम्ब—अक्स पड़ता है, हम उसी अजित अर्हन्त—अजित नाथ स्वामी की स्तुति करते हैं।

विश्वभव्यजनारामकुल्यातुल्या जयन्ति ताः।
देशना समये वाचः श्रीसंभवजगत्पतेः ॥५॥

जिस तरह नाली का पानी बागीचे के वृक्षों की तृप्ति करता है, उसी तरह श्री संभवनाथ स्वामी के उपदेश-समय के वचन समस्त जगत् के प्राणियों की तृप्ति करते हैं। भगवान् के ऐसे वचनों की सर्वत्र जय जयकार हो रही है।

खुलासा—जिस तरह नाली के जल से बागीचे के वृक्ष और लतापतादि तृप्त होकर प्रफुल्लित हो जाते हैं, उसी तरह श्री सभवनाथजी महाराज के उपदेश देनेके समयके वचनों को सुनकर, ससार के प्राणी, तृप्त होकर, प्रफुल्लित हो जाते है। जिस तरह नाली के जलसे वृक्ष खिल उठते हैं, उनमें चमक-दमक आजाती है, उसी तरह श्री सभवनाथजीके उपदेशामृतको पान करके ससारी प्राणियों के मुरझाये हुए कुन्द दिल खिल उठते हैं, उन के चेहरों पर रौनक आजाती है। उन का भय भग जाता है, चिन्ता दूर हो जाती है। और पाप या दु.ख नौ दो ग्यारह होते है। स्वामी संभवनाथजीके तृप्तिकारक और शान्तिदायक अमृत समान वचनों की सर्वत्र जय हो रही है। संसारी या भव्य प्राणी उनको बड़ी श्रद्धा भक्तिसे सुनते और उनपर अमल करते हैं।

अनेकान्तमताम्भोधि समुल्लासनचन्द्रमाः।
दद्यादमन्दमानन्दं भगवानभिनन्दनः ॥६॥

जिस तरह चन्द्रमा को देखकर समुद्र बढ़ता है; उसी तरह जिस से स्याद्वाद मत बढ़ा, वह अभिनन्दन भगवान् सब को पूर्णतया सुखी और आनन्दित करें!

खुलासा—चन्द्रमा की तरह ※ स्याद्वाद मत रूपी समन्दर को उल्लसित करने वाले अभिनन्दन भगवान् सब लोगों को पूर्ण रूप से सुखी करें।

द्युसत्किरीटशाणाग्रोत्ते जितांघ्रिनखावलिः।
भगवान् सुमतिःस्वामी तनोत्वभिमतानि वः ॥७॥

जिन के चरणों के नाखून, वन्दना करने वाले देवताओं के मुकटों की नोकों से घिस-घिस कर, सान से घिसकर साफ हो जाने वाले शस्त्र की तरह, साफ होगये हैं,—वह सुमतिनाथ भगवान् तुम्हारे मनोरथों को पूर्ण करें।

खुलासा—जिन भगवान् सुमतिनाथ के चरण-कमलोंमें देवता लोग अपने मस्तक रगड़ते या नवाते हैं, वे भगवान् तुम्हारी अभिलाषाओंको पूरी करें—तुम जो चाहते हो, वही तुम्हें दें।

यों भी कह सकते हैं, भगवान् सुमतिनाथ महामहिमान्वित हैं। देवता तक उन के चरण-कमलों में मस्तक झुकाते हैं। इस से प्रतीत होता है, वे

※ समुद्र का स्वभाव है कि, वह चन्द्रमा को देखकर उल्लसित या खुश होता है। खुश होकर, वह उस के पास जाना चाहता है। देखते हैं, पूर्णमासी के दिन, जब चन्द्रमा अपनी सम्पूर्ण कलाओं से उदय होता है, तब, समुद्र उमगता है, उस की लहरें इतनी ऊँची उठती हैं कि, चन्द्रमा को छू लेना चाहती हैं।

देवताओं के भी स्वामी हैं। और सबको छोड़कर, केवल उन्हींके चरणोंमें मस्तक झुकाओ, उन्हींकी वन्दना, आराधना और उपासना करो। वे देव देवेश तुम्हारी अभिलाषाओं को पूर्ण करेंगे।

पद्मप्रभप्रभोर्देहभासः पुष्णन्तु वः शिवम्।
अन्तरंगारिमथन कोपाटोपादिवारुणाः ॥८॥

शरीर के अन्दर रहनेवाले शत्रुओ को दूर भगाने के लिए भगवान् पद्मप्रभ स्वामी ने इतना कोप किया कि, उनके शरीर की कान्ति लाल हो गई। भगवान् की वही कान्ति तुम्हारी सम्पत्ति की वृद्धि करे।

खुलासा—बाहर के शत्रुओं की अपेक्षा भीतर के शत्रुओ को अपने वश मे करना, और उन्हें पराजित करके बाहर निकाल देना परमावश्यक है। बाहरी शत्रुओं से हमारी उतनी हानि नहीं है, जितनी कि काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि भीतरी शत्रुओं से है। ये शत्रु प्राणी के इहलोक के सुख और मोक्ष-पद लाभ करने मे पूर्ण रूप से बाधक है। इनके शरीर मे रहने से प्राणी का हर तरह अनिष्ट साधन ही होता है। उसे सिद्धि किसी हालत मे भी नहीं मिल सकती। इसी से सिद्धि चाहनेवाले को इन्हें शरीर से निकाल देना चाहिये। ग्रन्थकार कहता है, इन भीतरी शत्रुओं के शरीर रूपी किले से बाहर निकाल देने के लिए भगवान् ने इतना क्रोध किया, कि क्रोध के मारे उनके शरीर का रग लाल होगया। भगवान् की वही लाल रंग की कान्ति तुम्हारी सम्पत्ति को बढ़ावे।

———

श्रीसुपार्श्वजिनेन्द्राय महेन्द्रमहितांघ्रये ।
नमश्चतुर्वर्णसंघ गगनाभोगभास्वते ॥६॥

जिस तरह सूर्य्य से आकाश शोभायमान होता है, उसी तरह जिन भगवान् सुपार्श्व नाथ से साधु-साध्वी एवं श्रावक और श्राविका रूपी चार प्रकार का संघ शोभायमान होता है, जिनके चरणों की बड़े-बड़े इन्द्रों या महेन्द्रों ने पूजा की हैं, उन्हीं भगवान् श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्र को हमारा नमस्कार है।

खुलासा—जिस तरह सूर्य्य आकाश में शोभित होता है, उसी तरह भगवान सुपार्श्वनाथ साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविकाओं के संघ रूपी आकाश में शोभित होते हैं। जिस तरह सूर्य्य आकाश में रोशनी फैला देता और वहां का अन्धकार हर लेता है, उसी तरह भगवान् पार्श्वनाथ साधु-स्वाध्वी और ✱ श्रावक-श्राविकाओं के अन्धकार-पूर्ण हृदयों में रोशनी करते और उनके अज्ञान अन्धकार को हरण कर लेते हैं, बड़े बड़े इन्द्र उन की चरण-वन्दना करते हैं। ऐसे भगवान श्री सुपार्श्वनाथ जी को हमारा नमस्कार है।

चन्द्रप्रभप्रभोश्चन्द्रमरीचिनिचयोज्ज्वला ।
मूर्त्तिर्मूर्त्तसितध्यान निर्मितेव श्रियेऽस्तु वः ॥१०॥

भगवान् चन्द्रप्रभ स्वामीकी देह चन्द्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल या निर्मल है। इसलिये, ऐसा मालूम होता है, मानों वह

✱ साधु=संसार त्यागी पुरुष। साध्वी=संसारत्यागनेवाली स्त्री। श्रावक=उपदेश सुननेवाला। श्राविका=उपदेश सुननेवाली।

मूर्त्तिमान शुक्लध्यान से बनी है। भगवान् की स्वभावसे ही सुन्दर देह तुम सब का कल्याण करे!

करामलकवद्विश्वं, कलयन् केवलश्रिया।
अचिन्त्यमाहात्म्यनिधिः,सुविधिर्बोधयेऽस्तुवः॥११॥

जो अपने केवल ज्ञान से, समस्त संसार को, हाथ में रक्खे हुए आँवलेकी तरह, साफ देखनेवाले हैं, जो* अचिन्तनीय माहात्म्य या प्रभाव के ख़ज़ाने हैं, वे सुविधिनाथ भगवान् तुम्हारे-सम्यक्त्व पाने में सहायक हों।

खुलासा—जिन सुविधिनाथ भगवान् को सारा भूमण्डल, उन के केवल-ज्ञान के बल से, हाथ में रखे हुए आँवले † की तरह, हरतरफ से साफ दिखाई देता है, और जो अचिन्तनीय‡ प्रभाव के भण्डार हैं, वेही सुविधिनाथ भगवान् आप लोगों के §सम्यक्त्व—पूर्णता—सत्य के प्राप्त करने में सहायक हों, अर्थात् उनकी कृपा या सहायता से आप लोगों को सत्य की प्राप्ति होजाय।

---

* अचिन्तनीय माहात्म्य=ख़याल में भी न आने योग्य महिमा या शक्ति।

† जिस तरह मनुष्य को हाथ में रखे हुए आँवले को हर पहल से देख सकना आसान है, उसी तरह भगवान् को सारे ससार को देख लेना आसान है। मनुष्य अपने चर्मचक्षुओं से हाथ के आँवले को स्पष्ट देख सकता है, भगवान् सुविधिनाथ अपने केवल-ज्ञान से ससार को स्पष्ट देख सकते हैं।

‡ अचिन्तनीय= जिसका खयाल भी न किया जासके, जिसकी कल्पना भी न हो सके।

§ सम्यक्त्व=सत्य, पूर्णता, पूर्ण ज्ञान।

सत्वानां परमानन्दकन्दोद्भेदनवाम्बुदः ।
स्याद्वादामृतनिष्यन्दी शीतलः पातुवोजिनः ॥१२॥
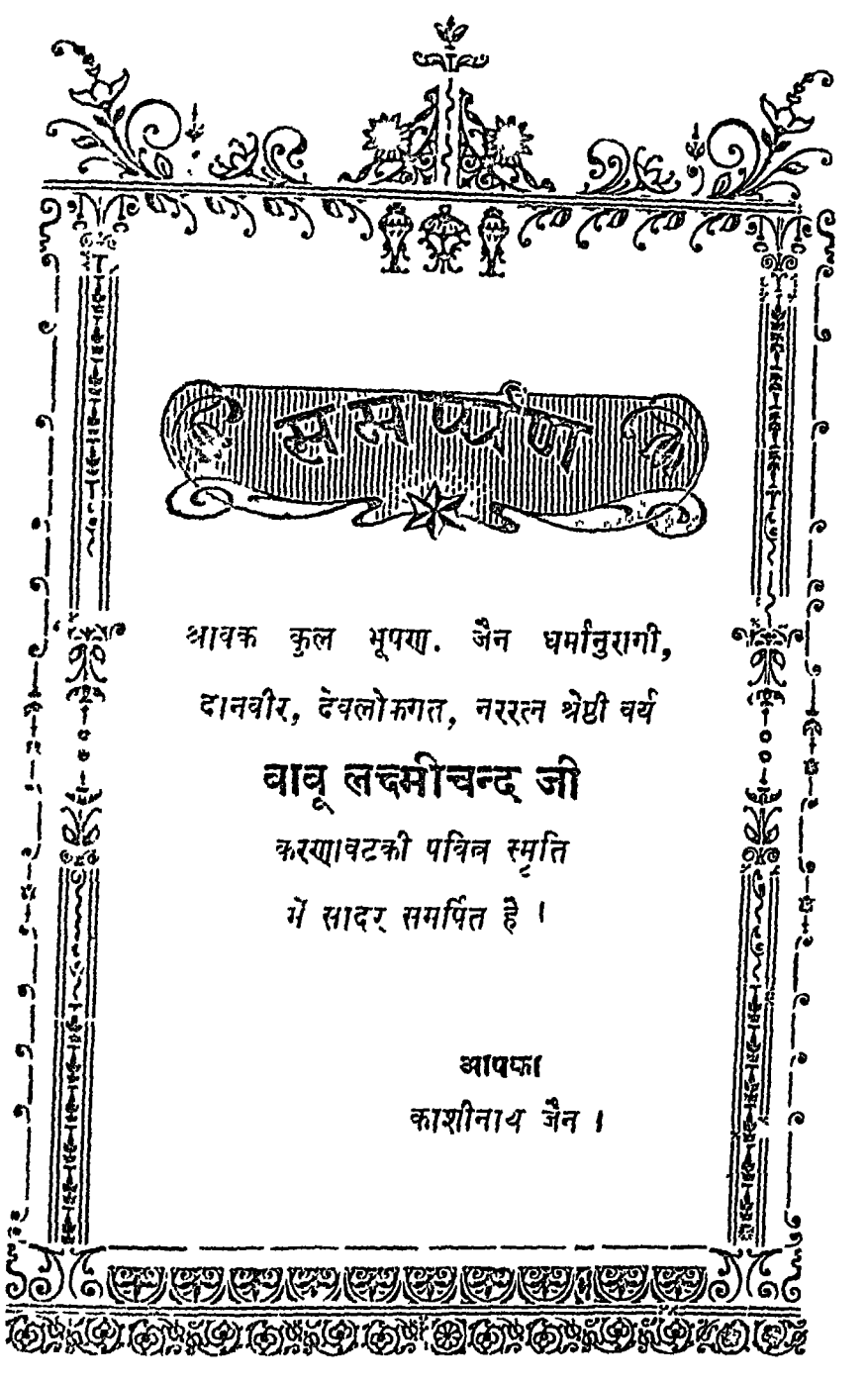
जो प्राणियों के परमानन्द रूपी अङ्कुर को प्रकट करनेके लिए नवीन मेघ के समान हैं और जो स्याद्वाद रूपी अमृत की वर्षा करने वाले हैं, वेही भगवान् श्री शीतलनाथजी तुम्हारी रक्षा करें !

खुलासा—जिस तरह नवीन मेघके बरसनेसे अङ्कुर प्रकट होते हैं; उसी तरह भगवान् श्री शीतलनाथजी के उपदेशामृत की वर्षा करने से संसारी प्राणियों के हृदयों में परमानन्द या परम सुखका अङ्कुर प्रकट होता है। ग्रन्थकार कहता है, जिन भगवान् के उपदेशों से प्राणियों के हृदय में परमानन्द का उदय होता है, वे ही भगवान् आप लोगों को सब प्रकार के दुःख, क्लेश, कष्ट और आपदाओं से बचावें ; कुपथ से हटा कर सुपथ पर लावें और पाप-ताप के गड्ढों में गिरने से रोकें।

भवरोगार्त्तजन्तुनामगदंकारदर्शनः ।
निःश्रेयसश्रीरमणः श्रेयांसः श्रेयसेऽस्तु वः॥१३॥

जिस तरह चिकित्सक या वैद्य का दर्शन रोगियों को आनन्द देने वाला है; उसी तरह संसार के दुःख और क्लेशों से दुखी प्राणियों को जिन भगवान् श्रेयांसनाथका दर्शन आनन्द देने वाला है, और जो मोक्ष-लक्ष्मी के स्वामी हैं, वे ही श्रेयांसनाथ स्वामी तुम्हारा कल्याण करें !

समर्पण

श्रावक कुल भूषण, जैन धर्मानुरागी,

दानवीर, देवलोकगत, नररत्न श्रेष्ठी वर्य

बाबू लक्ष्मीचन्द जी

करणावटकी पवित्र स्मृति

में सादर समर्पित है।

आपका

काशीनाथ जैन।

जिस तरह निर्मली का चूर्ण जल में घोल देने से जल को निर्मल या साफ कर देता है, उसी तरह भगवान् विमलनाथ की वाणी तीनो जगत् के प्राणियों के अन्त:करणों का मैल दूर करके उन्हें पवित्र करती है। आप की अलौकिक वाणी की सवत्र जय हो रही है!

खुलासा—निर्मली एक प्रकारकी वनस्पति होती है। उसको पीसकर गदले से गदले पानी में घोल देने से जल बिल्लौरी शीशे की तरह साफ होजाता है। ग्रन्थकार कहता है, भगवान् विमलनाथ के उपदेश या वचन भी निर्मली की तरह ही तीनों लोकों के प्राणियों के मैले अन्त करणों को शुद्ध और साफ कर देते हैं, यानी उन के अन्त. करणों पर जो काम क्रोध, लोभ, मोह और ईर्षा-द्वेष प्रभृति का मैल जमा रहता है, वह भगवान् के उपदेशों से दूर हो जाता है, और अन्त करण निर्मल आइने की तरह स्वच्छ और साफ हो जाते हैं। भगवान् की ऐसी लोकोत्तर वाणी की सर्वत्र जय जयकार हो रही है। ससार उन के उपदेशों को श्रद्धा और भक्ति से सुनता और उन पर अमल करता है।

स्वयंभूरमणस्पर्द्धिकरुणारसवारिणा।
अनंत जिदनंतां वः प्रयच्छतु सुखश्रियम् ॥१६॥

जिस तरह स्वय-भूरमण नामक समुद्र में अनन्त जलराशि है, उसी तरह श्री अनन्तनाथ स्वामी में अनन्त—अपार दया है। वही अनन्तनाथ प्रभु अपनी अपार दया से तुम्हें अनन्त सुख-सम्पत्ति दें!

खुलासा—श्री अनन्तनाथ स्वामी स्वयंभूरमण—समुद्र से स्पर्धा करते हैं। जिस तरह उस समन्दर में अनन्त जल भरा है, उसी तरह भगवान् में

अनन्त—अपार दया-जल है। जिन भगवान्में अनन्त दया है, वही भगवान् दया करके आपलोगों को अनन्त अक्षय सुखैश्वर्य्य प्रदान करे, यही ग्रन्थ-कारका आशय है।

कल्पद्रुमसधर्माणमिष्टप्राप्तौ शरीरिणाम्।
चतुर्धाधर्मदेष्टारं धर्मनाथमुपास्महे ॥१७॥

जो भगवान् प्राणियों को उनके मन-चाहे पदार्थ देने में कल्प-वृक्ष के समान हैं और जो चार प्रकार के धर्म का उपदेश देनेवाले हैं, उन भगवान् श्री धर्मनाथजी की हम उपासना करते हैं।

खुलासा—कल्पवृक्ष या कल्पद्रुम में यह गुण है, कि उससे जो कोई जिस पदार्थकी कामना करता है, उसे वह वही पदार्थ आसानी से दे देता है। भगवान् धर्मनाथजी ससार के प्राणियों के लिए *कल्पवृक्ष है। संसारी लोग उन भगवान् से जो चीज मांगते हैं, भगवान् उन्हें वही चीज, सहज में दे देते हैं। इस के सिवा ये दान, शील, तप और भाव रूपी चार प्रकार के धर्म का उपदेश भी देते हैं। हम उन्हीं कल्पतरु के समान मनवांछित फल दाता भगवान् की उपासना करते हैं।

सुधासोदरवाग्ज्योत्स्ना निर्मलीकृतदिङ्मुखः।
मृगलक्ष्मा तमः शांत्यै शांतिनाथजिनोऽस्तुवः॥१८॥

---

* कल्पवृक्ष=एक वृक्ष का नाम है, जो माँगने पर मन-चाहे पदार्थ देता है, यानी उससे जो माँगा जाता है, वही देता है। भगवान् भी भक्तो के लिए कल्पतरु हैं, उनसे प्राणी जो मांगते है, उन्हे वह वही देते हैं, स्त्री चाहने वाले को स्त्री, पुत्र-कामी को पुत्र और धन-कामी को धन प्रभृति।

जिन्होंने अमृत समान वाणी रूपी चाँदनी से दिशाओंके मुखों को निर्मल कर दिया है और जिन में हिरन का लाञ्छन है, वह शान्तिनाथ जिनेश्वर तुम्हारे तमोगुण अज्ञान को दूर करें!

खुलासा—जिस तरह सुधाकर—चन्द्रमा की सुधामय किरण की चांदनी से दिशायें प्रसन्न हो उठती हैं, उसी तरह श्रीशान्तिनाथ स्वामीके सुधा-समान उपदेशों से सुनने वालों के मुख प्रसन्न हो उठते हैं। जिस तरह चन्द्रमाके उदय होने से, उसकी निर्मल चांदनी छिटकने से दशों दिशाओं का घोर अन्धकार दूर हो जाता है, उसी तरह भगवान् शान्तिनाथ के अमृतमय वचनों के सुनने से श्रोताओं के हृदयकमल खिल उठते हैं, उन के हृदयों का अज्ञान-अन्धकार दूर हो जाता है, उनके शोक-सन्तप्त हृदयों में सुशीतल शान्ति का सञ्चार हो उठता है, वे हिरन के लाञ्छन वाले भगवान आप लोगों के अज्ञान-अन्धकार को उसी तरह नष्ट करें, जिसतरह चन्द्रमा जगत के अन्धकार का नष्ट करता है।

श्रीकुंथुनाथो भगवान् सनाथोऽतिशयर्द्धिभिः।
सुरासुरनृनाथानामेकनाथोऽस्तु वःश्रिये ॥१६॥

जिस के पास अतिशयों की ऋद्धि या सम्पत्ति है और जो देवताओं, राक्षसों और मनुष्यों के राजाओं का एक स्वामी है, श्रीकुन्थुनाथ भगवान् तुम्हारी सम्पत्ति की रक्षा करें!

खुलासा—जो श्रीकुन्थुनाथ भगवान् चौंतीस अतिशयों की सम्पत्ति के स्वामी और देवेन्द्र, दनुजेन्द्र तथा नरेन्द्रोंके भी नाथ हैं, वही भगवान् तुम्हारा कल्याण करें।

अरनाथस्स: भगवांश्वतुर्थारनभोरविः।
चतुर्थपुरुषार्थश्रीविलासं वितनोतु वः ॥२०॥

जो भगवान् श्री अरनाथजी चौथे आरे* मे उसी तरह शोभायमान थे, जिस तरह आकाश में सूर्य शोभायमान् होता है, वह भगवान् तुम्हें मोक्ष दे।

* काल-चक्र के दो भाग होते हैं :—(१) उत्सर्पिणी, और (२) अवसर्पिणी, इन दोनों मुख्य भागोंके छह-छह हिस्से होते हैं। इन हिस्सों को ही "आरे" कहते है।

सुरासुरनराधीशमयूरनववारिदम्।
कर्मद्रून्मूलने हस्तिमल्लं मल्लिभिष्टुमः ॥२१॥

जिन भगवान् को देखकर सुरपति, असुरपति और नरपति उसी तरह प्रसन्न हुए, जिस तरह नवीन मेघको देखकर मोर प्रसन्न होते हैं और जो भगवान् कर्म-रूपी वृक्षको निर्मूल करनेमें ऐरावत हाथी के समान हैं, उन्हीं मल्लीनाथ भगवान् की हम स्तुति करते हैं।

* कर्म-बन्धनमें बँधे रहनेसे प्राणी का जन्म-मरणसे पीछा नहीं छूटता। जब तक कर्मों की जड़ नाश नहीं होती, तब तक प्राणी को बारम्बार जन्म लेना और मरना पड़ता है। जो कर्म को जड़ से उखाड़ फेकते हैं, वे मोक्ष लाभ करते हैं, उन्हें फिर जनमना और मरना नहीं पड़ता।

स्वर्गीय बाबू लक्ष्मीचन्दजी करणावट

हनुमानसिंहजी लक्ष्मीचंदजी की फार्म के अध्यक्ष

श्रीनेमिनाथ भगवान् के चरणोंके नाखूनों की किरणें, उन के चरणों में सिर नवानेवालों के सिर पर जल-प्रवाह की भाँति पड़तीं और उन्हें पवित्र करती हैं। भगवान्‌के नाखूनों की वे ही किरणे तुम्हारी रक्षा करें !

खुलासा—जो प्राणी भगवान् नेमिनाथ के चरण-कमलों में सिर झुकाते हैं, उनकी पदवन्दना करते हैं उनके सिरों पर भगवान् के चरणों के नाखूनों की किरणें गिरतीं और उन्हें पापमुक्त करती है। जिन किरणों का ऐसा प्रभाव है, वे किरणें आप की रक्षा करें !

यदुवंशसमुद्रेन्दुः , कर्मकक्षहुताशनः ।
अरिष्टनेमिर्भगवान्, भूयाद्वोऽरिष्टनाशनः ॥२४॥

जो यदुवंश-रूपी समुद्र के लिए चन्द्रमाके समान और कर्म रूपी वन के लिए अग्नि के समान थे, वह श्री नेमिनाथ भगवान तुम्हारे अरिष्ट को नष्ट करें।

खुलासा—जिस तरह चन्द्रमा के प्रभाव से समुद्र बढ़ता है; उसी तरह जिन भगवान् के प्रभाव से यदुवंश की वृद्धि हुई और जिन्होंने कर्म को उसी तरह भस्म कर दिया, जिस तरह आग वन को जला कर भस्म कर देती है, वही अरिष्टनेमि भगवान् श्री नेमिनाथ स्वामी आप का अमंगल नाश करें !

कमठेधरणेन्द्रे च, स्वोचितंकर्मकुर्वति ।
प्रभुस्तुल्यमनोवृत्तिः,पार्श्वनाथ श्रियेऽस्तु वः ॥२५

अपने अपने स्वभाव के अनुसार आचरण करनेवाले कमठ नामक दैत्य और धरणेन्द्र नामक असुरकुमार—वैरी और सेवक पर जिनकी मनोवृत्ति समान रही, वही भगवान् पार्श्वनाथ तुम्हारी सम्पत्ति के कारण हों !

खुलासा—पूर्वभव में भगवान् पार्श्वनाथने धरणेन्द्र की अग्नि से रक्षा की थी, इससे इस जन्म में वह उनकी भक्ति करता और उपसर्ग बचाता था, किन्तु कमठ उनका वैरी था, वह उपसर्ग करता था यानी उनपर आपदायें लाता था, पर भगवान समदर्शी थे, उनकी नजरों में शत्रु-मित्र समान थे, वे शत्रु और सेवक दोनों पर समभाव रखते थे। ग्रन्थकार कहता है, वही समदर्शी भगवान् पार्श्वनाथ तुम्हारी सुख-सम्पत्ति की वृद्धि करे—तुम्हारा कल्याण करें !

कृतापराधेऽपिजने, कृपामन्थर तारयोः ।
ईषद्बाष्पार्द्रयोर्भद्रं, श्रीवीर जिननेत्रयोः ॥२६॥

श्रीमहावीर प्रभु में दया की मात्रा इतनी अधिक थी, कि उन्हें पूर्ण रूप से सताने और दुःख देनेवाले 'संगम'* नामक देव

* एक समय महावीर भगवान् तप करते थे। उस समय संगम नामक देवने उन पर ६ मास तक उपसर्ग किया, मगर प्रभु विचलित न हुए। भगवान की दृढता देखकर, देवने स्वर्ग जाने की इच्छा से कहा—"हे देव !

पर उन्हें दया आगई, इससे उनकी आँखों की पुतलियाँ उस पर झुक गईं—इतना ही नहीं, आँसुओं से उनकी आँखें तक तर होगईं। ऐसे दया-भाव पूर्ण प्रभु के नेत्रों का कल्याण हो।

खुलासा—भगवान् इतने दयालु थे कि उन्हें अपने अनिष्ट-कारियों पर भी दया आती थी। वे अपने कष्टों को भूल कर, सतानेवाले के कष्टों की ही फिक्र करते थे।

अब आप स्वेच्छा-पूर्वक आहार के लिए भ्रमण कीजिये। मैं आपको उपसर्ग नहीं करूँगा। भगवान् ने जवाब दिया—"मैं तो अपनी इच्छा से ही भ्रमण करता हूँ, किसी के कहने या दबाव डालने से नहीं।" जिस समय देव वहाँ से चलने लगा, तब भगवान् की आँखों में यह सोच कर आंसू आगये कि, इस बेचारे ने जो अनिष्ट कर्म किये हैं, उनके कारण इसे दुःख होगा। प्रभु की इस दृष्टि को लक्ष्य में रख कर ही कलिकाल-सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य्य ने इस स्तुति-श्लोक की रचना की है।

पहला भव

ऊपर जिन तीर्थङ्करों को नमस्कार किया गया है, उन्ही के समय और उन्ही के तीर्थों में १२ चक्रवर्ती, ६ अर्द्ध चक्री—वासुदेव, ६ वलदेव और ६ प्रति वासुदेव हुए हैं। ये सब महा पुरुष त्रिषष्ठि शलाका* पुरुषों के नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमें से कितने ही मोक्ष-लाभ कर चुके हैं और कितने ही लाभ करने वाले हैं। इन्होंने अवसर्पिणी कालमें जन्म लेकर भरतक्षेत्र को पवित्र किया है। शलाका पुरुषत्व से सुशोभित इन्हीं पुरुष रत्नों के चरित्रों का वर्णन हम करते हैं; क्योंकि महापुरुषोंका कीर्त्तन कल्याण और मोक्षके देनेवाला होता है। हम सबसे पहले भगवान श्री ऋषभदेव स्वामी का जीवन चरित्र, "उस भवसे जिसमें उन्हें सम्यक्त्व प्राप्त हुवा था" लिखते हैं।

---

*ये सब उसी भवमें अथवा आगामी भव में निश्चयत. मोक्ष-गामी होने से शलाका पुरुष कहलाते हैं।

असंख्य समुद्र और असंख्य द्वीपरूपी कंकणों एवं वज्रवेदिका से परिवेष्टित एक द्वीप है। उसका नाम जम्बूद्वीप है। वह अनेक नदियों और †वर्षधर-पर्वतों से सुशोभित है। उस द्वीप के बीच में स्वर्ण-रत्नमय मेरु नामक पर्वत है। वह उसकी नाभि के समान शोभायमान है और वह एक लाख योजन ऊँचा है। तीन ‡मेखलायें उसकी शोभा बढ़ाती हैं। उसपर चालीस योजन की चूलिका-समतल भूमि है। वह श्री अर्हन्तोंके मन्दिरों से जगमगा रही है। उसके पश्चिम ओर विदेह-क्षेत्र है। उस क्षेत्रमे भूमण्डलके भूषण-समान क्षिति-प्रतिष्ठितपुर नामका एक नगर है।

उस नगर में, किसी समय में, प्रसन्नचन्द्र नामका राजा राज्य करता था। वह नरपति धर्म-कर्म में आलस्य-रहित था। महान ऋद्धियों के कारण, वह इन्द्र की भाँति शोभायमान था। उस राजा के नगर में धन नामका एक साहूकार था। जिस तरह अनेकों नदियाँ समुद्र में आकर आश्रय लेती हैं; उसी तरह नाना प्रकार की धनराशियोंने उसकेयहाँ आश्रय ग्रहण किया था। उसके पास अनन्त धन-सम्पत्ति थी, जो चन्द्रकी चन्द्रिका की तरह छोटे-बड़े, नीचे-ऊँचे सभी का उपकार साधन करती थी; अर्थात् उसकी सम्पत्ति परोपकार के कामों में ही ख़र्च होती थी।

---

†वर्ष-क्षेत्र उसको अलग करने वाला वर्षधर—पर्वत।

‡पहली मेखला में नन्दन वन, दूसरी मेखला में सोमनस वन और तीसरी मेखलामें पांडुक वन है।

जिस तरह महावेगवती नदीके प्रवाह में पर्वत अचल और अटल रहता है; उसी तरह धन सेठ, सदाचार रूपिणी नदी के प्रवाह में, पर्वत के समान अचल और अटल था। वह सत्पथ से विच-लित होने वाला नहीं था। बहुत क्या—वह सारी पृथ्वी को पवित्र करने वाला सेठ सभी से पूजा जाने योग्य था। उसमें यशरूपी वृक्षके अमोघ बीज के समान औदार्य्य, गाम्भीर्य्य और धैर्य्य आदि गुण थे। अनाज की ढेरियों की तरह उसके घरमें रत्नों की ढेरियाँ थीं। जिस तरह शरीर में प्राण-वायु मुख्य होता है. उसी तरह वह धन सेठ धनवान, गुणवान् और कीर्त्ति-मान लोगों में मुख्य था। जिस तरह बड़े भारी तालाब के आस-पास की ज़मीन उसके सोतों से तर रहती है; उसी तरह उस सेठ के धनसे उसके नौकर-चाकर प्रभृति तर रहते थे।

वसन्तपुर जानेकी तैयारी

एक, दिन मूर्त्तिमान उत्साह की तरह, उस साहूकारने किराना लेकर वसन्तपुर जानेका इरादा किया। उसने नगरमें अपने आदमियों द्वारा यह डौंडी पिटवादी—"धन सेठ वसन्तपुर जाने वाले हैं। जिस किसी को वसन्तपुर चलना हो, वह उनके साथ होले। जिसके पास चढ़ने को सवारी न होगी, उसे वह सवारी देंगे। जिसके पास खाने-पीने के बर्तन न होंगे, उसे वह बर्तन देंगे। जिसके पास राह-ख़र्च न होगा, उसे वह राह-ख़र्च देंगे। राहमें चोरों और डाकुओं तथा सिंह व्याघ्र आदि हिंसक

खुलासा—जिस तरह वैद्य को देखते ही रोगी को आनन्द होता है, रोग-शत्रु से पीछा छूट जाने की आशा से सुखी होती है; उसी तरह संसार रूपी रोग से पीड़ित प्राणियों को भगवान् श्रेयांसनाथ के दर्शनों से प्रसन्नता होती है, उनको पाप-ताप के भय और भयङ्कर चिन्ताग्नि से रिहाई मिलती है, उनके मुर्झाये हुए हृदय-कमल खिल उठते हैं; क्योंकि भगवान् मोक्ष-लक्ष्मी-रमण या मोक्ष के स्वामी हैं। वे दुखिया प्राणियों का दुःख-गर्त्त से उद्धार कर सकते हैं, उन्हे जन्म-मरण के घोर दुःखों से छुड़ा सकते हैं, उन्हें परम पद या मोक्ष दे सकते हैं। ग्रन्थकार कहता है, ऐसे ही परमानन्द के दाता और मोक्ष* के स्वामी भगवान्, श्रेयांसनाथ, आप लोगों का कल्याण करें!

विश्वोपकारकीभूततीर्थकृत्कर्मनिर्मितिः।
सुरासुरनरैः पूज्यो वासुपूज्यः पुनातु वः ॥१४॥

जिन्होंने जगत् के उपकार करनेवाले तीर्थङ्कर नाम-कर्मको बाँधा है, जो सुर, असुर और मनुष्यों द्वारा पूजने योग्य हैं, वे वासुपूज्य भगवान् तुम्हें पवित्र करें!

विमलः स्वामिनो वाचः कतकक्षोदसोदराः।
जयन्ति त्रिजगच्चेतोजलनैर्मल्यहेतवः ॥१५॥

---

* मोक्ष=जन्म से रहित। जिस की मोक्ष हो जाती है, उसे फिर जन्म लेना नहीं पड़ता। जिस का जन्म नहीं होता, उस की मृत्यु भी नहीं हो सकती। जन्म-मरण से पीछा छूट जाने को ही मोक्ष होना कहते हैं।

इसके बाद सार्थवाह बड़ी-बड़ी तरंगों वाले समुद्रकी तरह अपने चञ्चल घोड़े, ऊंट, गाड़ी और बैलोंके सहित चलने लगा। [पृष्ठ २३]

को वही आहार ग्रहण करना चाहिये, जो उनके लिए तैयार किया गया हो, न कराया गया हो और न संकल्प ही किया गया हो। सेठ जी! जिनेन्द्र-शासन में साधुओं के लिए कूएँ, बावड़ी और तालाब का जल पीने की भी मनाही है, क्योंकि वह अग्नि वगैरः शस्त्रोंसे अचित किया हुआ नहीं होता।" ये बातें हो ही रही थीं कि, इतने में किसी पुरुष ने आकर सन्ध्या कालके बादलों के समान, सुन्दर रंगवाले, पके हुए आमोंसे भरा हुआ एक थाल सार्थवाह के पास रख दिया। धन सार्थवाहने, अतीव प्रसन्न चित्तसे, आचार्य्य से कहा—"आप इन फलोंको ग्रहण करें, तो मुझपर बड़ी कृपा हो।" आचार्य्य ने कहा—"हे श्रद्धालु! साधुओं के लिए सचित्त फलोंके छूने तक की मनाही है, खाना तो बड़ी दूर की बात है।" सार्थवाह ने कहा—"आप महा दुष्कर व्रत धारण करते हैं। प्रमादी यदि चतुर भी हो, तोभी ऐसा व्रत एक दिन भी नहीं पाल सकता। खैर, आप साथ चलिये। आप को जो अन्न-पानादि ग्राह्य होंगे, मैं वही आपको दूँगा।" इस तरह सत्कार और नमस्कार करके, उसने उनको विदा किया।

सेठ का पन्थगमन।

इसके बाद सार्थवाह बड़ी-बड़ी तरङ्गों वाले समुद्रकी तरह अपने चञ्चल घोड़े, ऊँट, गाड़ी और बैलोंके सहित चलने लगा। आचार्य महाराज भी मानो मूर्त्तिमान मूल गुण और उत्तर गुण हों, ऐसे साधुओं से घिर कर चलने लगे। सारे सघके

आगे-आगे धन सार्थवाह चलता था। उसके पीछे-पीछे उसका मित्र मणिभद्र चलता था। उनके दोनों ओर सवारोंका दल चलता था। उस समय सार्थवाह के सफेद छत्रोंके देखने से शरद् ऋतुके बादलों का और मोरकी पूँछ के छातों से वर्षा ऋतुके मेघों का भान होता था- यानी जब सफेद छातों पर नज़र जाती थी, तब आकाश शरद् के मेघोंसे और जब मयूर-पुच्छ के छातों पर दृष्टि पड़ती थी, तब वर्षा-काल के बादलों से व्याप्त मालूम होता था। घनवात यानी पृथ्वी की आधारभूत वायु जिस तरह पृथ्वी को वहन करती है, उसी तरह सार्थवाह के ऊँट, बलध, साँड, खच्चर और गधे उसके कठिन से ढोने योग्य सामान को ढो रहे थे। वे इतनी तेज़ी से चल रहे थे कि, उनके क़दम ज़मीन को छूते मालूम न होते थे। ऐसा जान पड़ता था, गोया हिरनों की पीठों पर गौनें लाद दी गई हैं। ऊँट इतनी तेज़ी से चल रहे थे कि, ऊँची-ऊँची पखों वाले पक्षीसे मालूम होते थे। अन्दर बैठे हुए जवानों के क्रीड़ा करने योग्य गाड़ियाँ ऐसी मालूम होती थीं, मानों चलते-फिरते घर हों। विशालकाय मोटे-मोटे कन्धों वाले भैंसे, आकाश से पृथ्वी पर आये हुए बादलों के समान, जल को ढोते और लोगोंकी प्यास बुझाते थे। गाड़ियों के पहियोंके चूँ चूँ शब्दों से ऐसा मालूम होता था, मानो सार्थवाह के सामान के बोझ से दबी हुई पृथ्वी चीत्कार कर रही हो। बैल, ऊँट और घोड़ों के पैरोंसे उड़ी हुई धूलि आकाश में ऐसी छा गई थी, कि सूचीभेद्य अन्धकार हो गया था—हाथ को हाथ न सूझता

था। दिशाओं के मुख-भाग को बहरे करने वाली, बैलों के गलों की घण्टियों की टनकार दूर से ही सुनकर, चमरी मृगोंने बच्चों समेत अपने कान खड़े कर लिये और डरने लगे। भारी बोझको ढोने वाले ऊँट चलते-चलते भी अपनी गर्दनों को घुमा-घुमाकर बारम्बार वृक्षों के अगले भागोंको चाटने लगते थे। मालसे भरे बोरोंसे लदे हुए गधे अपने कान ऊँचे और गर्दनें सीधी करके एक दूसरे को दाँतों से काटते और पीछे रह जाते थे। हर ओर हथियारबन्द रक्षकों से घिरा हुआ वह संघ, वज्रके पींजरे में रखे हुए की तरह, मार्ग में चलता था। महामूल्यवान् मणिको धारण करने वाले सर्पके पास लोग जिस तरह नहीं जाते, उसी तरह ढेर धन वहन करने वाले इस संघके पास चोर नहीं आते थे—दूर ही रहते थे। निर्धन और धनवान् दोनों को एक नजर से देखने वाला, दोनों की ही रक्षा का समान रूपसे उद्योग करने वाला सेठ सार्थवाह सब को साथ लेकर उसी तरह चलने लगा जिस तरह यूथपति हाथी अपने साथ के सब हाथियों को लेकर चलता है। नयनों को प्रफुल्लित करके, लोगों से सम्मान पाता हुआ धन-सार्थवाह सूर्य की तरह रोज रोज़ चलने लगा।

ग्रीष्म-वर्णन।

उसी समय नदियों और सरोवरों के जल को, रात्रियों की तरह, संकुचित करने वाली, पथिकों के लिए भयङ्कर और महा

उत्कट ग्रीष्म ऋतु आगई। भट्टी के अन्दर की लकड़ियों से निकलने वाले उत्ताप के जैसा, घोर दुःसह पवन चलने लगा। सूर्य अपनी अग्नि-कणों के समान जलती हुई तेज़ धूपको चारों ओर फैलाने लगा। उस समय, संघ के पथिक, गरमी से घबरा कर, मार्ग में आने वाले अगल-बग़ल के वृक्षोंके नीचे विश्राम करने और प्याऊओं में जल पी-पीकर लेट लगाने लगे। गरमी के मारे, भैंसे अपनी जीभें वाहर निकालने और कोड़ों की मार की परवा न करके नदी की कीचड़ मे घुसने लगे। बैलों पर तड़ातड़ चाबुक पड़ते थे, तोभी वे अपने हाँकने वालों का निरादर और मार की पर्वा न करके, बारम्बार कुमार्ग के वृक्षों के नीचे जाते थे। सूर्य की तपाई हुई, लोहे की सूइयों-जैसी, किरणों की तपतसे मनुष्य; और पशुओ के शरीर मोम की तरह गलने लगे। सूर्य नित्य ही अपनी किरणों को तपाये हुए लोहेके फलों जैसी करने लगा। पृथ्वी की धूलि, मार्ग मे फेंकी हुई कण्डों की आग की तरह, विषम होने लगी। संघ की स्त्रियाँ राह में आने वाली नदियों में घुस-घुसकर और कमलनाल तोड़-तोड़कर अपने-अपने गलों में डालने लगीं। सेठ सार्थवाह की स्त्रियाँ पसीनों से तरवतर कपड़ो से, जल मे भीगी हुई की तरह, राहमें बहुत ही अच्छी जान पड़ने लगी। कितने ही पथिक ढाक-पलाश, ताड़ और कमल प्रभृति के पत्तों के पखे वना-वनाकर धूप से हुए श्रम को दूर करने लगे।

वर्षा-वर्णन ।

इसके बाद, ग्रीष्म ऋतु की तरह, प्रवासियों की चाल को रोकने वाली, मेघ-चिह्न-स्वरूपिणी, वर्षा ऋतु आगई। आकाश में यक्ष के समान धनुष को धारण करके धारा रूपी बाणों की वृष्टि करता हुआ मेघ चढ़ आया। उससे संघ के लोगों को बड़ा कष्ट हुआ, वह मेघ सिलगाये हुए फूली की भाँति बिजली को घुमा-घुमाकर, बालकों की तरह, संघके सभी लोगों को डराने लगा; अर्थात् बालक जिस तरह घास की पुले को जलाकर घुमाते और लोगों को डराते हैं, उसी तरह वह मेघ बिजली को चमका-चमका कर सबवालों को भयभीत करने लगा। आकाश तक गये हुए और फैले हुए जलके प्रवाहने, पथिकों के हृदयों की तरह, नदियों के विशाल तटों—किनारों को तोड़ डाला। वर्षा के पानी ने पृथिवी के ऊँचे-नीचे भागों को समान कर दिया। क्योंकि जड़ पुरुषों का उदय होने पर भी, उनमें विवेक कहाँ आता है? अर्थात् मूर्खों का अभ्युदय होने पर भी उनमें विवेक या विचार का अभाव ही रहता है। पानी, कीचड़ तथा काँटों से दुर्गम हुए मार्ग में एक कोस राह चलना चार सौ कोस के समान मालूम होने लगा। घुटनों तक कीचड़ में फँसे हुए लोग, जेल से छूटे हुए कैदियों की तरह, धीरे-धीरे चलने लगे। जल-प्रवाह को देखकर ऐसा भान होता था, मानो दुष्ट दैव ने, प्रत्येक राह में, प्रवाह के मिष से, अपनी भुजा-रूपी आगल लोगों के रोकने के

लिए फैलादी हैं। उस समय, कीचडमें गाड़ियों के फँसने से ऐसा प्रतीत होता था, मानो चिरकाल से मर्द्दन होती हुई पृथ्वी ने क्रोध करके उनको पकड़ लिया हो। ऊँटों के चलाने वाले राह में नीचे उतर कर, रस्सियाँ पकड़-पकड़, कर ऊँटों को खींचने लगे; पर ऊँटों के पैर, ज़मीन पर न टिकने की वजह से, फिस-लने लगे और वे पद्-पद्पर गिरने लगे। धन-सार्थवाह ने वर्षा-कालमें राह की कठिनाइयों का अनुभव करके, उस घोर वनमें तम्बू तनवा दिये। संघके लोगों ने भी यह समझ कर कि, वर्षा ऋतु यहीं काटनी होगी, अपनी-अपनी झोंपडियाँ वनाली क्योंकि देश-कालका उचित विचार करने वालों को दुखी होना नहीं पड़ता हैं। मणिभद्रने निर्जन्तु स्थान में बनी हुई एक झोंपड़ी या उपाश्रय दिखलाया। उसमें साधुओं-सहित आचार्य महा-राज रहने लगे। संघमें बहुत लोगों के होने और वर्षा-कालका लम्बा समय होनेसे, सब का खाने-पीने का सामान और पशुओं के खाने के घास प्रभृति पदार्थ समाप्त हो.गये। इसलिये संघ के लोग भूखके मारे, मलिन वस्त्रवाले तपस्वियों की तरह, कन्दमूल और फल-फूल प्रभृति खाने के लिए इधर-उधर भटकने लगे। संघके लोगों की ऐसी बुरी हालत देखकर, सार्थवाह के मित्र मणिभद्र ने, एक दिन, सन्ध्या-समय, ये सारा वृत्तान्त सार्थवाह से निवेदन किया। संघके लोगों की तकलीफों की बात सुनकर, सार्थवाह उनकी दुःख-चिन्ता से इस तरह निश्चल हो गया; जिस तरह, पवन-रहित समय में, समुद्र निष्कम्प हो जाता है। इस

जगन्महामोहनिद्रा प्रत्यूषसमयोपमम्।
मुनिसुव्रतनाथस्य देशनावचनं स्तुमः ॥२२॥

श्रीमुनिसुव्रत स्वामीका उपदेश, जो जगत्को महान् अज्ञान-रूपी निद्रा के नाश करने के लिए प्रातःकाल के समान है, हम उसकी स्तुति करते हैं।

खुलासा—यह जगत् मिथ्या और असार है। आयु फूटे घड़े के छेद से पानी निकलने की तरह दिन-दिन घटती जाती है, मौत सिर पर मँडराया करती है, लक्ष्मी और स्त्री पुत्रादि सब चपला की समान चञ्चल हैं; फिर भी प्राणियों को होश नहीं होता, क्योंकि वे जगत् की महामोहमयी निद्रा में मग्न हैं। उन मोहनिद्रा में सोने वालों को जगाने के लिए, श्री मुनिसुव्रत स्वामी का उपदेश-वचन प्रातः काल के समान है। जिस तरह प्रातःकाल होने से प्राणी निद्रा त्याग कर उठ बैठते हैं; उसी तरह सुव्रत स्वामी जी महाराज के उपदेशों को सुन कर, मोहनिद्रा में गर्क रहने वाले चैतन्य लाभ करते और कर्म बन्धन काटने की चेष्टा करते हैं। ग्रन्थकार कहता है, हम उन्हीं मुनि महाराज के उपदेश-वचनों की स्तुति या प्रशंसा करते है, क्योंकि वे मोहनिद्रा दूर करने में अव्यर्थ महौषधि के समान हैं।

लुठन्तो नमतां मूर्ध्नि निर्मलीकार कारणम्।
वारिप्लवा इव नमेः, पान्तु पादनखांशवः ॥२३॥

आता। फिर भी, मैं आज उनके दर्शन करके अपने पापों को तो धो डालूं। वे इच्छा रहित-निस्पृह पुरुष हैं। उन्हें किसी भी वस्तु की चाहना नहीं। ऐसे पुरुष का मैं कौनसा काम करूं? ऐसी चिन्ता में, मुनि दर्शनोंके लिए उत्सुक, सार्थवाह को रातका शेष रहा हुआ चौथा पहर दूसरी रातके समान मालूम हुआ।

सेठका आचार्य्य के पास जाना।

इसके बाद जब रात बीत गई और सवेरा हो गया, तब सार्थवाह उज्ज्वल वस्त्राभूषण पहन कर, अपने मुख्य आदमियों को साथ लेकर, सूरि के आश्रम की तरफ चला। वहाँ जाकर उसने ढाकके पत्तोंसे छाई हुई, छेदों वाली, निर्जीव भूमि पर बनी हुइ झोंपड़ी में प्रवेश किया। उसमें उसने पापरूपी समुद्र को मथने वाले, मोक्ष के मार्ग, धर्म के मण्डप और तेज के आगार-जैसे धर्म घोष मुनि को देखा। वे कषाय रूपी गुल्म में हिमवत, कल्याण-लक्ष्मी के हार समान और संघ के अद्वैत भूषण-समान तथा मोक्ष-कामी लोगों के लिए कल्पवृक्ष के समान मालूम होते थे। वे एकत्र हुए तप, मूर्त्तिमान आगम और तीर्थों को प्रवर्त्तानेवाले तीर्थङ्करों की तरह शोभित थे। उनके आस-पास और मुनि लोग बैठे थे। उनमें से कोई आत्मध्यान में मग्न हो रहा था, कोई मौनव्रत अवलम्बन किये हुए था, कोई कार्योत्सर्ग में लगा हुआ था, कोई आगम-शास्त्र का अध्ययन कर रहा था, कोई उपदेश दे रहा था, कोई भूमि प्रमार्जन कर रहा था, कोई

सार्थवाह ने सबसे पहले आचार्य्य महाराजे को और पीछे अनुक्रम से अन्यान्य मुनियों को वदना किया। उन्होंने उसे पाप नाश करनेवाला "धर्मलाभ" दिया। [पृष्ठ ३१]

Narsingh Press, Calcutta.

गुरु को वन्दना कर रहा था, कोई धर्म-कथा कह रहा था, कोई श्रुतका उद्देश अनुसन्धान कर रहा था, कोई अनुज्ञा दे रहा था और कोई तत्त्व कह रहा था। सार्थवाह ने सबसे पहले आचार्य्य महाराज को और पीछे अनुक्रम से अन्यान्य मुनियों को वंदना किया। उन्होंने उसे पाप नाश करनेवाला "धर्मलाभ" दिया। इसके बाद-आचार्य के चरण-कमलों के पास, राजहंस की तरह, बैठकर सार्थवाह ने, आनन्द के साथ, नीचे लिखी बातें कहनी आरम्भ कीं –

क्षमा प्रार्थना।

"हे भगवन्! जिस समय मैंने आप को मेरे साथ आने के लिये कहा था, उस समय मैंने शरद् ऋतुके मेघ की गर्जना के समान मिथ्या सम्भ्रम दिखाया था, क्योंकि उस दिन से आज-तक न तो मैं आपको वन्दना करने आया और न अन्नपान तथा वस्त्रादिक से आपका सत्कार ही किया। जाग्रतावस्था में रहते हुए भी, सुप्तावस्था में रहने वाले के समान, मैंने यह क्या किया? मैंने आपकी अवज्ञा की और अपना वचन भङ्ग किया। इसलिए हे महाराज! आप मेरे इस प्रमादाचरण के लिए मुझे क्षमा प्रदान कीजिये। महात्मा लोग सब कुछ सहनेसे ही हमेशा "सर्वसह"* की उपमा को पाये हुए हैं।

* पृथ्वी को "सब सहनी" इसीलिये कहते हैं, कि उसे संसार खूँदता है और उसपर अनेक प्रकार के अत्याचार करता है, परन्तु वह चुपचाप सब सहती है। महापुरुष भी पृथ्वी की तरह ही सब कुछ सहनेवाले होते हैं, इसीसे उन्हें "सर्वसह" की उपमा मिली है।

धन सार्थवाहका मुनिदान ।

सार्थवाह की ये बातें सुनकर सूरि ने कहा—"सार्थवाह ! मार्ग में हिंसक पशुओं और चोर डाकुओं से तुमने हमारी रक्षा की है। तुमने हमारा सब तरह से सत्कार किया है। तुम्हारे सघके लोगों ने हमें योग्य अन्नपानादि दिये हैं; इसलिए हमें किसी प्रकार का भी दुःख या क्लेश नहीं हुआ है। तुम हमारे लिए ज़रा भी चिन्ता या खेद मत करो।" सार्थवाह ने कहा—"सत्पुरुष निरन्तर गुणों को ही देखते हैं, इसीसे, मेरे दोष सहित होने पर भी, आप मुझे ऐसा कहते हैं; यानी सदोष होनेपर भी मुझे निर्दोष मानते हैं। आप चाहें, जो कहें, मेरा तो अपने प्रमाद के कारण सिर नीचा हुआ जाता है। सचमुच ही, इस समय मैं अतीव लज्जित हूँ। अतः आप प्रसन्न हूजिये और साधुओं को मेरे पास आहार लाने को भेजिये; जिससे मैं इच्छानुसार आहार दूँ।" सूरि बोले—"तुम जानते हो कि, वर्तमान योग द्वारा जो अन्नादिक अकृत, अकारित और अचित्त होते हैं, वे ही हमारे उपयोग में आते हैं।" सूरि के ऐसा कहने पर सार्थवाह ने कहा—"जो चीज़ आपके उपयोग में आयेगी, मैं उसे ही साधुओं को दूँगा।" यह कहकर धन-सार्थवाह अपने आवास-स्थान को चला गया। उसके पीछे-पीछे ही दो साधु भिक्षा उपार्ज्जनार्थ उसके डेरे पर गये, पर दैवयोगसे, उस समय, उसके घरमें साधुओंको देने योग्य कुछ भी नहीं था। वह इधर-उधर देखने लगा। एक जगह

उसे अपने निर्मल अन्तः करण के समान ताज़ा घी दीख गया। उसने कहा—'क्या यह आपके ग्रहण करने योग्य है?' साधुओं ने उत्तर दिया—'हाँ, इसे हम ग्रहण कर सकते हैं। यह हमारे उपयोग में आ जायगा। इसके लेनेमें हमें कोई आपत्ति नहीं।' यह कहते हुए उन्होंने अपना पात्र रख दिया। मैं धन्य हुआ, मैं कृतकृत्य हुआ, मैं पुण्यात्मा हुआ, ऐसा विचार करते-करते उसे रोमाञ्च हो आया और उसने साधुओं को घी दे दिया। आनन्द के आँसुओं द्वारा पुण्याङ्कुर को बढाते हुए, सार्थवाह ने घृत दान करने के वाद मुनियों को नमस्कार किया। मुनि भी सब प्रकार के कल्याणो की सिद्धि में सिद्ध मन्त्र के समान 'धर्मलाभ' देकर अपने आश्रम को चले गये। इस दान के प्रभाव से, सार्थवाह को, मोक्षवृक्ष का बीज-रूप, अतीव दुर्लभ बोधिबीज—समकित प्राप्त हुआ; अर्थात् उसे मोक्ष लाभ करने का पूर्ण ज्ञान हो गया। रातके समय सार्थवाह फिर मुनियों के आश्रम में गया, आज्ञा लेकर और गुरु महाराज को वन्दना करके उनके सामने बैठ गया। इसके बाद, धर्मघोष सूरि ने उसे, मेघकी जैसी वाणी द्वारा, नीचे लिखी 'देशना' दी :—

धर्मघोष सूरिका उपदेश।

धर्मकी महिमा।

"धर्म ही उत्कृष्ट मंगल है। धर्म ही स्वर्ग और मोक्ष का दाता है। धर्म ही संसार रूपी वनको पार करने की राह दिखलाने

वाला है। धर्म माता की तरह पालन-पोषण करता है, पिता की तरह रक्षा करता है, मित्र की तरह प्रसन्न करता है, बन्धु की तरह स्नेह रखता है, गुरु की तरह उज्ज्वल गुणों का समावेश कराता है और स्वामी की तरह उत्कृष्ट प्रतिष्ठा प्राप्त कराता है। वह सुखका महा हर्म्य है, शत्रु-संकट में वर्म है, शीत से पैदा हुई जड़ता के नाश करने के लिए धर्म और पाप के मर्म को जानने वाला है। धर्म से जीव राज़ी होता है, धर्म से बलदेव होता है, धर्म से अर्द्धचक्री—वासुदेव होता है, धर्म से चक्रवर्ती होता है, धर्मसे देव और इन्द्र होता हैं, धर्म से ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान में अहमिंद्र देवत्व मिलता है ; धर्म से तीर्थङ्कर-पद तक मिल जाता है । जगत् में, धर्म से सब तरह की सिद्धियाँ मिलती हैं।

चार प्रकार का धर्म ।

दुर्गति में पड़े हुए जन्तुओं को धारण करता है, इस से उसे 'धर्म' कहते हैं। वह धर्म-दान, शील, तप और भाव के भेदसे चार प्रकार का है। धर्मके चार भेदों में जो 'दान धर्म' है, वह ज्ञान-दान, अभय-दान और धर्मोपग्रह दान,—इन नामों से तीन प्रकार का कहा है।

ज्ञान-दान ।

धर्म को नहीं जानने वाले लोगों को देशना—उपदेश देने, वाचना देने अथवा ज्ञान-प्राप्ति के साधन देने को 'ज्ञान-दान' कहते हैं। इस से प्राणी को अपने हिताहित या भले-बुरे का ज्ञान हो जाता है और जीव आदि तत्त्वों को जान जानेसे विरक्ति हो जाती है। ज्ञानदान से प्राणी को उज्ज्वल 'केवल-ज्ञान'

की प्राप्ति होती है और वह सब लोगों पर अनुग्रह करता हुआ, लोकाग्र पर आरूढ़ होता और मोक्ष-पद लाभ करता है।

अभय-दान।

अभयदान—मन, वचन और काया से जीव-हिंसा न करना, न कराना और करने वाले का अनुमोदन न करना 'अभय दान' है।

जीव दो प्रकार के होते हैं:—(१) स्थावर, और (२) त्रस।

स्थावर भी दो प्रकार के होते हैं:—(१) पर्याप्त, और (२) अपर्याप्त।

पर्याप्त की कारण-रूप छः पर्याप्तियाँ होती हैं। उनके नाम ये हैं:—(१) आहार, (२) शरीर, (३) इन्द्रिय, (४) श्वासोच्छ्वास, (५) भाषा, और (६) मन। एकेन्द्रिय के चार, विकलेन्द्रिय के पाँच और पञ्चेन्द्रिय के छः पर्य्याप्तियाँ होती हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति—ये एकेन्द्रिय स्थावर कहलाते हैं। इनमें से पहले चार के 'सूक्ष्म और बादर' दो भेद हैं। वनस्पति के 'प्रत्येक और साधारण' दो भेद हैं। उनमें से साधारण वनस्पति के भी 'सूक्ष्म और बादर' दो भेद हैं।

त्रस जीव द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय—इस तरह चार प्रकार के होते हैं। पञ्चेन्द्रिय के 'सञ्ज्ञी और असंज्ञी' ये दो भेद हैं। जो मन और प्राण को प्रवृत्त करके शिक्षा, उपदेश और आलाप को समझते हैं, उनको "संज्ञी" कहते हैं। जो इनके विपरीत होते हैं, वे "असंज्ञी" कहलाते हैं।

स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र,—ये पाँच इन्द्रियाँ हैं। स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द—ये अनुक्रम से इन्द्रियों के विषय हैं।

कृमि, शंख, जोंक, कौडी, सीप एवं छीपों वगैरः विविध आकृति वाले प्राणी 'द्वीन्द्रिय' कहलाते हैं। जूं, मकड़ी, चींटी, और लीख वगैरः को 'त्रीन्द्रिय जन्तु' कहते हैं। पतंग, मक्खी, भौंरा और डाँस प्रभृति 'चार इन्द्रिय वाले' हैं। बाक़ी जलचर, थल-चर, नभचर पशु-पक्षी, नारकी, मनुष्य और देव—इन सब को 'पञ्चेन्द्रिय जीव' कहते हैं। इतने प्रकार के जीवों के पर्य्याय यानी आयुष्य को क्षय करना, उन्हें दुःख देना और क्लेश उत्पन्न करना,—तीन प्रकार का 'वध' कहलाता है। इन तीनों प्रकार के जीव-वध को त्याग देना—'अभय-दान' कहलाता है। जो अभय-दान देता है,—वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों को देता है, क्योंकि वध से बचा हुआ जीव, यदि जीता है, तो, चार पुरुषार्थ प्राप्त कर सकता है; यानी जीव का जीवन रहने से उसे चार पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है। प्राणी को राज्य, साम्राज्य और देवराज्य की अपेक्षा जीवित रहना अधिक प्यारा है इसीसे अशुचि या नरक मे रहने वाले कीड़े और स्वर्ग मे रहने वाले इन्द्र,—दोनों को ही प्राणनाश का भय समान है। इस-वास्ते, बुद्धिमान पुरुष को, निरन्तर, सब जगत् के इष्ट अभय-दान मे, अप्रमत्त होकर, प्रवृत्त होना चाहिए।

अभयदान देनेसे मनुष्य परभव या जन्मान्तर मे मनोहर, दीर्घायु, आरोग्यवान, रूपवान, लावण्यवान और बलवान होता है।

धर्मोपग्रह दान।

दायकशुद्ध, ग्राहकशुद्ध, देयशुद्ध, कालशुद्ध और भावशुद्ध,—इस तरह 'धर्मोपग्रह दान' पाँच प्रकार का होता है। उसमें न्यायोपार्जित द्रव्यवाला, अच्छी वुद्धि वाला, इच्छा-रहित और दान देकर पश्चात्ताप नहीं करने वाला मनुष्य जो दान देता है, वह 'दायक शुद्ध दान' कहलाता है। ऐसा चित्त और ऐसा पात्र मुझे प्राप्त हुआ इसलिए मैं कृतार्थ हुआ,—जो ऐसा मानने वाला हो, वह 'दायक शुद्ध' होता है; सावद्य योग से विरक्त, तीन गौरव से वर्जित, तीन गुप्ति धारक, पांच समिति पालक, रागद्वेष से रहित, नगर-वस्ती-शरीर-उपकरण आदि में निर्मम, अठारह हज़ार शीलांग के धारक, ज्ञान, दर्शन और चारित्र-रूप रत्नत्रय के धारक, धीर, सोने और लोहे को समान समझने वाले, दो शुभ ध्यान (धर्म-ध्यान और शुक्ल ध्यान) को धारण करने वाले, जितेन्द्रिय, उदर-पूर्त्ति जितना ही आहार लेने वाले, निरन्तर यथा-शक्ति अनेक प्रकार के तप करने वाले, अखण्ड रूपसे सत्रह प्रकार के संयम को पालने वाले, अठारह प्रकार के ब्रह्मचर्य्य का आचरण करने वाले ग्राहक को दान देना—'ग्राहक शुद्ध दान' कहलाता है। बयालीस दोष-रहित, असन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र और संथारा आदि का दान—'देयशुद्ध दान' कहलाता है। योग्य समय पर, पात्र को दान देना—'काल शुद्ध दान' कहलाता है और कामना-रहित श्रद्धा-पूर्व्वक जो दान दिया जाता है,—वह 'भाव शुद्ध दान' कहलाता है। देह के बिना धर्म नहीं होता और अन्नादिक के बिना देह नहीं

रहती, अतः हमेशा 'धर्मोपग्रह दान' करना चाहिए। जो मनुष्य अशन पानादि धर्मोपग्रह दान सुपात्र को देता है,वह तीर्थको अविच्छेद करता और परमपद पाता है।

शीलव्रत।

सावद्य योगोंका जो प्रत्याख्यान है, उसे "शील" कहते है। वह देश-विरति तथा सर्व विरति ऐसे दो प्रकार का है। पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत—इस तरह सब मिलाकर देश-विरति के बारह प्रकार होते हैं। स्थूल, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये पाँच प्रकार अणुव्रत के हैं। दिगविरति, भोगोपभोग विरति, अनर्थ दण्ड विरति—ये तीन गुणव्रत हैं और सामायिक, देशावकाशिक, पौषध तथा अतिथि संविभाग—ये चार शिक्षाव्रत हैं। इस प्रकार का यह देश-विरति-गुण शुश्रूषा आदि गुणवाले,—यति-धर्म के अनुरागी,—धर्म-पथ्य-भोजन के अर्थी, शम-संवेग, निर्वेद, करुणा और आस्तिक्य,—इन पाँच लक्षण-युक्त, सम्यक्त्व को पाये हुए, मिथ्यात्व रहित और सानुबन्ध क्रोधके उदय से रहित गृहस्थी महात्माओं को, चारित्र मोहनी का नाश होने से, प्राप्त होता है। त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा के वर्जने को सर्वविरति कहते हैं। यह सिद्धिरूपी महल के ऊपर चढ़ने के लिए नसैनी-स्वरूप है। यह सर्वविरति गुण—प्रकृति से अल्प कषायवाले, संसार-सुख से विरक्त और विनय आदि गुण वाले महात्मा मुनियों को प्राप्त होता है।

तप-महिमा।

जो कर्म को तपाता है, उसे 'तप' कहते हैं। उसके 'वाह्य और अभ्यन्तर' ये दो भेद हैं। अनशन, ऊनोदरी, वृत्ति संक्षेप, रस-त्याग, कायक्लेश और सलीनता—ये छ. प्रकार के 'वाह्य तप' हैं और प्रायश्चित्त, वैयावृत्य, स्वाध्याय, विनय, कायोत्सर्ग और शुभ ध्यान,—ये छ. प्रकार के 'अभ्यन्तर तप' हैं।

देशनाकी समाप्ति।

ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप रत्नत्रय को धारण करने वाले में अद्वितीय भक्ति रखना, उसका कार्य करना, शुभ की ही चिन्ता करना और संसार की निन्दा करना—इन चार को 'भावना' कहते हैं। यह चार प्रकार का धर्म निस्सीम फल—मोक्ष फलके प्राप्त करने में साधन-रूप है; इसवास्ते संसार-भ्रमण से डरे हुए मनुष्यों को, सावधान होकर, इसकी साधना करनी चाहिए।"

पुनः मार्ग-गमन।

वसन्तपुर पहुँचना।

देह-त्याग।

इस प्रकार देशना सुनकर धन-सेठ बोला—'स्वामिन्! यह धर्म बहुत दिनों के बाद आज मेरे सुनने में आया है, इसलिए इतने दिनों तक मैं अपने कर्मों से ठगाता रहा,' वह इस तरह कहकर,

गुरु के चरण-कमलों तथा अन्य मुनियों को वन्दना कर के, अपने आत्माको धन्य मानता हुआ अपने निवास-स्थानको गया। इस प्रकार की धर्म-देशना से परमानन्द में मग्न सार्थवाह ने वह रात एक क्षण के समान विता दी। सोकर उठे हुए उस सार्थवाह के समीप-भाग में, प्रातः काल के समय, कोई मंगलपाठक शख-जैसी गंभीर और मधुर ध्वनिके साथ इस प्रकार वोलाः—"घोर अन्धकार से मलीन, पद्मिनीकी शोभाको चुरानेवाली और पुरुषोंके व्यवसाय को हरने वाली रात—वर्षा ऋतु की तरह—चली गई है। जिस में तेजस्वी और प्रचण्ड किरणों वाला सूर्य उदय हुआ है और जो व्यवसाय कराने में सुहृद् के समान है, ऐसा यह प्रात' काल, शरद् ऋतु के समय की माफ़िक़, वृद्धि को प्राप्त हो रहा है। जिस तरह तत्त्वज्ञान से बुद्धिमानो के मन निर्मल हो जाते हैं, उसी तरह इस शरद् ऋतु में, सरोवर और नदियोंके जल निर्मल होने लग गये हैं। जिस तरह आचार्य के उपदेश से ग्रन्थ सशय-रहित हो जाते हैं, उसी तरह, सूर्य की किरणों से कीचड़ सूख जाने के कारण, राहें साफ हो गई हैं। मार्ग के चीलों और चक्रधारा के वीच में जिस तरह गाड़ियाँ चलती हैं, उसी तरह नदियाँ अपने दोनों किनारों के वीच में वहने लग गई हैं और मार्ग—पके हुए तुच्छ धान्य, सावाँ, नीवार, वालुंक और कुंवल आदि से—पथिकों का आतिथ्य-सत्कार करते हुए से मालूम हो रहे हैं। शरद् ऋतु, वायु से हिलते हुए गन्नों के शब्द से, प्रवासियों को सवारियों पर चढ़ने के समय की सूचना सी देती मालूम हो रही है। सूर्य की प्रचण्ड किरणोंसे झुलसे

हुए पथिकोंके लिए बादल, क्षण भर को, छातोंका काम करने लगे हैं। सड्डके साँड अपने खुरोंसे जमीनको खोद रहे हैं, मालूम होता है, सुख-पूर्व्वक चलनेके लिए, वे जमीनको हमवार या चौरस कर रहे हैं। पहले जो मार्गके प्रवाह गर्जना करते और पृथ्वी पर उछलते हुए दिखाई देते थे, वे इस समय—वर्षाकालके बादलोंकी तरह—नष्ट हो गये हैं। फलों के भार से झुकी हुई डालियों और क़दम-क़दम पर मिलने वाले साफ पानी के झरनोंसे, पथिकगण, मार्ग में बिना किसी प्रकार के यत्नके ही, पाथेयवाले हो गये हैं। उत्साह-पूर्ण चित्तवाले उद्यमी लोग, राजहंस की तरह, देशान्तर जाने के लिए उतावल कर रहे हैं।' मङ्गल-पाठक की उपरोक्त बातें सुन कर, 'इसने मुझे प्रयाण-समय की सूचना दी है' ऐसा विचार कर, सार्थवाहने प्रयाण भेरी बजवा दी। गोपालोंके गोशृङ्गनादसे जिस तरह गायों का झुण्ड चलता है उसी तरह पृथ्वी और आकाशके मध्य भाग को पूर देने वाले भेरी-नाद से सारा सार्थ वहाँ से चल दिया। भव्य प्राणी-रूपी कमलों को बोध करने में दक्ष, मुनियों से घिरे हुए आचार्य्य नेभी—किरणों से घिरे हुए भास्करकी तरह—वहाँ से विहार किया। सङ्घ की रक्षा के लिए, आगे-पीछे और दोनों बाज़ू, रक्षा करने वाले सवारों को तैनात करके, धन सेठने वहाँसे कूँच किया। सार्थवाह जब उस घोर वन को पार कर गया, तब उस से आज्ञा लेकर, धर्मघोष आचार्य्य अन्यत्र विहार कर गये। जिस तरह नदियों का समूह समुद्र में पहुँच जाता है, उसी तरह सार्थवाह भी, बिना किसी प्रकार की विघ्न-बाधा के, मार्ग को तय

कर के, वसन्तपुर पहुँच गया। वहाँ पर उसने, थोड़े ही समय में, कितना ही माल बेच दिया और कितना ही ख़रीद लिया। इस के बाद, जिस तरह मेघ समुद्र से जल भर लाता है, उसी तरह धन-सेठ, खूब धन-सम्पत्ति भरकर, फिर क्षितिप्रतिष्ठितपुरमें आया और कुछ समय के बाद, उम्र पूरी होने पर, काल-धर्म को प्राप्त हुआ; अर्थात् पञ्चत्व को प्राप्त हुआ—इस संसार से चल बसा।
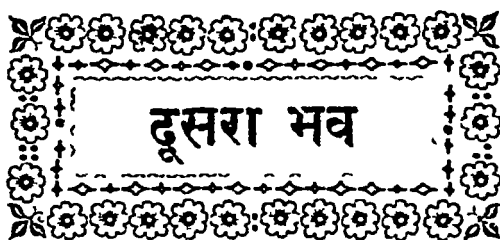
सेठ का पुनर्जन्म।

युगलियों का वर्णन।

मुनि-दान के प्रभाव से, वह, उत्तर कुरुक्षेत्र में, सीता नदी के उत्तर तट की ओर, जम्बूवृक्ष के पूर्व अञ्चल में, जहाँ सर्वदा एकान्त सुषम नामक आरा वर्तता है, युगलियारूप में, उत्पन्न हुआ।

युगलिये तीन-तीन दिन के बाद खाने की इच्छा करने वाले; दो सौ छप्पन पृष्ठ करण्डक या पसलियोंवाले, तीन कोसके शरीर वाले, तीन पल्य की आयुवाले, अल्प कषाय वाले और ममता-हीन

होते हैं। उनके—आयुष्य के अन्तमें—मरने के किनारे होने पर, एक समय प्रसव होता है, और पैदा होता है एक अपत्यका जोड़ा यानी जोड़ली सन्तान। उस संतानका ४६ दिन तक पालन-पोषण करके, वे मरजाते हैं। उस देहको त्यागनेके बाद,वे देवगतिमें, उत्तर कुरु-क्षेत्र में, उत्पन्न होते हैं। उस उत्तर कुरुक्षेत्र में स्वभावसे ही शक्कर-जैसी स्वादिष्ट रेती है। शरद् ऋतु की चन्द्रिका के समान स्वच्छ निर्मल जल और रमणीक भूमि है। उस क्षेत्र में मद्याङ्ग प्रभृति दश प्रकार के कल्पवृक्ष हैं, जो युगलियों को मनवांछित पदार्थ देते हैं। उन में से मद्याङ्ग नामक कल्पवृक्ष मद्य देते हैं, भृङ्गाङ्ग नामक कल्प-वृक्ष पात्र देते हैं, तूर्याङ्ग नामक कल्पवृक्ष मधुर रव से बजनेवाले अनेक प्रकार के बाजे देते हैं, दीप-शिखाङ्ग और ज्योतिष्काङ्ग नामक कल्पवृक्ष अद्भुत प्रकाश या रोशनी देते हैं, चित्राङ्ग नाम के कल्पवृक्ष फूलमालाएं देते हैं, चित्ररस नाम के कल्पवृक्ष भोजन देते हैं,मण्यवङ्ग नामक कल्पवृक्ष गहने और जेवर देते हैं, गेहा-कार कल्पवृक्ष गेह या घर देते हैं एव अनग्न नामके कल्पवृक्ष दिव्य वस्त्र देते हैं। ये कल्पवृक्ष नियत और अनियत दोनों प्रकारके पदार्थ देते हैं। और कल्पवृक्ष भी सब तरह के मन-चाहे पदार्थ देते हैं। वहाँ पर सब तरह के मन-चाहे पदार्थ देने वाले कल्पवृक्षों की भरमार होने से, धन-सेठ का जीव, युगुलिया-रूप में, स्वर्ग के समान विषय-सुखों को भोगने लगा।

तीसरा और चौथा भव

देवलोक में जन्म।

युगलिया जन्म की उम्र पूरी करके, धन सेठ का जीव, पूर्व-जन्म के दान के फल-स्वरूप, देवलोकमें देवता हुआ। वहाँ से चव कर, वह पश्चिम महाविदेह-स्थित गन्धिलावती विजय में, वैताढ्य पर्वतके ऊपर, गाँधार देशके गन्धसमृद्धि नामक नगरमें, विद्याधर-शिरोमणि शतवल नाम के राजा की चन्द्रकान्ता नाम की भार्य्या की कोख से पुत्र-रूप मे उत्पन्न हुआ। शक्तिमान् होने के कारण, उस का नाम महावल रखा गया। रक्षकों द्वारा रक्षित और लालित-पालित कुमार महावल, क्रम-क्रम से, वृक्ष की तरह बढ़ने लगा। चन्द्रमा की तरह, अनुक्रम से, सब कलाओं से पूर्ण होकर, कुमार महावल लोगों के नेत्रों को उत्सव-रूप हो गया। उचित समय आने पर, अवसर को समझने वाले माता-पिताने, मूर्त्तिमती लक्ष्मी के समान विनयवती कन्या के साथ, उस का विवाह कर दिया। वह कामदेव के तीक्ष्ण शस्त्र-रूप, कामिनियों के कर्मण-रूप और रतिके लीलावनके समान यौवनको प्राप्त हुआ। उसके पैर अनुक्रम

से कछुए की तरह ऊँचे और समान तलुएवाले थे। उसके शरीर का मध्य भाग सिंहके मध्य भागको तिरस्कृत करने वालोंमें अगुआ था। उसकी छाती पर्वतकी शिलाके समान थी। उसके ऊँचे-ऊँचे कन्धे बैलके कन्धोंकी तरह शोभायमान होने लगे। उस की भुजाएं शेषनागके फणोंसी शोभित होने लगीं। उसका ललाट पूर्णिमा के आधे उगे हुए चन्द्रमा की लीला को ग्रहण करने लगा और उसकी स्थिर आकृति—मणियों के समान दन्तश्रेणी, नखों और स्वर्ण-तुल्य कान्तियुक्त शरीर से—मेरुपर्वत की समस्त लक्ष्मी की तुलना करने लगी।

राजा शतबलके उच्च विचार।

कुमार का अभिषेक।

एक दिन सुबुद्धिमान पराक्रमी और तत्वज्ञ विद्याधर-पति राजा शतबल, एकान्त स्थलमें, विचार करने लगा:—'अहो! यह शरीर स्वभाव से ही अपवित्र है इसे ऊपर से नये-नये गहनों और कपडों से कबतक गोपन रख सकते हैं? अनेक प्रकार से सत्कार करते रहने पर भी, यदि एक बार सत्कार नहीं किया जाता, तो, खल पुरुष की तरह यह देह तत्काल विकार को प्राप्त हो जाती है। बाहर पडे हुए विष्ठा, मूत्र और कफ वगैर' पदार्थों से लोग घृणा करते हैं; किन्तु शरीर के भीतर ये ही सब पदार्थ भरे पडे हैं, पर लोग उनसे घृणा नहीं करते! जीर्ण हुए वृक्षके कोटर में, जिस तरह सर्प बिच्छू वगैर' क्रूर प्राणी उत्पन्न होते हैं, उसी

तरह इस शरीर में, पीड़ा करने वाले अनेक रोग उत्पन्न होते है। शरद् ऋतु के मेघ की तरह यह काया, स्वभाव से ही, नाशमान् है। यौवन भी देखते-देखते, विजली की तरह, नाश हो जाने वाला है। आयुष्य पताका की तरह चञ्चल है। सम्पत्ति तरंगों की तरह तरल है। भोग भुजङ्ग के फण की तरह विषम हैं। संगम स्वप्न की तरह मिथ्या है। शरीर के अन्दर रहने वाला आत्मा, काम क्रोधादिक तापो से तपकर, पुटपाक की तरह, रात-दिन सीजता रहता है। अहो ! आश्चर्य्य की वात है कि, इन दुखदायी विषयों में सुख मानने वाले प्राणियों को, नरक के अपवित्र कीढ़े की तरह, ज़रा भी विरक्ति नहीं होती। अन्धा आदमी जिस तरह अपने सामने के कूए को नहीं देखता, उसी तरह, दुरन्त विषयों के पञ्जों में फँसा हुआ मनुष्य अपने सामने खड़ी हुई मृत्यु को नहीं देखता। ज़रा सी देरके लिए, विष के समान मीठे लगने वाले विषयों से, आत्मा मूर्च्छित हो जाता है, उसके होश-हवास ठिकाने नहीं रहते, इसीसे अपनी भलाई या हितका कुछ भी विचार नहीं कर सकता। चारों पुरुषार्थों के वरावर होने पर भी, आत्मा पापरूप 'अर्थ और काम' में ही प्रवृत्त होता है, यानी धर्म और मोक्ष का ख़याल भुलाकर, केवल धन और स्त्री का ही ध्यान रखता है—धर्म और मोक्ष की प्राप्ति में प्रवृत्त नहीं होता। प्राणियों को, इस अपार संसार रूपी समुद्र में, अमूल्य रत्न के समान, मनुष्यभव मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। कदाचित मनुष्य-भव प्राप्त हो भी जाय, तोभी उसमें भगवान् अरहन्तदेव और सुसाधु गुरु तो

पुण्य-योग से ही मिलते हैं। जो अपने मनुष्यभव का फल ग्रहण नहीं करता, वह बस्तीवाले शहर में चोरों से लुटे हुए के समान है। इसवास्ते कवचधारी महाबल कुमार को राज्य-भार सौंप कर—उसे गद्दी पर बिठाकर, मैं अपनी इच्छा पूरी करूं।' मन-ही-मन ऐसे विचार करके, राजा शतबल ने अपने पुत्र—कुमार महाबल—को अपने निकट बुलवाया और उस विनीत-नम्र, सुशील राजकुमार को राज्य-भार ग्रहण करने—राजकी बागडोर अपने हाथों में लेने का आदेश किया। महात्मा पुरुष गुरुजनों की आज्ञा भंग करने में बहुत डरते हैं, इस काम में वे पूरे कायर होते हैं; अत. राजकुमार ने, पिता की आज्ञा से, राजकाज हाथ में लेना और चलाना मंज़ूर कर लिया। राजा शतबलने, कुमार को सिंहासनारूढ़ करके, उसका अभिषेक और तिलक-मंगल अपने ही हाथों से किया। मुचकुन्द के पुष्पों की सी कान्तिवाले चन्दन के तिलक से, जो उसके ललाट पर लगाया गया था, नवीन राजा ऐसा सुन्दर मालूम होता था, जैसा कि चन्द्रमा के उदय होनेसे उदयाचल मालूम होता है। हंस के पखों के समान, पिता के छत्र के सिरपर फिरने से वह ऐसा शोभने लगा, जैसा कि शरद् ऋतु के बादलों से गिरिराज शोभता है। निर्मल बगुलों की जोड़ी से मेघ जैसा शोभता है, दो सुन्दर चलायमान चँवरों से वह वैसा ही शोभने लगा। चन्द्रोदय के समय, समुद्र जिस तरह गम्भीर गरजना करने लगता है; उसके अभिषेक के समय, दशों दिशाओं को गुंजाने वाली, मंङ्गल ध्वनि उसी तरह गम्भीर शब्द

करने लगी। 'यह शतबल राजा का ही रूपान्तर है, उसका ही दूसरा रूप है, उसी की आत्मा की छाया है,—ऐसा समझ कर, सामन्त और मंत्री—अमीर-उमराव और वजीर लोग उसकी इज्जत, उसकी प्रतिष्ठा और उसका आदर-सत्कार एवं मान करने लगे।

शतबलका दीक्षाग्रहण।

स्वर्गारोहण।

इस तरह पुत्र को राज्यपद पर बैठाकर, शतबल राजा ने, आचार्य्य के चरणों के समीप जाकर, शमसाम्राज्य—चारित्र ग्रहण किया। उसने असार विषयों को त्यागकर, साररूप रत्न-त्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यग्चारित्र को धारण किया, तथापि उसकी समचित्तता अखण्ड रही। उस जितेन्द्रिय पुरुष ने कषायो को इस तरह जड़ से नष्ट कर दिया; जिस तरह नदी अपने किनारे के वृक्षों को समूल उखाड फैंकती है। वह महात्मा मनको आत्मस्वरूप मे लीनकर, वाणी को नियम में रख, काया से चेष्टा करता हुआ, दुःसह परिषहों को सहन करने लगा। मैत्री, करुणा, प्रमोद और माध्यस्थ,—इन चार भावनाओ से जिस की ध्यान-सन्तति वृद्धि को प्राप्त हो गई है, ऐसा वह शतबल राजर्षि, मुक्ति में ही हो इस तरह, अमन्द आनन्द मे मग्न रहने लगा। ध्यान और तप द्वारा, अपने आयुष्य को लीलामात्र में ही शेष करके, वह महात्मा देवताओ के स्थान को प्राप्त हुआ, यानी देवलोक मे गया।

महाबल की राज्यस्थिति।

कुमार की विषया सक्ति।

महावल कुमार भी, अपने वलवान विद्याधरों के साहाय्य से, इन्द्र के समान अखण्ड शासन से, पृथ्वी का राज्य करने लगा। जिस तरह हंस कमलिनी के खण्डों में क्रीड़ा करता है; उसी तरह वह, रमणियों से घिरा हुआ, सुन्दर वागीचों की पंक्तियों में सुख से क्रीडा करने लगा। उसके नगर में हमेशा होनेवाले सगीत की प्रतिध्वनि से वैताढ्य पर्वत की गुफायें, मानो संगीत का अनु-वाद करती हों इस तरह, प्रतिध्वनित होने या गूँजने लगीं। अगल-बग़ल में स्त्रियों से घिरा हुआ, वह मूर्त्तिमान शृङ्गार रसके जैसा दीखने लगा। स्वच्छन्दता से विषय-क्रीड़ा में आसक्त हुए महावल राजा के लिए, विपुवत् के समान, रात और दिन समान होने लगे।

राजसभा।

एक दिन, दूसरे मणिस्तम्भ हों ऐसे अनेक मंत्री और सामन्तों से अलकृत, सभा में कुमार वैठा हुआ था, और उसको नमस्कार करके सारे सभासद भी अपने-अपने योग्य स्थानों पर वैठे हुए थे। वे राजकुमार के विषय में, एकाग्र नेत्रों से, मानो योग की लीला धारण करते हों, ऐसे दिखाई देते थे। स्वयं वुद्धि, संभिन्नमति, शतमति और महामति—ये चार मंत्री भी आकर वहाँ वैठे हुए थे। उनमें से स्वामी की भक्ति में अमृत-सिन्धु-तुल्य, वुद्धि-

रूपी रत्नमें रोहणाचल पर्वत के समान और सम्यग्दृष्टि स्वयं-बुद्धमत्री, उस समय, इस प्रकार विचार करने लगाः—

स्वयंबुद्धमंत्री की स्वामिभक्ति ।

"अहो ! हमारे देखते देखते विषयासक्त हमारे स्वामी का, दुष्ट अश्वों की तरह, इन्द्रियों द्वारा हरण हो रहा है. अर्थात् दुष्ट घोड़े जिस तरह अपने रथी को कुराहों में ले जाकर नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं; उसी तरह दुष्ट इन्द्रियाँ हमारे विषयों मे फँसे हुए स्वामी का सत्यानाश कर रही हैं ! हम सब लोग देख रहे हैं, पर कुछ करते-धरते नहीं । क्या यह शर्म की बात नही है ? इसकी उपेक्षा करने वाले, हम लोगों को धिक्कार है ! विषय-विनोद में लगे हुए हमारे स्वामी का जन्म व्यर्थ जा रहा है,—इस बात को जान-कर, मेरा मन उसी तरह तड़फता और छटपटाता है; जिस तरह कि अल्प जलमें मछली तड़फती और छटपटाती है । अगर हमारे जैसे मंत्रियों से भी कुमार उच्च पदको प्राप्त न हो, कुराह को त्यागकर सुराह पर न आवे, विषयों को विषवत् न त्यागे, तो हम में और मसखरों में क्या तफावत होगा ? इसलिए स्वामी से अनुनय-विनय करके उन्हें हितमार्ग पर लाना चाहिए । नम्रता-पूर्व्वक विषय-भोगों की बुराइयाँ समझा-बुझाकर, उन्हें कुराह से हटाकर सुराह पर लाना चाहिये । क्योंकि राजा लोग, सारणी की तरह, जिधर प्रधान या मत्रीगण ले जाते हैं, उधरही जाते हैं। सम्भव है, स्वामी के व्यसनों से जीवन निर्वाह करने वाले, स्वामी

को विषय-भोगों में लगाकर ज़िन्दगी बसर करने और गुलछर्रे उड़ाने वाले विरोध करें, हमारे अच्छे काम में विघ्न-बाधा उपस्थित करें लेकिन हमको तो स्वामी के हितकी बात कहनी ही चाहिये। क्या हिरनों के डर से कोई खेत में अनाज बोना बन्द कर देता है? स्वामी के सच्चे शुभचिन्तक सेवक को विरोधियों के भय और हज़ारों आपदाओं की सम्भावना होने पर भी, अपने पवित्र कर्त्तव्य या फ़र्ज़ के अदा करने में आनाकानी न करनी चाहिए। स्वयंबुद्ध मंत्री ने, जो सारे बुद्धिमानों में अग्रणी या अगुआ था, इस प्रकार विचार कर और अञ्जलिबद्ध होकर अर्थात् हाथ जोड़ कर राजा से कहा—

स्वयंबुद्ध मंत्री का सदुपदेश।

"हे राजन! यह संसार समुद्र के समान है। नदियों के जल से जिस तरह समुद्र की तृप्ति नहीं होती, समुद्र के जल से जिस तरह बड़वानल की तृप्ति नहीं होती; प्राणियों से जिस तरह यमराज की तृप्ति नहीं होती, काष्ठ-समूह से जिस तरह अग्नि की तृप्ति नहीं होती, उसी तरह, इस जगत् में, विषय-सुखों से, किसी दशामें भी आत्मा की तृप्ति नहीं होती। प्राणी ज्यों-ज्यों विषयों को भोगता है, त्यों त्यों उसकी उनके भोगने की इच्छा और भी बलवती होती है। नदी-किनारे की छाया, दुर्जन, विषय और सर्पादिक विषधर प्राणी, अत्यन्त सेवन करनेसे, विपत्ति के कारण ही होते हैं। सारांश यह कि, ये जितने ही अधिक सेवन

किये जाते हैं ; उतने ही अधिक दुःख और आपदाओं के देनेवाले होते हैं। इनका परिणाम भला नहीं। ये सदा दुःख के मूल हैं। कामदेव, सेवन करने से, तत्काल सुख के देनेवाला जान पड़ता है, परन्तु परिणाम में वह विरस है। खुजाने से जिस तरह दाद बढ़ता है ; सेवन करनेसे उसी तरह कामदेव भी बढ़ता है। दाद में एक प्रकार की खुजली चला करती है, उसमें मनुष्य को अपूर्व आनन्द आता है. उस आनन्द की बात लिखकर बता नहीं सकते। ज्यों ज्यों खुजाते हैं, खुजाते रहने की इच्छा होती है ; खुजाने से तृप्ति नहीं होती; पर परिणाम उसका बुरा होता है; दाद बढ़ जाता है, जिससे नाना प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं। दाद की सी ही हालत कामदेव की है। स्त्री-सेवन से तत्काल एक प्रकार का अपूर्व्व आनन्द आता है. उस आनन्द पर पुरुष मुग्ध हो जाता है। निरन्तर स्त्री सेवन करने से मनकी तृप्ति नहीं होती। वह अधिकाधिक स्त्री-सेवन चाहता है; परन्तु परिणाम इसका भी दाद की तरह ख़राब ही होता है। मनुष्य का बन्धन और दुःखों से पीछा नहीं छूटता ; क्योंकि कामदेव नरक का दूत, व्यसनों का समुद्र, विपत्ति-रूपी लता का अङ्कुर और पाप-वृक्ष का क्यारा है। कामदेव के वश में हुआ पुरुष, मद्य के वश में हुए की तरह, सदाचार रूपी मार्ग से भ्रष्ट होकर, संसार रूपी खड्डे में गिरता है। जहाँ कामदेव की तूती बोलती है, जहाँ कामदेव का आधिपत्य रहता है, वहाँ से सदाचार शीघ्र ही नौ दो ग्यारह होता है। कामदेव पुरुष के सर्व्वनाश में कोई बात उठा नहीं रखता। जिस तरह गृहस्थ के घर में चूहा

घुसकर अनेक स्थानों को खोद डालता है, उसी तरह कामदेव मनुष्य-शरीर में घुस कर अर्थ, धर्म और मोक्ष को खोद बहाता है। स्त्रियाँ देखने, छूने और भोगने से, विषवल्ली की तरह, अत्यन्त व्यामोह-पीड़ा उत्पन्न करती हैं। वे कामरूपी लुब्धक—पारधि या शिकारी की जाल हैं; इसलिये हिरन के समान पुरुषों के लिए अनर्थकारिणी होती हैं। जो मसखरे मित्र हैं, वे तो केवल खाने-पीने और स्त्री-विलास के मित्र हैं। इससे वे अपने स्वामी के, परलोक-सम्बन्धी हित का विचार नहीं करते। स्वार्थियों को स्वामी के हित से क्या मतलब? स्वामी के हित का विचार करने से उनके अपने स्वार्थ में बाधा पड़ती है। उनकी मौज़ में फ़र्क़ आता है। ये स्वार्थ-तत्पर नीच, लम्पट और खुशामदी होकर, अपने स्वामी को स्त्रियों की बातों, नाच, गाने और दिल्लगी से मोहित करते हैं। बेर के झाड़ के सम्बन्ध से जिस तरह केले का वृक्ष कभी सुखी नहीं होता, उसी तरह कुसंग से कुलीन पुरुषों का कभी भी अभ्युदय नहीं होता—अधःपतन ही होता है। इसलिए हे कुलवान स्वामी! प्रसन्न हूजिये। आप स्वयं विज्ञ हैं; इसलिये मोह को त्यागिये और व्यसनों से विरक्त होकर धर्म में मन लगाइये। छाया-हीन वृक्ष, जल-रहित सरोवर, सुगन्ध-विहीन पुष्प, दन्त-बिना हस्ती, लावण्य-रहित रूप, मंत्री बिना राज्य, देव-मूर्त्ति बिना मन्दिर, चन्द्र बिना यामिनी, चारित्र बिना साधु, शस्त्र-रहित सैन्य और नेत्र रहित मुख जिस तरह अच्छा नहीं लगता, उसी तरह धर्म-

रहित पुरुष भी अच्छा नहीं लगता—बुरा मालूम होता है। चक्रवर्ती भी यदि अधर्मी होता है, तो उसको पर भव में ऐसा जन्म मिलता है, जिस में खराब अन्न भी राज्य-लक्ष्मी के समान समझा जाता है। यदि मनुष्य बड़े कुल में पैदा होकर भी धर्मोपार्जन नहीं करता है ; तो दूसरे भव मे, कुत्ते की तरह, दूसरे के जूठे भोजन को खाने वाला होता है। ब्राह्मण भी यदि धर्म-हीन होता है, तो वह नित्य पाप का बन्धन करता है और बिल्ली के समान दुष्ट चेष्टा वाला होकर म्लेच्छ-योनि मे जन्म लेता है। धर्म-हीन भव्य प्राणी भी बिल्ली, सर्प, सिंह, बाज़ और गिद्ध प्रभृति की नीच योनियों में अनेकानेक जन्मों तक उत्पन्न होता और वहाँ से नरक में जाता है और वहाँ, मानो वैर से कुपित हो रहे हों ऐसे, परमाधार्म्मिक देवताओ से अनेक प्रकार की कदर्थना पाता है। सीसे का गोला जिस तरह अग्नि में पिघलता है , उसी तरह अनेक व्यसनो की आवेग रूपी अग्नि के भीतर रहने वाले अधर्म्मी प्राणियों के शरीर क्षीण होते रहते हैं ; अत. ऐसे प्राणियों को धिक्कार है ! परम बन्धु की तरह, धर्म से सुख की प्राप्ति होती है। नाव की तरह, धर्म से आपत्ति रूपी नदियाँ पार की जा सकती हैं। जो धर्मोपार्जन में तत्पर रहते हैं, वे पुरुषो मे शिरोमणि होते हैं। लताएँ जिस तरह वृक्षों का आश्रय लेती हैं सम्पत्तियाँ उसी तरह धर्मात्माओं का आश्रय ग्रहण करती हैं , यानी लक्ष्मी धर्मात्माओ के पास आती है। जिस तरह जल से अग्नि नष्ट हो जाती है , उसी तरह धर्म से आधि, व्याधि और उपाधि, जोकि पीडा की

हेतु हैं, तत्काल नष्ट हो जाती हैं। परिपूर्ण पराक्रम से किया हुआ धर्म, दूसरे जन्म में, कल्याण-सम्पत्ति देने के लिए जामिन रूप होता है। हे स्वामिन्! वहुत क्या कहूँ? नसैनी से जिस तरह मनुष्य महल के सर्वोच्च भाग पर चढ़ जाता है, उसी तरह प्राणी बलवान धर्म से लोकाग्र—मोक्ष—को प्राप्त होता है। आप धर्म ही से विद्याधरों के स्वामी हुए हैं, इसलिये, उत्कृष्ट लाभ के लिये, अब भी धर्म का ही आश्रय लें।

नास्तिक मत-निरूपण।

वाद-विवाद।

स्वयंबुद्ध मन्त्री के उपरोक्त बातें कहने के बाद, अमावस्या, की रात्रि के समान मिथ्यात्वरूपी अन्धकार की खान रूप और विष-समान विषम बुद्धिवाला संभिन्नमति नाम का मन्त्री बोला—"अरे स्वयंबुद्ध तुम धन्य हो! तुम अपने स्वामी की अतीव हितकामना करते हो! डकार से जिस तरह आहार का अनुभव होता है; उसी तरह तुम्हारी वाणी से तुम्हारे अभिप्राय का पता चलता है। सदा सरल और प्रसन्न रहने वाले स्वामी के सुख के लिये, तुम्हारे जैसे कुलीन मंत्री ही ऐसी बातें कह सकते हैं, दूसरा तो कोई कह नहीं सकता! किस कठोर-स्वभाव के उपाध्याय ने तुम्हें पढाया है, जिससे असमय में वज्र पात-जैसे वचन तुमने स्वामी से कहे। सेवक जब अपने भोग के लिएही स्वामी की सेवा करते हैं, तब वे अपने स्वामी से—"आप भोग

न भोगें" ऐसा किस तरह कह सकते हैं? जो इस भव-सम्बन्धी भोगों को त्याग कर, परलोकके लिये चेष्टा करते हैं, वे, हथेली में रक्खे हुए चाटने-योग्य लेह्य पदार्थ को छोड़कर, कोहनी चाटनेवाले का सा काम करते हैं। धर्म से परलोक में फल की प्राप्ति होती है, ऐसी बात जो कही जाती है, वह असङ्गत है; क्योंकि पर-लोकी जनों का अभाव है, इसलिये परलोक भी नहीं है। जिस तरह गुड़, पिष्ट और जल वगैरः पदार्थों से मद-शक्ति उत्पन्न होती है; उसी तरह पृथ्वी, जल, तेज और वायु से चेतना-शक्ति उत्पन्न होती है। शरीर से जुदा कोई शरीरधारी प्राणी नहीं है, जो इस शरीर को त्याग कर परलोक में जाय, इसलिये विषय-सुख को बेखटके भोगना चाहिये, विषयों के भोगने में निःशङ्क रहना चाहिये और अपने आत्मा को ठगना नहीं चाहिए; क्योंकि स्वार्थ भ्रंश करना मूर्खता है। धर्म और अधर्म—पुण्य औप पाप की तो शङ्का ही नहीं करनी चाहिए; क्योंकि सुखादिक में—वे विघ्न-बाधा उपस्थित करने वाले हैं; और फिर; गधे के सींगों की तरह वे कोई चीज हैं भी नहीं। स्नान, विलेपन, पुष्प और वस्त्राभू-षण प्रभृति से जिस पत्थर को पूजते हैं, उसने क्या पुण्य किया है? और जिस पत्थर पर बैठकर लोग मल-मूत्र त्याग करते हैं, उसने क्या पाप किया है? अगर प्राणी कर्म से उत्पन्न होते और मरते हैं; तो पानी के बुलबुले किस कर्म से उत्पन्न और नष्ट होते हैं? जबतक चेतन अपनी इच्छा से चेष्टा करता है, तब तक वह चेतन कहलाता है और जब वह चेतन नष्ट हो जाता है, तब उसका

पुनर्जन्म नहीं होता। जो प्राणी मरते हैं, वे ही फिर जन्म लेते हैं, ऐसा कहना सर्वथा युक्तिशून्य है,—कहने भर की बात है। इस बात में कुछ भी तथ्य नहीं है। सिरस के फूल-जैसी कोमल शय्या पर, रूपलावण्यवती सुन्दरी रमणियों के साथ, निःशङ्क रमण करते हुए और अमृत-समान भोज्य और पेय पदार्थों को यथा-रुचि आस्वादन करते हुए अपने स्वामी को जो कोई रोकता है—इन सब भोगों के भोगने का निषेध करता है, उसे स्वामी का वैरी समझना चाहिए। हे स्वामिन्! मानो आप सौरभ्य—सुगन्ध ही से पैदा हुए हों, इस तरह आप कपूर, चन्दन, अगर, कस्तूरी और चन्दनादि से रात-दिन व्याप्त रहिये—दिवारात उन्हीं का आनन्द उपभोग कीजिये। हे राजन्! नेत्ररञ्जन करने या आँखों को सुख देने के लिए उद्यान, वाहन, क़िला और चित्रशाला प्रभृति जो जो पदार्थ सुन्दर और मनोमुग्धकर हों, उनको बारम्बार देखिये। हे स्वामिन्! वीणा, वेणु, मृदंग, आदि बाजों के साथ गाये जानेवाले गीतों का मधुर शब्द अपने कानों में, रसायन की तरह, ढालते रहिये। जबतक जीवन रहे, तब तक विषय-सुख भोगते हुए जीना चाहिए और धर्म-कार्य के लिए छटपटाना न चाहिये; क्योंकि धर्म-अधर्म का कुछ भी फल नहीं है, अर्थात् धर्म-अधर्म कोई चीज़ नहीं; अतः इनका फल भी नहीं। जितने दिन ज़िन्दगी रहे, उतने दिन मौज करनी चाहिये। आनन्दमग्न रहकर जीवन यापन करना चाहिये।

नास्तिक मत-खगडन ।

संभिन्नमति मंत्री की ऐसी बाते सुनकर, स्वयंबुद्ध बोला—"अरे ! अपने और पराये शत्रु-रूप नास्तिकों—धर्माधर्म और ईश्वर को न मानने वालो—को धिक्कार है ! क्योकि वे जिस तरह अन्धा अन्धे को खींचकर खड्डे में गिराते हैं, उसी तरह मनुष्यों को खीचकर—अपनी लच्छेदार बातो मे उलझाकर—अधोगति में गिराते हैं। जिस तरह सुख-दुःख स्वसंवेदना से जाने जा सकते हैं; उसी तरह आत्मा भी स्वसंवेदना से जानने-योग्य है। उस स्वसंवेदना में बाधा का अभाव होनेके कारण, आत्मा का निषेध कोई भी नही कर सकता। 'मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ'—ऐसी अबाधित प्रतीति आत्मा के सिवा और किसी को भी नही हो सकती ; अर्थात् सुख और दुःख का अनुभव आत्मा के सिवा और किसी भी पदार्थ को हो नही सकता। एकमात्र आत्मा में ही दुःख-सुख के अनुभव करने की शक्ति है। इस तरह के ज्ञानसे, जिस तरह अपने शरीर में आत्मा का होना सिद्ध होता है; उसी तरह, अनुमान से, पराये शरीर में भी आत्मा का होना सिद्ध हो सकता है। सर्वत्र, बुद्धि-पूर्व्वक, क्रिया की प्राप्ति देखनेसे, इस बात का निश्चय होता है कि, पराये शरीर मे भी आत्मा है। जो मरता है, वही फिर जन्म लेता है, इससे इस बात के मानने में कोई सशय नही रह जाता, कि चेतन का परलोक भी है। जिस तरह चेतन बालक से ज़वान और और जवान से बूढ़ा

होता है; उसी तरह वह एक जन्म के बाद दूसरा जन्म पाता है; अर्थात् जिस तरह चेतन की बाल, युवा और जरा अवस्थायें होती हैं; उसी तरह उसका मरने के बाद फिर जन्म भी होता है। जिस तरह वह बाल, युवा और वृद्धावस्था को प्राप्त होता है उसी तरह वह मरण और पुनर्जन्म की अवस्था को भी प्राप्त होता है। पूर्व जन्म की, अनुवृत्ति के बिना, हाल का पैदा हुआ बच्चा, बिना सिखाये, माता के स्तनों पर मुँह कैसे लगाता है? बालक को, पहले जन्म की, स्तनपान करने की बात याद रहती है। इसी से वह पैदा होते ही, बिना किसी के सिखाये, अपनी भूख शान्त करने के लिए, माता के स्तन ढूँढता और पाते ही सीखे-सिखाये की तरह उन्हें पीने लगता है। फिर यह बात भी विचारने योग्य है, कि जब इस जगत् में कारण के अनुरूप ही कार्य होता है—जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य्य होता है—तब अचेतन भूतों या तत्वों से चेतन किस तरह पैदा हो सकता है? अचेतन से अचेतन ही पैदा हो सकता है—चेतन नहीं। हे संभिन्नमति! मैं तुमसे पूछता हूँ कि, चेतन प्रत्येक भूत से पैदा होता है या सब के संयोग से? प्रत्येक भूत या तत्व से चेतन उत्पन्न होता है, अगर इस प्रथम पक्षकी बातको मान लें, तो उतनी ही चेतना होनी चाहिये। अगर दूसरे पक्षको ग्रहण करते हैं, इस बात को मान लेते हैं कि, सब भूतों के संयोग से चेतन उत्पन्न होता है, तब यह संशय खड़ा हो जाता है कि, भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले भूतों से एक स्वभाव वाला चेतन कैसे पैदा

हो सकता है? ये सब बातें विचार करने लायक़ हैं। रूप, रस, गंध और स्पर्श—ये चार गुण पृथ्विी में हैं। रूप, स्पर्श और रस—ये तीन गुण जल में हैं। रूप और स्पर्श—ये दो गुण तेज या अग्नि में हैं और एक स्पर्श गुण वायु में है। इस तरह इन भूतों के भिन्न-भिन्न स्वभाव सब को मालूम ही हैं। अगर तू यह कहे कि, जिस तरह जलसे विसदृश मोती पैदा होते देखा जाता है, उसी तरह अचेतन भूतों से चेतन की भी उत्पत्ति होती है, तो तेरा यह कहना भी उचित और ठीक नहीं है, क्योंकि मोती प्रभृति में भी जल दीखता है तथा मोती और जल दोनों पौद्गलिक हैं; अतः उनमें विसदृशतां नहीं है। पिष्ट, गुड़ और जल आदि से होनेवाली मद-शक्ति का तू दृष्टान्त देता है; परन्तु वह मदशक्ति भी तो अचेतन है, इसलिए चेतन में वह दृष्टान्त घट नहीं सकता। देह और आत्मा का ऐक्य कदापि कहा नहीं जा सकता; क्योंकि मरे हुए शरीर में चेतन—आत्मा उपलब्ध नहीं होता। एक पत्थर पूज्य है और दूसरे पर मल मूत्र आदिका लेपन होता है,—यह दृष्टान्त भी असत् है; क्योंकि पत्थर अचेतन है। उसे सुख-दुःख का अनुभव ही कैसे हो सकता है? इसलिए, इस देहसे भिन्न परलोक में जानेवाला आत्मा है और धर्म-अधर्म भी हैं; क्योंकि उनका कारण-रूप परलोक सिद्ध होता है। आग की गरमी से जिस तरह मक्खन पिघल जाता है; उसी तरह स्त्रियों के आलिंगन से मनुष्यों का विवेक सब तरह से नष्ट हो जाता है। अनर्गल और बहुत रसवाले आहार-

पुद्गलों को खानेवाला मनुष्य, उन्मत्त पशु की तरह, उचित कर्म को जानता ही नहीं। चन्दन, अगर, कस्तूरी और कपूर प्रभृति की सुगन्ध से, सर्पादिकी तरह, कामदेव मनुष्यों पर आक्रमण करता है। काँटों की बाड में उलझे हुए कपडे के पल्ले से जिस तरह मनुष्य की गति स्खलित हो जाती है; उसी तरह स्त्री आदि के रूपमें संलग्न हुए नेत्रों से पुरुष स्खलित हो जाता है। धूर्त मनुष्य की मित्रता जिस तरह थोड़ी देर के लिए सुख-कारी होती है; उसी तरह वारम्वार मोहित करने वाला संगीत हमेशा कल्याणकारी नहीं होता। इसलिए, हे स्वामिन्! पाप के मित्र, धर्म के विरोधी और नरक में आकर्षण करने के लिए पापरूप विषयों को दूर से ही त्याग दो; क्योंकि एक तो सेव्य होता है और दूसरा सेवक होता है; एक याचक होता है और दूसरा दाता होता है, एक वाहन होता है और दूसरा उनके ऊपर चढ़ने वाला होता है; एक अभय माँगनेवाला होता है और दूसरा अभयदान देनेवाला होता है,—इत्यादिक बातों से इस लोक में ही, धर्म-अधर्म का बड़ा भारी फल देखने में आता है। यदि धर्म-अधर्म का फल प्राणी को न भोगना पड़ता, तो इस जगत् में हम सब को समान देखते। किसी को मालिक और किसी को नौकर, एक को भिखारी और दूसरे को दाता, एक को सवारी और दूसरे को सवार तथा एक को अभय माँगने-वाला और दूसरे को अभयदान देनेवाला न देखते। साराश यह, जो जैसा भला या बुरा कर्म करता है; उसे वैसा ही फल मिलता

है और उस फल के भोगने के लिए, कर्म करनेवाले को, मरकर, फिर जन्म लेना पड़ता है। इस जगत् में, ये सब आँखों से देखने पर भी, जो मनुष्य परलोक और धर्म-अधर्म को नहीं मानते, उन बुद्धिमानो का भी भला हो! अब और अधिक क्या कहूँ ? हे राजन्! आपको असत् वाणी के समान दुःख देनेवाले अधर्म का त्याग करना चाहिये और सत् वाणी के समान सुख के अद्वितीय कारण-रूप धर्म को ग्रहण करना चाहिये।"

क्षणिक मत का नैराश्य।

ये बातें सुनकर शतमति नामक मंत्री बोला—'प्रतिक्षण भंगुर पदार्थ विषय के ज्ञान के सिवाय दूसरी ऐसी कोई आत्मा नहीं है, और वस्तुओं में जो स्थिरता की बुद्धि है, उसका मूल कारण वासना है, इसलिये पहले और दूसरे क्षणों का वासनारूप एकत्व वास्तविक है—क्षणों का एकत्व वास्तविक नहीं।"

स्वयंबुद्ध ने कहा—'कोई भी वस्तु अन्वय—परम्परा—रहित नहीं है। जिस तरह जल और घास वगैरः की, गायों में दूध के लिए, कल्पना की जाती है; उसी तरह आकाश-कुसुम समान और कछुए के रोम के समान, इस लोक मे, कोई भी पदार्थ अन्वय-रहित नहीं है। इसलिए क्षणभंगुरता की बुद्धि व्यर्थ है। यदि वस्तु क्षणभंगुर है, तो सन्तान परम्परा भी क्षणभंगुर—क्षण में नाश होनेवाली—क्यों नहीं कहलाती? अगर सन्तान की नित्यता को मानते हैं, तो समस्त पदार्थ क्षणिक—

क्षणस्थायी किस तरह हो सकते हैं? यदि सब पदार्थों को अनित्य— सदा न रहने वाले—मानते हैं तो सौंपी हुई धरोहर का वापस माँगना, पहली बात की याद करना और अभिज्ञान करना,—ये सब किस तरह हो सकते हैं? अगर जन्म होनेके पीछे क्षणभर में ही नाश हो जाय, तो दूसरे क्षण में हुआ पुत्र पहले के माता-पिता का पुत्र नहीं कहलावेगा और पुत्र के पहले क्षण में हुए माता-पिता वे माता-पिता न कहलायेंगे। इसलिये वैसा कहना असंगत है। अगर विवाह के समय, पिछले क्षण में, दम्पति क्षणनाशवन्त हों, तो उस स्त्री का वह पति नहीं और उस पति की वह स्त्री नहीं ऐसा होय यह कहना अनुचित है। एक क्षण में जो अशुभ कर्म करे, वही दूसरे क्षण में उसका फल न भोगे और उसको दूसरा ही भोगे तो इससे किये हुए का नाश और न किये हुए का आगम या प्राप्ति—ये दो बड़े दोष होते हैं।"

इसके बाद महामति मंत्री बोला—"यह सब माया है; वास्तव में कुछ भी नहीं। ये सब पदार्थ जो दिखाई देते हैं, स्वप्न और मृगतृष्णा के समान मिथ्या हैं। गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र, धर्म-अधर्म और अपना-पराया—ये सब व्यवहार से देखने मे आते हैं, लेकिन वास्तव में कुछ भी नहीं है। जो इस लोक के सुख को छोड़ कर परलोक के लिये दौडते हैं, वे—उस स्यार की तरह, जो अपने लाये हुए मास को नदी-तीर पर छोड़ कर, मछली के लिए पानी में दौड़ा : मछली पानी में चली गई और

उस मांस को गिद्ध पक्षी लेकर उड़ गया—उभयभ्रष्ट होकर अपने आत्मा को ठगते हैं या पाखण्डियों की खोटी शिक्षा को सुनकर और नरक से डरकर, मोहाधीन प्राणी व्रत प्रभृति से अपने शरीर को दण्ड देते हैं। और लावक पक्षी पृथ्वी पर गिरने की शंका से जिस तरह एक पाँव से नाचता है; उसी तरह मनुष्य नरकपात की शंका से तप करता है।"

स्वयं बुद्ध बोला—'अगर वस्तु सत्य न हो, तो इससे अपने कामके करनेवाला अपने कामका कर्त्ता किस तरह हो सकता है? यदि माया है, तो सुपनेमें देखा हुआ हाथी काम क्यों नहीं करता? अगर तुम पदार्थों के कार्यकारण-भाव को सच नही मानते, तो गिरने वाले वज्र से क्यों डरते हो? अगर यही बात है, तो तुम और मैं—वाच्य और वाचक कुछ भी नहीं हैं। इस दशा में, व्यवहार को करने वाली इष्ट की प्रतिपत्ति भी किस तरह हो सकती है? हे देव! इन वितण्डवाद में पण्डित, सुपरिणाम से पराङ्मुख, और विषयाभिलाषी लोगों से आप ठगे गये हैं; इसलिये विवेक का अवलम्बन करके विषयो को त्यागिये एवं इस लोक और परलोक के सुख के लिये धर्म का आश्रय लीजिये।'

इस तरह मन्त्रियों के अलग-अलग भाषण सुनकर, प्रसाद से सुन्दर मुँहवाले राजा ने कहा—"हे महाबुद्धि स्वयं बुद्ध! तुमने बहुत अच्छी बातें कहीं। तुमने धर्म ग्रहण करने की सलाह दी है; वह युक्ति-युक्त और उचित है। हम भी धर्म-

पशुओं से सबकी रक्षा करेंगे। जो कोई अशक्त होगा, उसकी पालना वह अपने बन्धुओंकी तरह करेंगे।" इस तरह डौंडी पिट-जाने पर, कुलाङ्गनाओंने उसका प्रस्थान-मंगल किया। इसके बाद वह आचार युक्त सार्थवाह सेठ, शुभ मुहूर्त्त में, रथमें बैठ कर, शहर के बाहर चला। सेठ के कूँच करने के समय जो भेरी बजी, उसको बसन्तपुर-निवासियोंने अपने बुलाने वाला हरकारा समझा। भेरी-नाद सुन-सुनकर, सभी लोग तैयार हो गये और नगर के बाहर आगये।

धर्मघोष आचार्य्य।

इसी समय अपनी साधुचर्य्या और धर्माचरण से पृथ्वी को पवित्र करने वाले एक धर्मघोष नामक आचार्य्य उस साहूकार के पास आये। उन्हें देखते ही वह साहूकार विस्मित होकर अपने आसनसे उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर उन सूर्यके समान तेजस्वी और कान्तिमान् आचार्य को नमस्कार किया और उनसे पधारनेका कारण पूछा। आचार्य महाराज ने कहा—"हम तुम्हारे साथ बसन्तपुर चलेंगे।" सार्थवाह बोला—"महाराज! आज मैं धन्य हूँ, कि आप जैसे साथ चलने-योग्य महापुरुष मेरे साथ चलने को पधारे हैं। आप सानन्द मेरे साथ चलिये।" इसके बाद उसने रसोई बनाने वालोंसे कहा कि, तुम लोग महाराजके लिए अन्न पानादि खाने पीनेके समान सदा तैयार रखना। सार्थवाह की यह आज्ञा सुनते ही आचार्य्य ने कहा—"साधुओ

गया। अतः हे महाराज! आप अपने पितामह की कही उन बातों को याद करके, परलोक का अस्तित्व मानिये; क्योंकि जहाँ प्रत्यक्ष प्रमाण हो, वहाँ और प्रमाणों की कल्पना की क्या जरूरत ?'

स्वयंबुद्ध का कहा हुआ पिछला इतिहास।

राजा ने कहा—'तुमने मुझे पितामह की कही हुई बातों की याद दिलाई,—यह बहुत अच्छा काम किया। अब मैं धर्म-अधर्म जिसके कारण हैं, उस परलोक को दिलसे मानता हूँ। राजा की आस्तिकता-पूर्ण बातें सुनकर, ठीक मौक़ा देखकर, मिथ्यादृष्टियों की बाणी-रूप धूल में मेघ की तरह, स्वयंबुद्ध मंत्री ने इस तरह कहना आरम्भ किया:—'हे महाराज! पहले आपके वंश में कुरुचन्द्र नामका राजा हुआ था। उस के कुरु-मती नाम की एक स्त्री और हरिश्चन्द्र नामका एक पुत्र था। वह राजा क्रूरकर्म्मी, परिग्रहकर्त्ता, अनार्यकार्य में अग्रसर, यम-राज के समान निर्दयी, दुराचारी और भयङ्कर था; तोभी उसने बहुत समय तक राज्य भोगा। क्योंकि पूर्व्वोपार्जित पुण्य का फल अप्रतिम होता है। उस राजा को, अवसान-काल में, धातुविपर्यय का रोग हो गया और वह निकट आये हुए नरक के क्लेशों का नमूना हो गया। इस रोग से, उसकी रूई की भरी हुई शय्या काँटों की सेज के समान हो गई। नरम गुदगुदा पलँग शूलों की तरह चुभने लगा। सरस भोजन नीम के रस

की तरह नीरस लगने लगा। चन्दन, अगर, कस्तूरी प्रभृति सुगन्धित पदार्थ दुर्गन्धित मालूम होने लगे। पुत्र और स्त्री. शत्रु की तरह, दृष्टि में उद्वेगकारी हो गये। मधुर और सरस गान—गधे, ऊँट और स्यारों के भयङ्कर शब्दों की तरह—कानों को क्लेशकारी लगने लगा। जिसके पुण्यों का विच्छेद होता है, जिसके सुकर्मों का छोर आजाता है, उसके लिये सभी विपरीत हो जाते हैं। कुरुमती और हरिश्चन्द्र, परिणाम में दुःखकारी, पर क्षण-भर के लिए सुखकारी विषयों का उपचार करते हुए गुप्त रीति से जागने लगे। अङ्गारों से चुम्बन किये गये की तरह, उसके प्रत्येक अङ्ग में दाह पैदा हो गया। दाह के मारे उसका शरीर जलने लगा। शेष में, वह दाह से हाय-हाय करता हुआ, रौद्रपरायण होकर, इस दुनिया से कूँच कर गया। मृतक की अग्निसंस्कार आदि क्रिया करके, सदाचार रूपी मार्ग का पथिक बनकर, उसका पुत्र हरिश्चन्द्र विधिवत् राज्यशासन् और प्रजापालन करने लगा। अपने पिता की पाप के फल-स्वरूप हुई मृत्यु को देखकर, वह ग्रहों में सूर्य की तरह, सब पुरुषार्थों में मुख्य धर्म की स्तुति करने लगा। एक दिन उसने अपने सुबुद्धि नामक श्रावक—बालसखा को यह आज्ञा दी कि, तुम नित्य धर्मवेत्ताओं से धर्मोपदेश सुनकर मुझे सुनाया करो। सुबुद्धि भी अत्यन्त तत्पर होकर राजाज्ञा को पालन करने लगा। नित्य धर्म-कथा सुनकर राजा को सुनाने लगा। अनुकूल अधिकारी की आज्ञा सत्पुरुषों के उत्साह-वर्द्धन में सहायक होती

है; अर्थात् अनुकूल अधिकारी की आज्ञा से भले आदमियों को उत्साह होता है। रोग से डरा हुआ मनुष्य जिस तरह औषधि पर श्रद्धा रखता है; पाप से डरा हुआ हरिश्चन्द्र उसी तरह सुबुद्धि के कहे हुए धर्म पर श्रद्धा रखता था।'

एक दिन नगर के बाहर के बग़ीचे में रहनेवाले शीलंधर नामक महामुनि को केवलज्ञान हुआ; इससे देवता अर्चन करने के लिए वहाँ जारहे थे। यह वृत्तान्त सुबुद्धि ने हरिश्चन्द्र से कहा। यह समाचार पाते ही वह शुद्ध-हृदय राजा, घोड़े पर चढ़कर-मुनीन्द्र के पास पहुँचा और उन्हें नमस्कार करके वहाँ बैठ गया। महामुनि ने कुमति रूपी अन्धकार में चन्द्रिका के समान धर्म-देशना उसे दी। देशना के शेष होने पर, राजा ने हाथ जोड़ कर मुनिराज से पूछा—'महाराज! मेरा पिता मरकर किस गति में गया है?' त्रिकालदर्शी मुनि ने कहा—'राजन! आप का पिता सातमी नरक में गया है। उसके जैसे को और स्थान ही नहीं है।' इस बात के सुनते ही राजा को वैराग्य* उत्पन्न हो

---

* विषयों के भोगने में रोगोंका, कुल में दोषों का, धन में राज का, मौन रहने में दीनता का, बल में शत्रुओं का, सौन्दर्य्य में बुढ़ापे का, गुणों में दुष्टों का और शरीर में मौत का भय है। संसार और संसार के सभी कामों में भय है। अगर भय नहीं है, तो एक मात्र वैराग्य में नहीं है, जिस वैराग्य में भय का नाम भी नहीं है और जिसमें सच्ची सुख शान्ति लबालब भरी है, यदि आप को उसी वैराग्य विषय पर सर्वोत्तम ग्रन्थ देखना है, तो आप हरिदास एण्ड कम्पनी, कलकत्ता से सचित्र "वैराग्य शतक" मँगाकर

गया। मुनि को नमस्कार कर के और वहाँ से उठकर वह तत्काल अपने स्थान को गया। वहाँ पहुँचते ही उसने अपने पुत्र को राजगद्दी पर बिठा कर सुबुद्धि से कहा कि, मैं दीक्षा ग्रहण करूंगा। इसलिए मेरी तरह ही मेरे पुत्र को भी तुम नित्य धर्मोपदेश देते रहना। सुबुद्धि ने कहा—'महाराज! मैं भी आप के साथ वृत ग्रहण करूँगा और मेरी तरह मेरा पुत्र आप के पुत्र को धर्मोपदेश सुनावेगा।' इसके बाद राजा और सुबुद्धि मन्त्रीने कर्मरुपी पर्वत के भेदने में वज्र के समान व्रत ग्रहण किया और दीर्घकाल तक उसका पालन करके मोक्ष लाभ किया।

हे राजन! तुम्हारे वंश में दूसरा एक दण्डक नाम का राजा हुआ है। उस राजा का शासन प्रचण्ड था और वह शत्रुओं के लिए साक्षात् यमराज था। उसके मणिमाली नाम का एक प्रसिद्ध पुत्र था। वह अपने तेज से, सूर्य की तरह, दशो दिशाओं को प्रकाशित करता था। दण्डक राजपुत्र, मित्र, स्त्री, रत्न सुवर्ण और धन में अत्यन्त फँसा हुआ था। वह इन सबको अपने प्राणों से भी अधिक चाहता था। आयुष्य पूर्ण होने पर, आर्त्तध्यान में ही लगा रहनेवाला वह राजा, मरकर, अपने ही भण्डार मे दुर्धर

देखिये। मनुष्य-मात्र के देखने योग्य ग्रन्थ है। उसमें ऐसे-ऐसे भावपूर्ण २६ चित्र हैं, जिनके देखने मात्र से अभिमानियों का मद ज्वर की तरह उतर जाता है, संसार स्वप्नवत् प्रतीत होता है और विषय विषवत् बुरे लगने लगते हैं। पृष्ठ-संख्या ४८० सुनहरी अक्षरों की रेशमी जिल्द-बन्धी पुस्तक का मूल्य ५) डाक-खर्च ।=)

अजगर हुआ। जो भण्डार में जाता, उसे ही वह अग्नि के समान सर्वभक्षी और दुरात्मा अजगर निगल जाता। एक दिन उस अजगरने मणिमाली को भण्डार में घुसते देखा। पूर्वजन्म की बात याद रहने से, उसने उसे "यह मेरा पुत्र है" इस तरह पहचान लिया। मूर्त्तिमान् स्नेह की तरह अजगर की शान्त मूर्त्ति को देख कर, मणिमालीने अपने मन में समझ लिया कि, यह मेरा कोई पूर्वजन्म का वन्धु है। फिर ज्ञानी मुनि से यह जान कर कि, यह मेरा अपना पिता है, उसने उसे जैनधर्म सुनाया। अजगरने भी अर्हंत धर्मको जानकर संवेगभाव धारण किया; शेषमें शुभध्यान-परायण होकर देह त्याग की और देवत्व लाभ किया। उस देवताने, पुत्र-प्रेम के लिए, स्वर्ग से आकर, एक दिव्य मोतियों का हार मणिमाली को दिया, जो आज तक आप के हृदय पर मौजूद है। आप हरिश्चन्द्र के वंश में पैदा हुए हैं और मैं सुबुद्धि के वंश में जन्मा हूँ। इसलिये, क्रम से आये हुए इस प्रभाव से, आप धर्म में मन लगाइये—धर्माचरण कीजिये। अव मैंने आपको, विना अवसर, जो धर्म करनेकी सलाह दी है, उस का कारण भी सुनिये। आज नन्दन वन में, मैंने दो चारण मुनि देखे। जगत् के प्रकाश को उत्पन्न करने वाले और महामोह रूपी अन्धकार को नाश करने वाले वे दोनों मुनि एकत्र ऐसे मालूम होते थे, गोया चन्द्र-सूर्य ही मिले हों। अपूर्व्व ज्ञान से शोभायमान दोनों महात्मा धर्म-देशना देते थे। उस समय मैंने उनसे आप की आयुष्यका प्रमाण पूछा। उन्होंने आप का आयुष्य एक मास का ही बाकी बताया।

हे महामति! यही कारण है कि, मैं आप से धर्माचरण करने की जल्दी कर रहा हूँ।

महाबल राजा ने कहाः—'हे स्वयंबुद्ध! हे बुद्धिनिधान! तू ही एक मात्र मेरा बन्धु है,जो मेरे हित के लिये—मेरी भलाई के लिए तड़फा करता है। विषयों से आकर्षित और मोह-निद्रा में निद्रित अथवा विषयों के फन्दे में फँसे हुए और मोह की नींद में सोये हुए मुझ को जगाकर तुमने बहुत अच्छा किया। अब मुझे यह बताओ कि, मैं किस तरह धर्मकी साधना करूँ। आयु थोड़ी रह गई है, इतने समयमें मुझे कितना धर्म साधन करना चाहिए? आग लग जाने पर तत्काल कुआं किस किस तरह खोदा जाता है?

स्वयंबुद्धने कहा—'महाराज! आप खेद न करें और दृढ़ रहें। आप, परलोक में मित्र के समान, यतिधर्म का आश्रय लें। एक दिनकी भी दीक्षा पालने वाला मनुष्य मोक्ष लाभ कर सकता है; तब स्वर्ग की तो बात ही क्या है?' फिर महाबल राजा ने उस की बात मंजूर कर के, आचार्य जिस तरह मन्दिरमें मूर्त्ति की स्थापना करते हैं; उसी तरह पुत्र को अपनी पदवी पर स्थापन किया; यानी उसे राजगद्दी सौंपी। इस के बाद उसने दीन और अनाथ लोगों को ऐसा अनुकम्पादान दिया कि, उस नगर में कोई मँगता ही न रह गया। दूसरे इन्द्र की तरह उसने चैत्यों में विचित्र प्रकार के वस्त्र, माणिक, सुवर्ण और फूल वगैरः से पूजा की। बाद में; स्वजन और परिजनोंसे क्षमा माँड, मुनीन्द्रके चरणों में जा, उसने उनसे मोहलक्ष्मी की सखी-रूपा दीक्षा अङ्गीकार की।

सब सावद्य योगो की विरति के साथ साथ उस राजर्षि ने चार प्रकार के आहारो का भी प्रत्याख्यान किया और समाधि रूप अमृत के झरने में निरन्तर निमग्न होकर, कमलिनी की तरह ज़रा भी ग्लानि को प्राप्त नही हुआ। परन्तु वह महासत्व-शिरोमणि मानों खाने के पदार्थों को खाता और पीने के पदार्थों को पीता हो, इस तरह अक्षीण कान्तिवाला दीखने लगा; अर्थात् उसके भूखे-प्यासे रहने पर भी—कुछ भी न खाने पीने पर भी, उस की कान्ति क्षीण और मलीन न हुई। वाइस दिनों तक अनशन पालन कर—भूखा-प्यासा रह, अन्त मे पञ्च परमेष्ठि नमस्कार को स्मरण करते हुए उसने अपना शरीर त्याग दिया।

पाँचवाँ भव
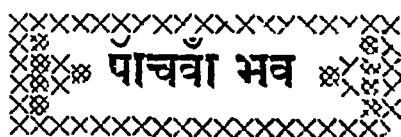
वहाँ से, सञ्चित किये पुण्य-वलसे, दिव्य घोड़े की तरह, वह तत्काल दुर्लभ ईशानकल्प यानी अन्य देवलोक में पहुँचा। वहाँ श्रीप्रभ नामके विमान में, वह उसी तरह उत्पन्न हुआ, जिस तरह मेघ के गर्भ में विद्युतपुञ्ज उत्पन्न होता है। उसकी आकृति दिव्य थी। उसका शरीर सप्त धातुओं से रहित था। उसमें सिरसके फूल जैसी सुकुमारता थी और दिशाओं को आक्रान्त करने वाली कान्ति थी। उसकी देह वज्र के समान

थी। उसमें प्रभूत उत्साह, सब तरह के पुण्य-लक्षण, इच्छानुसार रूप धारण करने की क्षमता, अवधिज्ञान सब तरह के विज्ञान में पारङ्गतता, अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ निर्दोषता, और अचिन्त्य वैभव प्रभृति सब गुण और सुलक्षण थे। वह ललिताङ्ग जैसे नामको सार्थक करने वाला देव हुआ। दोनों पाँवों में रत्नमय कड़े, कमर में कर्द्धनी, हाथों में कंगन, भुजाओंमें भुजबन्द, छाती पर हार, कानों में कुण्डल, सिर पर फूलों की माला एवं किरीट वगैरः आभूषण, दिव्य वस्त्र और सारे शरीर का भूषण रूप यौवन—ये सब उसके पैदा होनेके समय, उसके साथ ही प्राप्त हुए थे अर्थात् वह उपरोक्त गहने, कपड़े और जवानी को साथ लेकर जन्मा था। उसके जन्म-समय में, अपनी प्रतिध्वनि से दिशाओं को प्रतिध्वनित करनेवाली दुंदुभियाँ बजीं और 'जगत को सुखी करो एवं जयलाभ करो' ऐसे शब्द मङ्गल-पाठक कहने लगे। गीत और वाद्य के निर्घोष—गाने बजाने की आवाज़ों तथा वन्दिजनों के कोलाहल से व्याकुल वह विमान अपने स्वामी के आने की खुशी में गरजता हुआ सा मालूम होने लगा। सोकर उठे हुए मनुष्य की तरह उठकर और सामने का दिखावा देखकर, ललिताङ्ग देव इस प्रकार विचार करने लगा —'यह इन्द्रजाल है ? स्वप्न है ? माया है ? क्या है ? ये नाच और गान मेरे उद्देश से क्यों हो रहे हैं ? ये विनीत लोग मुझे अपना स्वामी बनाने के लिये क्यों छटपटा रहे हैं ? इस, लक्ष्मी के मन्दिर रूप, आनन्द-सदन-स्वरूप, सेव्य, प्रिय

और रम्य भुवन में मैं कहाँ से आया हूं ?' उसके मनमें इस तरह के तर्क-वितर्क उठ ही रहे थे, कि इतने में प्रतिहार ने उसके पास आकर और हाथ जोडकर इस प्रकार विज्ञप्ति कीः—

ललितांग देवका प्रतिहारी द्वारा कहा हुआ स्वरूप

"हे नाथ ! आप जैसे स्वामी को पाकर आज हम धन्य और सनाथ हुए हैं। इसलिये विनम्र और आज्ञाकारी सेवकों पर अमृत-समान दृष्टि से कृपा कीजिये। सब तरह के मन-चाहे पदार्थ देनेवाला,अक्षय लक्ष्मी वाला और सब सुखों का स्थान—यह ईशान नामका दूसरा देवलोक है। जिस विमान को आप इस समय अलंकृत कर रहे हैं, इस श्रीप्रभ नाम के विमान को आपने पुण्य-बल से पाया है। आप की सभा के मण्डन-रूप ये सब सामानिक देव हैं, जिन में से आप एक हैं, तोभी आप इस विमान में अनेक की तरह दीखते हैं। हे स्वामिन्! मंत्र के के स्थान-रूप ये तेतीस पुरोहित-देव हैं। ये आप की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं, इसलिए आप इनको समयोचित आदेश कीजिये। हँसी-दिल्लगी करनेवाले परिषद नामक देव हैं, जो लीला और विलास की बातों से आपका दिल बहलायेंगे। निर-

न्तर वख्तर को पहनने वाले, छत्तीस प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्रों को धारण करने वाले और स्वामी की रक्षा करने में चतुर—ये आपके आत्मरक्षक देवता हैं। आप के नगर की रक्षा करने वाले ये लोकपाल देवता हैं। आपकी सेना में ये रणकला-कुशल धुरन्धर सेनाधिपति हैं। ये पुरवासी और देशवासी प्रकीर्णक देवता आप की प्रजा रूप हैं। ये सब भी आप की निर्माल्य रूप आज्ञा को मस्तक पर धारण करेंगे। ये आभियोग्य देवता आप की दासों की तरह सेवा करने वाले हैं और ये किल्विषक देवता सब प्रकार के मैले काम करने वाले हैं। सुन्दर रमणियों से रमणीक आँगनवाले, मन को प्रसन्न करने वाले और रत्नों से जड़े हुए ये आपके महल हैं। सुवर्ण-कमल की खान जैसी रत्नमय ये वाटिकायें हैं। रत्न और सुवर्ण की चोटी वाले ये तुम्हारे क्रीड़ा-पर्वत हैं। हर्षकारी और स्वच्छ जलवाली ये क्रीडा-नदियां हैं। नित्य फलफूल देनेवाले ये क्रीड़ा-उद्यान हैं। अपनी कान्ति से दिशाओं के मुख को प्रकाशित करनेवाला सूर्यमण्डल के समान, रत्न और मणियों से बना हुआ यह आप का सभामण्डप है। चमर, दर्पण और पंखेवाली ये वाराङ्गनायें आप की सेवा में ही महोत्सव मानने वाली हैं। चारों प्रकार के बाजे बजाने में दक्ष ये गन्धर्व आप के सामने गाना करने को सजे हुए खड़े हैं।' प्रतिहारी के ऐसा कहने के बाद, ललितांग देव को, अवधिज्ञान से जिस तरह पिछले दिन की बात याद आजाती है उस तरह, पूर्व जन्म की बात याद आगई। 'अहो!

पहले जन्म में, मैं विद्याधरो का स्वामी था। मुझे धर्म मित्र जैसे स्वयंबुद्ध मंत्री ने जैनेन्द्र धर्म का बोध कराया था। उससे दीक्षा लेकर मैंने अनशन किया था। उसी से मुझे यह फल मिला है। अहो! धर्म का अचिन्त्य वैभव है।' इस तरह पूर्व जन्म की बातों को यादकर और वहाँ से तत्काल उठकर, उस देवने छड़ीदार के हाथ का सहारा लेकर सिंहासन को अलंकृत किया। उसके सिंहासनारूढ़ होते ही जयध्वनि हुई और देवताओं ने अभिषेक किया। चॅवर डोलने लगे। गन्धर्व मधुर और मंगल गान गाने लगे। इसके बाद, भक्तिभाव-पूर्ण ललिताङ्ग देव ने वहाँ से उठकर, चैत्य में जाकर, शाश्वती अर्हत् प्रतिमा की पूजा की और देवताओं के तीन ग्रामके उद्गार से मधुर और मंगलमय गायनों के साथ, विविध स्तोत्रों से जिनेश्वर की स्तुति की। पीछे ज्ञानदीपक पुस्तकें पढ़ी और मंडप के खंभे पर रक्खी हुई अरिहन्त की अस्थि—हड्डी की अर्चना की।
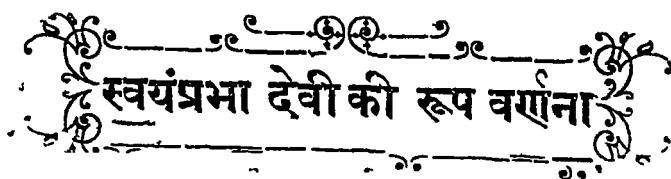
स्वयंप्रभा का देहान्त।

ललितांग देव का विलाप।

इसके बाद, पूर्णिमा के चन्द्र-जैसे दिव्य छात्र को धारण कर

ने से प्रकाशमान् होकर, वह क्रीडा-भवन में गया। वहाँ उसने अपनी प्रभा से विद्युत प्रभा को भी भग्न करने वाली स्वयंप्रभा नाम की देवी देखी। उसके नेत्र मुख और चरण अतीव कोमल थे। उनके मिससे, वह लावण्य-सिन्धु के बीच में रहने वाली कमल-वाटिकासी जान पड़ती थी। अनुपूर्व से स्थूल और गोल उरु से वह ऐसी मालूम होती थी, मानों कामदेव ने वहाँ अपना तर्कस स्थापन किया हो। निर्मल वस्त्र वाले विशाल नितम्बों—चूतड़ों से वह ऐसी अच्छी लगती थी, जैसी कि किनारों पर राजहंसों के झुण्डों के रहने से नदी लगती है। पुष्ट और उन्नत स्तनों का भार वहन करने से कृश हुए, वज्र के मध्य भाग-जैसे. कृश उदर से वह मनोहारिणी लगती थी। उसका त्रिरेखा-संयुक्त मधुर स्वर बोलने वाला कंठ, कामदेव की विजय कहानी कहने वाले शंख के जैसा मालूम होता था। विम्बफल को तिरस्कृत करने वाले होठ और नेत्ररूपी कमल की डंडी की लीला को धारण करने वाली नाक से वह बहुत ही मनोमुग्धकर जान पड़ती थी। पूर्णमासी के अर्द्धचन्द्र की सर्व लक्ष्मी को हरने वाले अपने सुन्दर और स्निग्ध ललाट से वह चित्त को हरे लेती थी। कामदेव के हिंडोले की लीला को चुराने वाले उसके कान थे और पुष्पवाण या मन्मथ के धनुष की शोभा को हरने वाली उसकी भृकुटियाँ थीं। उसके सुन्दर चिकने और काजल के समान श्याम बाल ऐसे मालूम होते थे, मानों मुख-कमल के पीछे भौंरे हों। सब अंगों में रत्नाभरण धारण किये हुए, वह कामलता सी

मालूम होती थी। मनोहर मुखकमल वाली अप्सराओं से घिरी हुई, वह नदियों से घिरी हुई गंगा सी दीखती थी। ललिताङ्ग देवको अपने पास आते देखकर, उसने अतिशय स्नेह के साथ-खड़े होकर, उसका सत्कार किया। इसके बाद, वह श्रीप्रभ विमान का स्वामी उसके साथ एक पलँग पर बैठ गया। जिस तरह एक क्यारे के लता और वृक्ष शोभते हैं; उसी तरह वे दोनों पास पास बैठे हुए शोभने लगे। बेड़ियों से जकड़े हुए के समान, निविड़ प्रेम से नियंत्रित उन दोनों के दिल आपस में लीन हो गये। अविच्छिन्न प्रेम रूपी सौरभ से पूर्ण ललिताङ्ग देव ने स्वयंप्रभा के साथ क्रीड़ा करते हुए बहुतसा समय एक घड़ीके समान बिता दिया। फिर वृक्ष से पत्ता गिरने की तरह, आयुष्य पूरी होने से, स्वयंप्रभा देवी वहाँ से च्युत हुई अर्थात् दूसरी गतिको प्राप्त हुई। आयुष्य पूरी होनेपर, इन्द्र में भी रहने की सामर्थ्य नहीं। प्रिया के विरह-दुःख से वह देव पर्वत से आक्रान्त और वज्राहत की तरह मूर्च्छित हो गया। फिर क्षण-भर में होश में आकर, अपने प्रत्येक शब्द से सारे श्रीप्रभ विमान को रुलाता हुआ वह बारम्बार विलाप करने लगा। उपवन उसे अच्छे न लगते थे। वाटिकाओ से चित्त आनन्दित न होता था। क्रीड़ा-पर्वत से उसे स्वस्थता न होती थी और नन्दन वन से भी उसका दिल खुश न होता था। हे प्रिये! हे प्रिये! तू कहाँ है? इस तरह कह-कहकर विलाप करनेवाला वह देव, सारे संसार को स्वयंप्रभा-मय देखता हुआ, इधर-उधर फिरने लगा।

निर्नामिका का वृत्तान्त।

इधर स्वयंबुद्ध मन्त्री को अपने स्वामी की मृत्यु से वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसने श्री सिद्धाचार्य नामक आचार्य से दीक्षा ली। बहुत समय तक अतिचार-रहित व्रत पालन करके वह मर गया और ईशान देवलोकमें इन्द्रका दृढ़धर्मा नामक सामानिक देव हुआ। उस उदार बुद्धिवाले देव का हृदय, पूर्व-जन्म के सम्बन्धसे, बन्धु की तरह, प्रेम से पूर्ण हो उठा। उसने वहाँ आकर, ललिताङ्ग देव को आश्वासन देने के लिए कहा :—"हे महासत्व! केवल स्त्रीके लिए आप ऐसा मोह क्यों करते हैं? धीर पुरुष प्राण-त्याग का समय आ जाने पर भी इस हालत को नहीं पहुँचते।" ललिताङ्ग देव ने कहा :—"हे बन्धु! आप ऐसी बातें क्यों करते हैं? पुरुष प्राणों का विरह तो सह सकता है; पर कान्ता का विरह नहीं सह सकता। इस संसार में एक मात्र मृगनयनी कामिनी ही सारभूत है*; क्योंकि उस एक के बिना सारी सम्पत्तियाँ असार

---

* महाराजा भर्तृहरिकृत श्रृङ्गारशतक में भी एक जगह लिखा है —

हरिणीप्रेक्षणा यत्र गृहिणी न विलोक्यते।
सेवित सर्वसम्पद्भिरपि तद्भवनं वनं॥

जिस घर में मृगनयनी गृहिणी नहीं दीखती, वह घर सब सम्पत्तिसम्पन्न होने पर भी वन है।

हो गई हैं।" उस के ऐसे दुःख से ईशान इन्द्र का वह सामानिक देव भी दुखी हो गया। फिर अवधि-ज्ञान का उपयोग कर उसने कहा—"हे महानुभाव! आप खेद न करे। मैंने, ज्ञानबल से, आप की प्रिया कहाँ है, यह बात जान ली हैं। इसलिये आप स्वस्थ हों और सुने:—पृथ्वी पर, धातकी खण्ड के विदेह-क्षेत्र-स्थित नन्दी नामक गाँव में, दरिद्र स्थितिवाला एक नागिल नामक गृहस्थ रहता है। वह पेट भरने के लिए, हमेशा, प्रेत की तरह भटकता है, तोभी भूखा-प्यासा ही सोता और भूखा-प्यासा ही उठता है। दरिद्र में भूख की तरह, मन्द-भाग्य में शिरोमणि, नागश्री नामकी स्त्री उस के है। खुजली रोगवाले के जिस तरह खुजली के ऊपर फोड़े फुन्सी और हो जाते हैं; उसी तरह नागिलके ऊपरा-ऊपरी ६ कन्याये गाँवकी सूअरीकी तरह स्वभाव से ही बहुत खानेवाली, कुरूपा और जगत् में निन्दित होने वाली हुई। इतने पर भी, उसकी स्त्री फिर गर्भवती हो गई। प्रायः दरिद्रियों को शीघ्र ही गर्भधारण करने वाली स्त्रियाँ मिलती हैं। इस मौक़े पर नागिल मन में चिन्ता करने लगा—'यह मेरे किस कर्म का

फल है ; जिस से मैं, मनुष्यलोक में रह कर भी, नरक की व्यथा भोगता हूँ। मै जन्म से दरिद्री हूँ और मेरे इस दारिद्र्यका प्रतिकार भी नहीं हो सकता। मैं इस जन्म के प्रतिकार-रहित दारिद्र से उसी तरह क्षीण हो गया हूँ, जिस तरह दीमक से वृक्ष क्षीण हो जाता है। प्रत्यक्ष अलक्ष्मी-स्वरूपा पूर्व्वजन्म की वैरिणी और कुल-क्षणा—कन्याओंने मुझे बड़ा कष्ट दिया है। यदि इस बार भी कन्या पैदा हुई, तो मैं कुटुम्ब को त्याग कर देशान्तर में जा रहूँगा'।

निर्नामिका और केवली का समागम।

"वह इस तरह चिन्ता किया करता था कि, इस बीच में उस दरिद्र की घरवाली ने कन्या जनी। कान में सूई घुसने की तरह उस ने कन्या-जन्म की बात सुनी। इस के बाद, दुष्ट बैल जिस तरह भार को छोड़कर चल देता है उसी तरह वह नागिल कुटुम्ब को छोड़कर चल दिया। उसकी स्त्री को, प्रसव-दुःख के ऊपर, पति के परदेश चले जाने की व्यथा, ताज़ा घाव पर नमक पड़ने के समान प्रतीत हुई। अत्यन्त दुःखिता नागश्रीने उस कन्याका नाम भी न रक्खा ; इसलिये लोग उस कन्या को निर्नामिका नाम से पुकारने लगे। नागश्रीने उस का पालन-पोषण भी अच्छी तरह से नहीं किया ; तोभी वह कन्या बढ़ने लगी। वज्राहत प्राणीकी भी, यदि आयु शेष न हुई हो तो, मृत्यु नहीं होती। अत्यन्त अभागी और माता को उद्वेग करानेवाली वह कन्या दूसरो के घरों में नीचे काम करके दिन काटने लगी। एक दिन, उत्सव

के समय, किसी धनी के बालक के हाथ में लड्डू देखकर, वह अपनी माँ से लड्डू माँगने लगी। उस समय उसकी माँ ने क्रोधित होकर कहा—"मोदक क्या तेरे बाप होते हैं, जो तू माँगती है? अगर तेरी लड्डू खाने की ही इच्छा है, तो अम्बर तिलक पर्वत पर, काठ की भारी लाने के लिए, रस्सी लेकर जा।" अपनी माता की, जङ्गली कण्डे की आग के समान, दाह करनेवाली बात सुनकर, रोती हुई वह बाला रस्सी लेकर पर्वत की ओर चली। उस समय, उस पर्वत पर, एक रात्रिकी समाधि में रहे हुए युगन्धर मुनि को केवल ज्ञान हुआ था। इस से निकट रहने वाले देवताओं ने केवल-ज्ञान की महिमा का उत्सव मनाना आरम्भ किया था। पर्वत के पास के नगर और गाँवो के लोग यह समाचार सुनकर, उस मुनीश्वरको नमस्कार करने के लिए जल्दी-जल्दी आ रहे थे। नाना प्रकार के अलङ्कारोसे भूषित लोगोंको आते देखकर, वह निर्नामिका कन्या विस्मित होकर, चित्र-लिखीसी खड़ी रही। फिर बातों ही बातों में लोगो के आने का कारण जानकर, दुःख-रूपी भारी के समान काठ की भारी को वहीं पटक कर, वह भी वहाँ से चल दी और दूसरे लोगो के साथ पहाड़ पर चढ़ गई। तीर्थ सब के लिए खुले रहते हैं। उन मुनिराज के चरणों को कल्पवृक्ष के समान मानने वाली निर्नामिका कन्याने बड़े आनन्द से उन को वन्दना की। कहते हैं कि, गतिकी अनुसारिणी मति होती है, अर्थात् जैसी होनहार होती है, वैसी ही मति हो जाती है। मुनीश्वर ने, मेघवत् गम्भीर वाणी से,

'हे भगवन्! आप राव और रकमें समदृष्टि रखनेवाले हैं,—गरीब और अमीर दोनों ही आपकी नज़र में समान हैं इसलिए मै विज्ञप्ति करके पूछती हूँ कि आपने संसार को दुःख-सदन रूप कहा, परन्तु क्या मुझसे भी अधिक दुःखी कोई है?'

[पृष्ठ ८३]

लोक-समूह को हितकारी और आह्लादकारी धर्म-देशना या धर्मोपदेश दिया। विषयों का सेवन, कच्चे सूत से बने हुए पलँग पर बैठने वाले पुरुष की तरह, संसार-रूपी भूमि पर गिरने के लिए ही है। अर्थात् कच्चे सूत से बने हुए पलङ्ग पर बैठने वाले का जिस तरह अधःपतन होता है, उसी तरह विषय-सेवी पुरुष का भी अधः पतन होता है। कच्चे सूत के पलङ्ग पर बैठने वाले को, जिस तरह शेषमें नीचे गिरकर, दुखी होना पड़ता है उसी तरह विषय-भोगी को परिणाम में घोर दुःख और कष्ट उठाने पडते हैं। जगत् में पुत्र, मित्र और कलत्र वगैरः का समागम एक गाँव में रात्रि-निवास करके और सोकर उठ जाने वाले बटोही के समान है। चौरासी लाख योनियों में घूमने वाले जीवों को जो अनन्त दुःख भोगने पड़ते हैं, वे उनके अपने कर्मों के फल हैं अर्थात् उनके कर्मों के फल स्वरूप उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार की देशना या धर्मोपदेश सुनकर, निर्नामिका हाथ जोड कर बोली,—'हे भगवन्! आप राव और रंक में समदृष्टि रखने वाले हैं,—ग़रीब और अमीर दोनों ही आपकी नज़र मे समान हैं; इसलिए मैं विज्ञप्ति करके पूछती हूँ कि, आपने संसार को दुःख-सदन रूप कहा, परन्तु क्या मुझसे भी अधिक दुःखी कोई है?'

चारों गतियों में दुःख का वर्णन।

"केवली भगवान् ने कहा—'हे दुःखिनी बाला! हे भद्रे! तुझे

तो क्या दु.ख है ? तुझ से भी अधिक दुःखी जीव हैं, उनका हाल सुन। जो अपने दुष्कर्मों के फल-स्वरूप नरक-गति में पैदा होते हैं, उनमें से कितनों ही के शरीर भेदे जाते हैं और कितनों ही के अङ्ग छेदे जाते हैं और कितनों ही के सिर धड़से अलग किये जाते हैं। उनमें से कितनेही, नरक-गति में, परमाधामी असुरों द्वारा, तिलों की तरह कोल्हू मे पेरे जाते हैं ; कितने ही लकड़ी की तरह काटे जाते हैं और कितने ही लोहेके वर्तनोंकी तरह कूटे जाते हैं। वे असुर कितनों हीको शूलों की शय्या पर सुलाते हैं, कितनों ही को कपड़ो की तरह पत्थर की शिलाओं पर पछाड़ते हैं और कितनों ही के साग की तरह टुकड़े-टुकड़े करते हैं। उन नारकीय जीवों के शरीर, वैक्रिय होने के कारण, तुरत मिल जाते हैं और वे परमाधार्म्मिक असुर उन्हें फिर पहले की तरह ही तकलीफे देते हैं। इस तरह दुःखों को भोगने वाले वे प्राणी करुण स्वर से चीख़ते-चिल्लाते हैं। वहाँ प्यासे जीवों को वार-म्बार सीसे का रस पिलाया जाता है और छाया चाहने वाले प्राणी, तलवार के से पत्तों वाले, असिपत्र नामक वृक्ष के नीचे विठाये जाते हैं। अपने पूर्वजन्म के कर्मो का .स्मरण करते हुए, वे प्राणी एक मुहूर्त्त-भर भी विना वेदना के रह नहीं सकते। हे वच्ची ! उन नपुसंक नारकियो को जो-जो दुःख और कष्ट झेलने पड़ते है, उनका वर्ण न करनेसे भी मनुष्य को दुःख होता है।

इन नारकियों की वात तो दूर रही, प्रत्यक्ष दिखाई देने

वाले जलचर, थलचर नभचर और तिर्यञ्च प्राणी भी अपने पूर्व-जन्म के कर्मों से अनेक प्रकार के दुःख भोगते हैं। जलचर जीवों में से कितने ही तो एक दूसरे को खा जाते हैं। चमड़े के चाहने वाले उनकी खाल उतारते हैं, मास की तरह वे भूँजे जाते हैं, खाने की इच्छा वाले उन्हें खाते हैं और चरबी की इच्छा वाले उन्हें गलाते हैं। थलचर जन्तुओं में, निर्बल मृग प्रभृति को सबल सिंह वगैरः प्राणी मांस की इच्छा से मार डालते हैं। शिकारी लोग मांस की इच्छा से अथवा क्रीड़ा के लिए, उन निरपराधी प्राणियों को मार डालते हैं। बैल प्रभृति प्राणी भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी सहन करने, अति भार वहन करने और चाबुक,-अंकुश एवं लकड़ी वगैरः की मार खाने से बड़ा दुःख पाते हैं। आकाशमें उड़नेवाले पक्षियों में तीतर, तोता, कबूतर और चिड़िया प्रभृति को उनका मांस खानेकी इच्छावाले बाज़, शिकरा और गिद्ध वगैर पक्षी खा जाते हैं तथा शिकारी लोग इन सब को नाना प्रकार के उपायों से पकड़कर और घोर दुःख देकर मार डालते हैं। उन तिर्यञ्चों को अन्य शस्त्र और जल प्रभृति का भी बड़ा डर होता है। अतः अपने-अपने पूर्वजन्मों के कर्मों का निबन्धन ऐसा है, जिस का प्रसार रुक नहीं सकता। इसी को दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं, कि कोई भी अपने पूर्वजन्म के कर्मोंका भोग भोग-नेसे बच नहीं सकता। अपने-अपने कर्मोंका फल सभीको भोगना होता है।

'जिन को मनुष्यत्व मिलता है, जो मनुष्य-योनि में जन्म लेते

हैं, उनमें से कितने ही प्राणी जन्मसे ही अन्धे बहरे, लूले और कोढ़ी होते हैं ; कितने ही चोरी और जारी करनेवाले प्राणी, नारकीयों की तरह, भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा से निग्रह पाते हैं ; और कितने ही नाना प्रकार की व्याधियों से पीड़ित होकर अपने पुत्रों से भी तिरस्कृत होते हैं। कितने ही मूल्य से बिके हुए—नौकर, गुलाम वगैरः—खच्चर की तरह अपने स्वामी की ताड़ना, तर्जना और भर्त्सना सहते, बहुतसे बोझ उठाते एवं भूख-प्यास का दुःख सहते हैं।

देशना की समाप्ति।

'परस्पर के पराभव से क्लेश पाये हुए और अपने-अपने स्वामियों के स्वामित्व में बँधे हुए देवताओं को भी निरन्तर दुखी रहना पड़ता है ; स्वभावसे ही दारुण इस संसार में, दुःखों का पार उसी तरह नहीं है। जिस तरह समुद्र में जल-जन्तुओं का पार नहीं है ; जिस तरह भूत-प्रेतादिक से संकलित स्थान में मंत्राक्षर प्रतीकार करनेवाला होता है ; उसी तरह दुःख के स्थान-रूप इस संसार में जैनधर्म प्रतीकार करनेवाला है। बहुत बोझ से जिस तरह नाव समुद्र में डूब जाती है, उसी तरह हिंसा से प्राणी नरक-रूपी समुद्र में डूब जाता है, अतः हिंसा हरगिज़ न करनी चाहिये। निरन्तर असत्यका त्याग करना उचित है, क्योंकि असत्य वचनसे मनुष्य इस संसार में चिरकालतक उसी तरह भ्रमता है ; जिस तरह तिनका हवा

तरह चिन्ता में डूबे हुए सार्थवाह को क्षणभर मे नींद आगई। "जिसे अति दुःख या अति सुख होता है, उसे तत्काल नींद आजाती है; क्योंकि ये दोनों निद्रा के मुख्य कारण हैं।" जब रात के चौथे पहर का आरम्भ हुआ, तब अश्वशाला के एक उत्तम आशयवाले पहरेदार ने नीचे लिखी हुई बातें कहीं.—

धनसेठकी उद्विग्नता।

"हमारे स्वामी, जिनकी कीर्त्ति दशों दिशाओं में फैल रही है, स्वयं वे संकटापन्न अवस्था में होनेपर भी, अपने शरणागतों का पालन भले प्रकार करते हैं।" पहरेदार की उपरोक्त बात सुनकर सार्थवाह ने विचार किया कि, किसी शख्स ने ऐसी बात कहकर मुझे उलाहना दिया है। मेरे संघ में दुखी कौन है? अरे! मुझे अब ख़याल आता है, कि मेरे साथ धर्मघोष आचार्य्य आये हैं। वे अक्षत, अकारित और प्रासुक भिक्षा से ही उदर-पोषण करते हैं। कन्दमूल और फलफूल आदि को तो वे छूते भी नहीं। इस कठिन समय में, वे कैसे रहते होंगे? इस दुःख की अवस्था में उनकी गुज़र कैसे होती होगी? ओह! जिन आचार्य्य को, राहमें सब तरह की सहायता देने की बात कहकर, मैं अपने साथ इस सफर में लाया हूं, उनकी मैं आज ही याद करता हूं। मुझ मूर्ख ने यह क्या किया! आज तक जिनका मैंने वाणीमात्र से भी कभी सत्कार नहीं किया, उनको आज मैं किस तरह मुँह दिखलाऊँगा? ख़ैर! गया समय हाथ नहीं

न भूलकर नाना प्रकार के तप करने लगी। वह युवती हो गई, तोभी उस दुर्भगा के साथ किसी ने विवाह नहीं किया क्योंकि कडवी तूम्बी पक जाती है, तोभी उसे कोई नही खाता। वर्त्तमान मे, वह निर्नामिका विशेष वैराग्य और भाव से युगंधर मुनि के पास अनशन व्रत ग्रहण करके रहती है। इसलिये हे ललिताङ्ग देव! आप वहाँ जाओ और उसे अपने दर्शन दो; जिस से आप पर आसक्त हुई वह मरकर आप की स्त्री हो।" कहा है कि, अन्तमें जैसी मति होती हैं, वैसीही गति होती है। पीछे ललितांग देव ने वैसा ही किया, और उस के ऊपर आसक्त हुई वह व्रती मरकर स्वयंप्रभा नाम्नी उसकी पत्नी हुई। मानो प्रणय-क्रोध से रूठ कर गई हुई स्त्री फिर मिल गयी हो इस तरह अपनी प्यारी को पाकर, ललिताङ्ग देव खूब क्रीड़ा करने लगा। क्योंकि अधिक घाम लगने पर छाया अच्छी लगतीही है।

ललितांगदेव के च्यवन-चिह्न।

इस तरह क्रीड़ा करते हुए कितना ही समय बीत जानेपर ललिताङ्ग देव को अपने च्यवन—पतनके चिह्न नज़र आने लगे। मानो उस के वियोग-भय से रत्नाभरण निस्तेज होने लगे और उस के शरीर के कपडे भी मैले होने लगे। जब दुःख नज़दीक़ आता है, तब लक्ष्मीपति भी लक्ष्मी से अलग हो जाते हैं। ऐसे समय में, उसे धर्म से अरुचि और भोग मे विशेष आसक्ति हुई। जब अन्त समय आता है, तब प्राणियो की प्रकृति में फेरफार

है भी नहीं है। परन्तु युद्ध मे जिस तरह अवसर आने से मन्त्रास्त्र ग्रहण किया जाता है : उसी तरह अवसर आने पर धर्मको ग्रहण करना उचित है। बहुत दिनों में आये हुए मित्र की तरह यौवन की प्रतिपत्ति किये बिना. कौन उसकी उपेक्षा कर सकता है ? तुमने जो धर्म का उपदेश दिया है, वह अयोग्य अवसर पर दिया है: अर्थात् बे-मौके दिया है ; क्योंकि वीणा के बजते समय वेद का उच्चार अच्छा नहीं लगता। धर्म का फल परलोक है, इस में सन्देह है। इसलिये तुम इस लोक के सुखास्वाद का निषेध क्यों करते हो ? अर्थात् इस दुनिया के मजे लूटने से मुझे क्यों रोकते हो ?'

राजा की उपरोक्त बातें सुनकर स्वयंबुद्ध हाथ जोड़ कर बोला—"आवश्यक धर्म के फल मे कभी भी शंका करना उचित नहीं, आपको याद होगा कि, बाल्यावस्था में आप एक दिन नन्दन वन में गये थे। वहाँ एक सुन्दर कान्तिवान देव को देखा था। उस समय देव ने प्रसन्न होकर आप से कहा था—'मैं अतिबल नामक तुम्हारा पितामह हूँ। क्रूर मित्र के समान विषय-सुखों से उद्विग्न होकर, मैंने तिनके की तरह राज्य छोड़ दिया और रत्न-त्रय को ग्रहण किया। अन्तावस्था में भी, व्रत रूपी महल के कलश रूप त्याग-भाव को मैंने ग्रहण किया था। उसके प्रभाव से मैं लान्तकाधिपति देव हुआ हूँ। इसलिये तुम भी असार संसार में प्रमादी होकर मत रहना।' इस प्रकार कहकर, बिजली की तरह आकाश को प्रकाशित करता हुआ, वह देव अन्तर्धान हो

ललितांग देव का च्यवन।

उसने कहा,—"प्यारी! तैंने कुछ भी अपराध नहीं किया है। हे सुन्दर भौंहोंवाली! अपराध तो मैंने ही किया है, जो पूर्व जन्म में ओछा तप किया। पूर्व जन्म में, मैं विद्याधरों का राजा था। उस समय, मैं भोग-कार्य में जाग्रत और धर्म-कार्य में प्रमादी था। मेरे सौभाग्य से प्रेरित होकर, स्वयंबुद्ध नामक मन्त्री ने आयु का शेषांश बाक़ी रहने पर मुझे जैनधर्म का बोध कराया और मैंने उसे स्वीकार किया। उस ज़रा सी मुद्दत में किये हुए धर्म के प्रभाव से, मैं अबतक श्रीप्रभ विमान का स्वामी रहा; परन्तु अब मेरा च्यवन होगा— मैं इस पदपर न रहूँगा: क्योंकि अलभ्य वस्तु किसी को भी मिल नहीं सकती।" वह इस तरह बातें कर ही रहा था कि, इसी बीच में दृढ़धर्मा नामक देव उन के पास आकर कहने लगा:—"आज ईशान कल्पके स्वामी नन्दीश्वरादिक द्वीप में जिनेन्द्र प्रतिमा की पूजा करने को जाने-वाले हैं; इसलिये आप भी उन की आज्ञा से चलिये।" यह बात सुनते ही—'अहो! स्वामी ने हुक्म भी समयोचित ही दिया है—' कहते हुए वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अपनी प्यारी सहित वहाँको चला। नन्दीश्वर द्वीप में जाकर, उसने शाश्वती अर्हत्प्रतिमा की पूजा की और ख़ुशी में अपने च्यवन-काल की बात को भी भूल गया। इस के बाद स्वस्थ चित्तवाला वह देव दूसरे तीर्थों को जा रहा था, कि इसी बीच में आयुष्य

क्षीण होने से, क्षीण तेलवाले दीपक की तरह, राहमें ही पञ्चत्व को प्राप्त हुआ , यानी देह-त्याग किया।

छठा भव
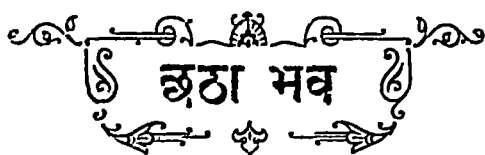
जम्बूद्वीप में, सागर-समीप-स्थित पूर्व विदेह में, सीता नाम्नी महानदी के उत्तर अञ्चल में, पुष्कलावती नम्नी विजय के मध्य-में, लोहार्गल नामक बड़े भारी नगर के सुवर्णजंघ राजा की लक्ष्मी नाम्नी स्त्री की कोख से ललिताङ्ग देव का जीव पुत्र-रूप-में पैदा हुआ। आनन्द से प्रफुल्लित माता-पिता ने प्रसन्न होकर, शुभ दिवस में, उसका नाम वज्रजंघ रखा। ललिताङ्ग देव के विरह से दुःखार्त्त हो, स्वयप्रभा देवी भी, कितने ही समय तक धर्म-कार्य में लीन रहकर, वहाँ से च्यवी, यानी उस का देहाव-सान हुआ। मरकर वह उसी विजय में, पुण्डरीकिणी नगरी-के वज्रसेन राजा की गुणवती नाम की स्त्रीसे पुत्री-रूप में जन्मी। अतीव सुन्दरी होने के कारण माता-पिता ने उसका नाम श्री-मती रक्खा। जिस तरह उद्यान पालिका—मालिन द्वारा लालित होनेसे लता बढ़ती है , उसी तरह वह सुन्दर हस्तपल्लव वाली कोमलाङ्गी बाला धायों द्वारा लालित-पालित होकर अनुक्रम से बढ़ने लगी। सुवर्ण की अँगूठी को जिस तरह रत्न प्राप्त होता है; उसी तरह अपनी स्निग्ध-कान्ति से गगन-तल को पल्लवित

करनेवाली उस राजबाला को यौवन प्राप्त हुआ। एक दिन, सन्ध्याकी अभ्रलेखा जिस तरह पर्वत पर चढ़ती है ; उसी तरह वह अपने सर्वतोभद्र महल पर चढ़ी। उस समय, मनोरम नामक बागीचेमें किसी मुनीश्वर को केवल-ज्ञान प्राप्त होने के कारण, वहाँ जानेवाले देवताओं पर उस की नज़र पड़ी। उन को देखते ही मैंने पहले भी ऐसा देखा है,—ऐसा विचार करने वाली उस बालाको, रात के स्वप्न की तरह, पूर्व जन्म की बात याद आगई। मानो हृदय में उत्पन्न हुए पूर्व जन्म के ज्ञान का भार वहन न कर सकती हो, इस तरह वह बेहोश होकर ज़मीन-पर गिर पड़ी। सखियों के चन्दन प्रभृति-द्वारा उपचार करने से उसे होश आ गया। उठते ही वह अपने चित्तमें विचार करने लगी—'पूर्व जन्म में ललिताङ्ग देव नामक देव मेरे पति थे। उनका स्वर्गसे पतन हुआ है ; परन्तु इस समय वे कहाँ हैं, इस बात की ख़बर न लगनेसे मुझे दुःख हो रहा है। मेरे हृदय पर उन्हीं का प्रतिबिम्ब या अक्स पड़ा हुआ है और वेही मेरे हृदयेश्वर हैं ; क्योंकि कपूर के बासन में नमक कौन रखता है ? अगर मेरे प्राणपति मुझसे बातचीत न करें, तो मेरा औरों से बातचीत करना वृथा है। ऐसा विचार करके, उसने मौन धारण कर लिया—बोलना छोड़ दिया।

श्रीमती के पाणिग्रहण के उपाय।

जब वह न बोली, तब सखियाँ देवदोष की शङ्का से तन्त्रमन्त्र

आदिक से यथोचित उपचार करने लगीं। ऐसे सैकड़ों उपचारों से भी उसने मौन न त्यागा, क्योंकि वीमारी और हो और दवा और हो, तो आराम नहीं होता। काम पड़ने से, वह अपने कुटुम्बियों को अक्षर लिख कर अथवा भौं और हाथों के इशारेसे अपने मन का भाव जताती थी। एक दिन श्रीमती अपने क्रीड़ा-उद्यान में गई। उस समय एकान्त जानकर उस की पण्डिता नाम्नी धाय ने उस से कहा—"राजपुत्री! जिस हेतु से तैंने मौन धारण किया है, वह हेतु मुझ से कह और दुःखमें मुझे भागीदारन वनाकर अपना दुःख हल्का कर। तेरे दुःख को जानकर मैं उस के दूर करने का उपाय करूँगी, क्योंकि रोग जाने विना रोग की चिकित्सा हो नहीं सकती।' इसके बाद जिस तरह प्रायश्चित्त करनेवाला मनुष्य सद्गुरु के सामने अपना यथार्थ वृत्तान्त निवेदन कर देता है; उसी तरह श्रीमती ने अपने पूर्वजन्म का यथार्थ वृत्तान्त पण्डिता को कह सुनाया। तव उस सारे वृत्तान्त को एक पट्टी पर लिख कर, उपाय करने में चतुर पण्डिता उस पट्टी को लेकर वाहर चली। उसी समय वज्र-सेन चक्रवर्त्ती की वर्ष-गाँठ होने के कारण, उस के उत्सव में शामिल होने के लिये, अनेक राजा और राजकुमार आने लगे। उस समय श्रीमती के वड़े भारी मनोरथ की तरह लिखे हुए उस पट को अच्छी तरह फैलाकर पण्डिता राजमार्ग में खड़ी हो गई। कितने ही आगम-शास्त्र जानने वाले शास्त्र के अर्थ प्रमाण से लिखे हुए नन्दीश्वर द्वीप प्रभृति को देखकर उसकी स्तुति करने

लगे। कितने ही आदमी श्रद्धा से अपनी गर्दन हिलाते हुए, उसमें लिखे हुए श्रीमत् अरहन्त के प्रत्येक विम्ब का वर्णन करने लगे; कितने ही कला-कौशल-कुशल राहगीर उसे तेज़ नज़र से देखकर, रेखाओं की शुद्धि की वारम्वार तारीफ करने लगे और कितने ही लोग उस पट के अन्दर के काले, सफेद, पीले, नीले और लाल रंगों से, सन्ध्या के वादलों के समान, वनाये हुए रंगो का वर्णन करने लगे। इसी मौक़े पर, यथार्थ नामवाले दुर्दर्शन राजा का दुर्दान्त नामका पुत्र वहाँ आ पहुँचा। वह एक क्षण तक पट को देखकर, वनावटी मूर्च्छा से ज़मीन पर गिर पड़ा और फिर होश मे आगया हो, इस तरह उठ वैठा। उसके उठने पर लोगों ने जव उससे उसके वेहोश होने का कारण पूछा, तव वह कपट-नाट्य करके अपना वृत्तान्त कहने लगाः—'इस पटमें किसी ने मेरे पूर्वजन्म का वृत्तान्त लिखा है। इस के देखने से मुझे जाति-स्मरण-ज्ञान उत्पन्न हुआ है। यह मैं ललिताङ्ग देव हूँ और यह मेरी देवी स्वयंप्रभा है।' इस तरह उसमे जो-जो लिखा था, उसने उसी प्रमाण से कहा। इसके वाद पण्डिता ने कहा—'यदि यही वात है, तो इस पट में कौन-कौन स्थान हैं, अँगुली से वताओ।' दुर्दान्त ने कहा—'यह मेरु पर्वत है और यह पुण्डरीकिणी नदी है। 'फिर पण्डिता ने मुनिका नाम पूछा, तव उस ने कहा—'मुनिका नाम मैं भूल गया हूँ।' उसने फिर पूछा—'मंत्रीवर्ग से घिरे हुए इस राजा का नाम क्या है और यह तपस्वी कौन है, यह वताओ।' उसने कहा—'मैं इन

के बवंडर या बगूले में भ्रमता है। किसी की भी बिना दी हुई चीज़ न लेनी चाहिये अथवा किसी भी चीज़ की चोरी न करनी चाहिये : क्योंकि कौंच की फली के छूने के समान अदत्त—बिना दिया हुआ पदार्थ लेने से किसी हालत में भी सुख नहीं मिलता। अब्रह्मचर्य्य को त्यागना चाहिये। क्योंकि अब्रह्मचर्य्य रंक की तरह गला पकड़कर मनुष्य को नरकमें ले जाता है। परिग्रह इकट्ठा न करना चाहिये, क्योंकि बहुत बोझ से बैल जिस तरह-कीचड़ में फँस जाता है; उसी तरह मनुष्य परिग्रह के वश में पड़कर दुःख में डूब जाता है। जो लोग हिंसा प्रभृति पाँच अव्रतका देशसे भी त्याग करते हैं, वे उत्तरोत्तर कल्याणसम्पत्ति के पात्र होते हैं।'

निर्नामिका का पुनर्जन्म।

ललितांग और स्वयप्रभा का पुनर्मिलन।

'केवली भगवान् के मुंहसे ऐसी बातें सुनकर निर्नामिका को वैराग्य उत्पन्न हो गया और लोहे के गोले की तरह उस की कर्म-ग्रन्थि भिद गयी। उस ने उस मुनीश्वर के पास से अच्छी तरह सम्यक्त्व ग्रहण किया और परलोक-रूपी मार्ग में पाथेय-तुल्य अहिंसा आदि पाँच अणुव्रत धारण किये। इस के बाद मुनि महाराज को प्रणाम कर, मैं कृतार्थ हुई,—ऐसा मानती हुई, वह निर्नामिका भारी उठाकर अपने घर गई। उस दिन से, वह सुबुद्धिमती बाला अपने नाम की तरह युगंधर मुनि की वाणी को

श्रीमती का पाणिग्रहण ।

वज्रसेन का दीक्षा ग्रहण ।

वज्रजंघ और श्रीमती की विदाई ।

कुछ देर बाद, लोहार्गल पुर से आया हुआ, वज्रजंघ कुमार भी वहाँ आया। उसने चित्र-लिखा चरित्र देखा और वेहोश हो गया। पंखों से हवा की गई और जल के छींटे मारे गये, तब उसे होश हुआ। इसके बाद मानो स्वर्ग से ही आया हो, इस तरह उसे जाति-स्मरण हुआ। उसी समय पण्डिता ने पूछा—कुमार! पट का लेख देखकर तुम वेहोश क्यों हो गये? "वज्रजंघ ने कहा—"भद्रे! इस पटमें मेरा और मेरी स्त्री का पूर्व जन्म का वृत्तान्त लिखा हुआ है, उसे देख मैं वेहोश हो गया। यह श्रीमान् ईशान कल्प है, उसमें यह श्रीप्रभ विमान है, यह मैं ललिताङ्ग देव हूँ और यह मेरी देवी स्वयंप्रभा है। धातकीखण्ड के नन्दी-ग्राम में, इस घर के अन्दर, महादरिद्री पुरुष की यह निर्नामिका नाम की पुत्री है। वह यहाँ अम्बर तिलक पहाड़ के ऊपर आरूढ़ हुई है और उसने इस युगन्धर मुनि से अनशन व्रत ग्रहण किया है। यहाँ मैं, मुझ पर आसक्त, उसी स्त्री को अपने दर्शन देने आया हूँ और फिर वह यहाँ पञ्चत्व को प्राप्त होकर यानी मरकर, स्वयंप्रभा नाम्नी मेरी देवी के रूप में पैदा हुई है। यहाँ, मैं, नन्दीश्वर द्वीप में, जिनेश्वर देव की अर्चना

वज्रजंघने कहा—"भद्र! इस पटमें मेरा और मेरी स्त्री का पूर्व जन्म का वृत्तान्त लिखा हुआ है, उसे देख मैं बेहोश हो गया। यह श्रीमान ईशान कल्प है, इसमें यह श्रीप्रभ विमान है, यह मैं ललितांग देव हूँ और यह मेरी देवी स्वयंप्रभा है। [पृष्ठ ९६]

में लगा हुआ हूँ। वहाँ से दूसरे तीर्थों में जाता हुआ, यहाँ मैं च्यव गया हूँ, यानी मेरा दूसरे लोक के लिए पतन हो गया है,—मैंने अन्य लोक में जाने के लिए अपना पहला और पुराना शरीर त्याग दिया है। अकेली, दीन-दुखी और सहाय-हीन अवस्था में यह स्वयँप्रभा यहाँ आई है, इस को मैं मानता हूँ और यही मेरी पूर्व-जन्म की प्रिया है। वह स्त्री यही है और उसने ही इसे जाति-स्मरण से लिखा है,—यह मैं जानता हूँ; क्योंकि विना, अनुभव के कोई भी आदमी इन सब बातों को जान नहीं सकता। चित्र-पट में सब स्थान दिखलाकर, वह ऐसा कह ही रहा था, कि इतने में पण्डिता बोली—'कुमार! आप का कहना सच है।' यह कहकर वह सीधी श्रीमती के पास आई और हृदय को शल्य-रहित करने में औषधि-समान वह आख्यान उसने श्रीमती को कह सुनाया; अर्थात् दिल की खटक निकालने वाली वे सब बातें उसने उससे कह दीं। मेघ के शब्दों से विदूर पर्वत की ज़मीन जिस तरह रत्नों से अङ्कुरित होती है, उसी तरह श्रीमती अपने प्यारे पतिका वृत्तान्त सुनकर रोमाञ्चित हुई। पीछे उसने पण्डिता के द्वारा अपने पिता को इस बात की ख़बर कराई, स्वतन्त्र न रहना कुलस्त्रियों का स्वाभाविक धर्म है। मेघ की वाणी से जिस तरह मोर प्रसन्न होता है, उसी तरह पण्डिता की बातों से वज्रसेन प्रसन्न हुआ और शीघ्र ही वज्रजंघ कुमार को बुलवाकर उन से कहा—'मेरी बेटी श्रीमती पूर्वजन्म की तरह इस जन्म मे भी आपकी गृहिणी हो।' वज्रजंघ ने यह बात मंजूर कर ली, तब वज्रसेन-

चक्रवर्त्ती ने, समुद्र जिस तरह विष्णु के साथ लक्ष्मी की शादी करता है, उसी तरह अपनी कन्या श्रीमती का पाणिग्रहण उनके साथ कर दिया। इसके बाद चन्द्र और चन्द्रिका की तरह मिले हुए वे दोनों पति पत्नी, उज्ज्वल रेशमी कपड़े पहन और राजा की आज्ञा ले, लोहार्गलपुर गये। वहाँ सुवर्णजंघ राजा ने पुत्र को योग्य समझ, राजगद्दी पर विठा, आप दीक्षा ग्रहण की।

वज्रजंघ और श्रीमती के पुत्र-जन्म।

पुष्करपाल के सामन्तों की बग़ावत।

वज्रजंघ और श्रीमती का सहायतार्थ आगमन।

इधर राजा वज्रसेन ने अपने पुत्र पुष्करपाल को राज्यलक्ष्मी सौंपकर दीक्षा अंगीकार की और वह तीर्थङ्कर हुए। अपनी प्यारी श्रीमती के साथ भोग-विलास या ऐश-आराम करते हुए वज्रजंघ राजाने ,हाथी जिस तरह कमल को वहन करता है उसी तरह, राज्य को वहन किया। गंगा और सागर की तरह वियोग को प्राप्त न होने वाले और निरन्तर सुख-भोग भोगने वाले उस दम्पति के एक पुत्र पैदा हुआ। इस बीच में, सर्पो की भारी के समान महाक्रोधी, सीमा के सामन्त-राजा पुष्करपाल के विरुद्ध उठ खड़े हुए। सर्प की तरह उन्हें वश में करने के लिए, उसने वज्रजंघ को बुलाया। वह बलवान राजा उसकी मदद के लिए शीघ्र ही चल दिया। इन्द्र के साथ जिस तरह इन्द्राणी चलती

है । उसी तरह पति में अचला भक्ति रखनेवाली श्रीमती अपने पति के साथ हो ली। आधी राह तय करने पर, अमावस्या की अँधेरी रात में चाँदनी का भ्रम कराने वाला, एक घना सरकण्डोंका वन उन्हें मिला। राहगीरों के यह कहने पर, कि इस वनमें दृष्टिविष सर्प रहता है, उन्होंने उस राह को छोड़कर दूसरी राह पकड़ी, अर्थात् वे दूसरे मार्ग से चले ; क्योंकि नीतिज्ञ पुरुष प्रस्तुत अर्थ में ही तत्पर होते हैं। पुण्डरीक की उपमा वाले राजा वज्रजंघ पुण्डरीकिणी नगरी में आये। उनके बल और साहाय्य से पुष्करपाल ने सारे सामन्त अपने आधीन कर लिये। विधि के जानने वाले पुष्करपाल ने, गुरुकी तरह, राजा वज्रजंघ का खूब सत्कार किया।

वज्रजंघ और श्रीमती की वापसी।

वज्रजंघ को वैराग्य।

पुत्रद्वारा मारा जाना।

दूसरे दिन श्रीमती के भाई की आज्ञा लेकर, लक्ष्मी के साथ जिस तरह लक्ष्मीपति चलते हैं, उसी तरह वज्रजंघ राजा श्रीमती के साथ वहाँ से चला। वह शत्रुनाशन राजा जब सरकण्डों के वन के निकट आया, तब मार्ग के कुशल पुरुषों ने उस से कहा,— 'अभी इस वन में दो मुनियोंको केवल-ज्ञान हुआ है ; अतः, देवताओं के आने के उद्योत से, दृष्टिविष सर्प विषहीन हो गया

है। वे सगरसेन और मुनिसेन नाम के, सूर्य चन्द्रमा के समान, दोनों मुनि इस समय भी इसी वनमें मोजूद हैं। वे दोनों ही सहोदर भाई हैं—एक माँके पेटसे पैदा हुए हैं।' यह समाचार सुनते ही राजा वज्रजंघ अत्यन्त प्रसन्न हुए और जिस तरह विष्णु समुद्र में निवास करते हैं, उसी तरह उन्होंने उस वनमें निवास किया। देवमण्डली से घिर कर उपदेश या देशना देते हुए उन दोनों मुनियों के भक्तिभार से मानों नम्र हो गया हो, इस तरह उस राजा ने स्त्री-सहित वन्दना की। उपदेश या देशना के शेष होने पर, उसने अन्न, वस्त्र और उपकरणादिकों से मुनियों को प्रतिलाभ्या; अर्थात् अन्न वस्त्र आदि भेट देकर उन का सत्कार किया। इस के वाद मनमें विचार किया—"ये दोनोंही सहोदर भाव में समान हैं। दोनों ही निष्कषाय, निर्मम और निष्परिग्रह हैं। ये दोनोंही धन्य हैं; पर मैं इनके जैसा नहीं हूँ, अतः मैं अधन्य हूँ। व्रत को ग्रहण करनेवाले और अपने पिता के सन्मार्ग को अनुसरण करनेवाले ये दोनों औरस पुत्र हैं और मैं वैसा न करने के कारण, बिक्री से ख़रीदे हुए पुत्र के जैसा हूँ। ऐसा होते हुए भी, यदि व्रत ग्रहण करूं तो अनुचित नहीं है; क्योंकि दीक्षा, दीपक की तरह, ग्रहण करने मात्रसे ही अज्ञान अन्धकार का नाश करती है; अतः यहाँ से नगर में पहुँच, पुत्र को राज्य सौंप, हंस जिस तरह हंस की गति का आश्रय लेता है, मैं भी अपने पिता की गति का आश्रय लूँगा, अर्थात् मैं भी अपने

पिता का ही पदानुसरण करूँगा—पिताकी तरह दीक्षा लूँगा।' पीछे मानो एक दिल हो इस तरह, व्रत-ग्रहण में भी वाद करनेवाली श्रीमती के साथ-वह अपने लोहार्गल नगर में आया। वहाँ, राज्य के लोभ से, उसके पुत्रने धन के ज़ोर से मन्त्रिमण्डल को अपने हाथ में कर लिया। जलके समान धन से कौन नहीं भेदा जा सकता? सवेरे उठकर व्रत ग्रहण करना है और पुत्रको राज्य सौंपना है, यह चिन्ता करते-करते श्रीमती और राजा सो गये। उन सुख से सूते हुए दम्पति के मार डालने के लिए, राजपुत्र ने ज़हर का धूआँ किया। घर में लगी हुई आग की तरह, उसे कौन निवारण कर सकता है? प्राण को खींचकर बाहर निकालने-वाले साँकड़े के जैसे, उस विष-धूप के धूएँ के नाक में घुसने से राजा, और रानी तत्काल मर गये।

सातवाँ और आठवाँ भव
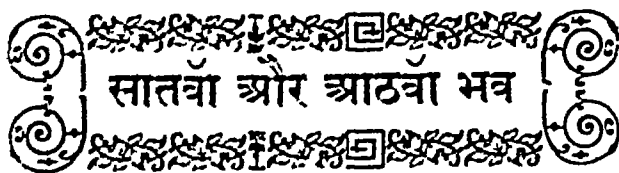
वे स्त्री-पुरुष वहाँ से देह छोडकर, उत्तर कुरुक्षेत्र में युग्म रूप में पैदा हुए। 'एक चिन्ता में मरनेवालों की एकसी गति होती है।' इस क्षेत्र के योग्य आयुष्य को पूरी करके, वे मर गये और मरकर दोनों ही सौधर्म देवलोक में परस्पर प्रेमी देव हुए।

नवाँ भव
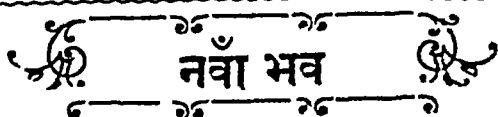
ललितांग का सुविधि वैद्य के घर जन्म।

वर्तमान नाम जीवानन्द वैद्य।

व्याधिग्रस्त मुनि से मिलन।

चिरकाल तक देवताओं के भोग भोगकर, उम्र पूरी होने पर, बर्फ़ जिस तरह गल जाती है; उसी तरह वज्रजंघ का जीव वहाँ से च्यव कर, जम्बू द्वीप के विदेह क्षेत्र-स्थित क्षितिप्रतिष्ठित नगर में, सुविधि वैद्य के घर में, जीवानन्द नामक पुत्र-रूप से पैदा हुआ। उसी समय, शरीरधारी धर्म के चार भेद हों ऐसे चार बालक और भी उस नगर में उत्पन्न हुए। उनमें से पहले, ईशानचन्द्र राजा की कनकवती नाम की रानी से महीधर नामक पुत्र का जन्म हुआ। दूसरे, सुनासीर नामक मन्त्रीकी लक्ष्मी नाम की स्त्री से, लक्ष्मीपुत्र के समान, सुबुद्धि नामक पुत्र हुआ। तीसरे; सागर-दत्त सार्थवाह की अभयमती नाम की स्त्री से पूर्णभद्र नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, और चौथे धनसेठी की शीलमती नाम्नी स्त्री से शीलपुञ्ज के जैसा गुणाकर नामक पुत्र पैदा हुआ। बच्चों को रखनेवाली स्त्रियो की चेष्टा और रात-दिन की रखवाली से वे बालक, अङ्ग के सब अवयव जिस तरह साथ-साथ बढ़ते हैं उसी तरह, साथ-साथ बढ़ने लगे अर्थात् नाक, कान, जीभ आँख, हाथ, पैर, पेट, पीठ प्रभृति शरीरके अवयव या अजे जिस तरह एक

साथ बढ़ते हैं, उसी तरह वे चारों बालक एक साथ बढ़ने लगे। हमेशा साथ खेलनेवाले वे बालक—जिस तरह वृक्ष, मेघ के जल को सोख लेता है उसी तरह—सब कला-कलाप को साथ-साथ ही ग्रहण करने लगे। श्रीमती का जीव भी, देवलोक से चव कर, उसी शहर में, ईश्वरदत्त सेठ का केशव नामक पुत्र हुआ। पाँच करण और छठे अन्तःकरण की तरह, वे छहों मित्र वियोग, रहित हुए। उन में सुविधि वैद्य का पुत्र जीवानन्द, औषधि और रसवीर्य्य के विपाक से, अपने पिता-सम्बन्धी अष्टाङ्ग आयुर्वेद-का जानकार हुआ। जिस तरह हाथियों में ऐरावत और नव ग्रहों में सूर्य्य अग्रगण्य या श्रेष्ठ है; उसी तरह वह बुद्धिमान और निर्दोष विद्यावाला सब वैद्यों में अग्रणी या श्रेष्ठ था। वे छहों मित्र सहोदर भाइयों की तरह एक साथ खेलते और परस्पर एक दूसरेके घर पर इकट्ठे होते थे। एक समय, वैद्य-पुत्र जीवानन्द के घर पर वे सब बैठे हुए थे। उसी समय एक साधु भिक्षा उपार्ज्जनार्थ वहाँ आया। वह साधु पृथ्वीपाल राजा का गुणाकर नामक पुत्र था। उसने मल की तरह राज्य को त्याग कर, शम साम्राज्य या चारित्र ग्रहण किया था। ग्रीष्म ऋतु की धूप से जिस तरह नदियाँ सूख जाती हैं, उसी तरह तपश्चर्य्या के कारण वह सूख-सूखकर काँटे से हो गये थे। अथवा मौसम गरमी की तेज धूप के मारे, जिस तरह नदियों में अल्प जल रह जाता है उसी तरह तप के कारण उन के बदन में भी अल्प रक्त-मांस रह गये थे। गरमी की नदियों की तरह व कृश-काय हो गये

थे। समय बे-समय अपथ्य भोजन करने से, उन्हें कृमि-कुष्ट रोग हो गया था। यद्यपि उन के सारे शरीर में कृमिकुष्ट फैल गया था—उनके सारे अङ्गमें कोढ़ चूता था और कीड़े किलबिलाते थे; तथापि वे किसी से दवा न माँगते थे, क्योंकि मोक्ष-कामी लोग शरीर की उतनी पर्वा नहीं करते—वे शरीर की ओर से लापर्वा ही रहते हैं—वे शरीर को कोई चीज़ समझते ही नहीं।

मुनिचिकित्सा की तैयारी।

*गोमुत्रिका के विधान से, घर-घर घूमते हुए उन साधु को, छठ के पारणे के दिन, उन्होंने अपने दरवाज़े पर आते देखा। उस समय, जगत् के अद्वितीय वैद्य-सदृश जीवानन्द से महीधर कुमारने किसी क़दर दिल्लगी के साथ कहा—'तुम रोग-परीक्षा में निपुण हो, औषधितत्वज्ञ हो और चिकित्सा-कर्म में भी दक्ष हो; परन्तु तुम में दया का अभाव है। जिस तरह वेश्या धनहीन को नज़र उठाकर भी नहीं देखती; उसी तरह तुम भी निरन्तर स्तुति और प्रार्थना करनेवालों के सामने भी नहीं देखते। परन्तु विवेकी और विचारशील पुरुष को एक-मात्र धन का लोभी होना

*साधु जब आहार ग्रहण करने के लिए गृहस्थों के घर जाय, तब उसे गोमूत्र के आकार से जाना चाहिये, शास्त्रका यही विधान है। अगर वह सीधी पङ्क्तिमें जायगा, तो सम्भव है, बराबर के घर वाले, मालूम न होने से, साधुके भिक्षा दान की तैयारी न कर सकें।

उचित नहीं। किसी सभय धर्म्मार्थ चिकित्सा भी करनी चाहिए। निदान और चिकित्सा में जो तुम्हारी कुशलता है, उस के लिए धिक्कार है ; क्योंकि ऐसे रोगी मुनि की तुम उपेक्षा करते हो।' महोधर कुमार की बातें सुन कर, विज्ञान-रत्न के रत्नाकर-समान जीवानन्दने कहा-'तुमने मुझे याद दिलाई, यह बहुत ही अच्छा काम किया। जगत्‌में प्रायः ब्राह्मण द्वेष-रहित नज़र नहीं आते, वणिक अवञ्चक नहीं होते, देहधारी निरोग नहीं होते, मित्र ईर्ष्या-रहित नहीं होते, विद्वान् धनवान नहीं होते; गुणी गर्व-रहित नहीं होते; स्त्रियाँ चपलता-विहीन नहीं होतीं और राजपुत्र सदाचारी नहीं होते। यह महामुनि अवश्य ही चिकित्सा करने लायक है। लेकिन मेरे पास दवा का सामान नहीं है, यह अन्तराय रूप है। उस बीमारी के लिए जिन दवाओं की जरूरत है, उन में से मेरे पास 'लक्षपाक तैल' है; परन्तु गोशीर्ष चन्दन और रत्न कम्बल मेरे पास नहीं हैं। इनको तुम लाकर दो।' इन दोनों चीज़ों को हम लायेंगे, यह कह कर वे पाँचों यार बाजारको चले गये और मुनि अपने स्थान को चले गये। उन पाँचों मित्रोंने बाज़ारमें जाकर एक बूढ़े व्यापारी से कहा—'हमें गोशीर्ष चन्दन और रत्नकम्बल दाम लेकर दीजिये।' उस वणिक ने कहा—'इन दोनों चीज़ों का मूल्य एक-एक लाख मुहर है। मूल्य देकर आप उन्हें ले जा सकते हैं, परन्तु पहले यह बतलाइये कि, उनकी आप को किस लिए ज़रूरत है।' उन्होंने कहा—'जो दाम हों सो लीजिये और उन्हें हमें दीजिये। एक महात्माकी चिकित्साके लिए उनकी ज़रूरत है।' यह बात सुनते

ही सेठ आश्चर्य-चकित हो गया, उस के नेत्र फटे से हो गये—वह हक्का-बक्का होकर देखता रह गया। रोमाञ्च से उस के हृदय के आनन्द का पता लगता था। वह अपने दिल में इस भाँति विचार करने लगा—'अहो! कहाँ तो इन सब का उन्माद-प्रमाद और कामदेव से भी अधिक मदपूर्ण यौवन और कहाँ इन की वयोवृद्धों के योग्य विवेक-पूर्ण मति? इस उठती जवानी में, इनमें वृद्धों के योग्य विवेक-विचार-पूर्ण मति-गति देखकर विस्मय होता है, मेरे जैसे बुढ़ापे से जर्ज्जर शरीर वाले मनुष्यों के करने योग्य शुभ कामों को ये करते हैं और दमन करने योग्य भार को उठाते हैं।' ऐसा विचार कर वृद्ध वणिक ने कहा—'हे भद्र पुरुषो! इस गोशीर्ष चन्दन और कम्बलको ले जाइये। आपलोगोंका कल्याण हो! मूल्य की दरकार नही। इन वस्तुओंका धर्मरूपी अक्षय मूल्य मैं लूंगा, क्योंकि आप लोगोंने मुझे सहोदरके समान धर्म-कार्य मे हिस्सेदार बनाया है।' यह कह कर उसने दोनों चीज़ें उन्हें दे दी। इस के बाद, उस भाविक आत्मा वाले श्रेष्ठ सेठने दीक्षा लेकर परम-पद लाभ किया।

जीवानन्द वैद्य द्वारा मुनिकी चिकित्सा।

अपूर्व और आश्चर्य चमत्कार।

आरोग्य-लाभ।

इस तरह औषधि की सामग्री लेकर, महात्माओं में श्रेष्ठ वे

'हे भगवन्! आज चिकित्सा-कार्य से, हम आपके धर्मकार्य में विघ्न करेंगे। आप आज्ञा दीजिये और पुण्य से हमपर अनुग्रह कीजिये।

Narsingh Press Calcutta

इस के बाद उन्होंने मुनि के प्रत्येक अंग में लक्षपाक तैल की मालिश की जिस तरह क्यारी का जल बाग़ मे फैल जाता है, उस तरह वह तेल उनकी नस-नस मे फैल गया। उस तेल के अत्यन्त उष्णवीर्य होने के कारण मुनि बेहोश होगये।

मित्र, जीवानन्दके साथ, उन मुनिराजके पास गये। वह मुनि महाराज एक बड़ के वृक्ष के नीचे, वृक्ष के पाद की तरह निश्चल होकर, कायोत्सर्ग में तत्पर थे। मुनि को नमस्कार करके उन्होंने कहा,—'हे भगवन्! आज चिकित्सा-कार्य से, हम आपके धर्म-कार्य में विघ्न करेंगे। आप आज्ञा दीजिये और पुण्य से हमपर अनुग्रह कीजिये। मुनि ने ज्योंही चिकित्सा की आज्ञा दी, त्योंही वे एक मरी हुई गाय को ले आये, क्योंकि सद्वैद्य कभी भी विपरीत चिकित्सा नहीं करते। इस के बाद उन्होंने मुनि के प्रत्येक अङ्ग में लक्षपाक तैल की मालिश की जिस तरह क्यारी का जल बाग़ में फैल जाता है, उस तरह वह तेल उन की नस-नस मे फैल गया। उस तेल के अत्यन्त उष्णवीर्य होने के कारण, मुनि बेहोश होगये। उग्र व्याधि की शान्ति के लिए उग्र औषधिका ही प्रयोग करना पड़ता है। तेल से व्याकुल हुए कृमि मुनि के शरीर से इस तरह निकलने लगे; जिस तरह बिल मे जल डालने से चींटियाँ बाहर निकलती हैं। कीड़ों को निकलते देख, जीवानन्द ने मुनि को रत्न-कम्बल से इस तरह आच्छादित कर दिया; जिस तरह चन्द्रमा अपनी चाँदनी से आकाश को आच्छादित कर देता है। उस रत्न-कम्बल में शीतलता होने की वजह से, सारे कीड़े उस में उसी तरह लीन हो गये, जिस तरह गरमी के मौसम की दोपहरी में तपी हुई मछलियाँ शेवाल में लीन हो जाती हैं। इसके पीछे रत्न-कम्बल को बिना हिलाये धीरे धीरे उठाकर, सारे कीड़े गाय की लाश पर डाल दिये गये।

सत्पुरुष सर्वत्र दयासे ही काम लेते हैं। इस के बाद, जीवानन्द ने, अमृतरस-समान प्राणी को जिलानेवाले, गोशीर्ष चन्दन का लेप करके मुनि की आश्वासना की। इस तरह पहले चमड़े के भीतर के कीड़े निकले। तब उन्हों ने फिर तेल की मालिश की। उस से उदानवायु से जिस तरह रस निकलता है; उस तरह मांस के भीतर के बहुत से कीड़े निकल पड़े। तब, पहले की तरह फिर रत्न कम्बल उढ़ाया गया। इसबार जिस तरह दो तीन दिन के दही के कीड़े अलता के ऊपर तिर आते हैं; उसी तरह कीड़े उस कम्बल पर तिर आये। उन्होंने वे फिर मरी हुई गाय पर डाल दिये। अहो! कैसा उस वैद्य का बुद्धि-कौशल था। उसने कमाल किया। पीछे, मेघ जिस तरह गरमी से पीड़ित हाथी को शान्त करता है, उन्हों ने उसी तरह गोशीर्ष चन्दन के रस की धारा से मुनि को शान्त किया। कुछ देर बाद, उन्होंने तीसरी बार तैल मर्दन किया। उस समय हड्डियों में रहनेवाले कीड़े भी बाहर निकल आये; क्योंकि बलवान पुरुष हृष्ट-पुष्ट हो तो वज्र के पींजरे में भी नहीं रहता। उन कीड़ों को भी रत्न-कम्बल पर चढ़ाकर, उन्होंने उन्हें भी गाय की लाशपर डाल दिया। सच है, नीच को नीच स्थान ही घटता है। पीछे उस वैद्य-शिरोमणि ने परम भक्ति से, जिस तरह देवता को विलेपन करते हैं उसी तरह, मुनि के गोशीर्ष चन्दन का लेप किया। इस तरह चिकित्सा करने से मुनि निरोग और नवीन कान्तिमान होगये और उजाली हुई सोने की मूर्त्ति की तरह शोभा पाने लगे। अन्त

में, भक्ति में दक्ष उन मित्रों ने मुनि महाराज से क्षमा माँगी। मुनि भी वहाँ से अन्यत्र विहार कर गये अर्थात् किसी दूसरी जगह को चले गये। क्योंकि ऐसे पुरुष एक जगह टिककर नहीं रहते। मुनिके आराम होकर चले जाने के बाद, उन बुद्धिमानों ने बाकी बचे हुए गोशीर्ष चन्दन और रत्नकम्बल को बेचकर सोना ख़रीद लिया। उन्होंने उस सोने और दूसरे सोनेसे मेरुके शिखर जैसा, अर्हत्-चैत्य बनाया। जिन प्रतिमा की पूजा और गुरु की उपासना में तत्पर होकर, कर्म की तरह, उन्होंने कुछ समय भी व्यतीत किया। एक दिन उन छहों मित्रों के हृदयों में वैराग्य उत्पन्न हुआ अर्थात् उन्हें इस संसार से विरक्ति होगई। तब उन्हों ने मुनि महाराज के पास जाकर जन्मवृक्ष के फल-स्वरूप, दीक्षा ली। एक राशि से दूसरी राशिपर जिस तरह नक्षत्र चक्कर लगाया करते हैं; उसी तरह वे भी नगर, गाँव और वन में नियत समय तक रहकर विहार करने लगे। उपवास, छट्ठ और अट्ठम प्रभृति की तप रूपी सान से उन्होंने अपने चरित्ररत्न को अत्यन्त निर्मल किया। वे आहार देनेवालों को किसी तरह की तकलीफ नहीं देतेथे। केवल प्राण धारण करने के कारणसे ही, मधुकरी वृत्ति* से, पारणे के दिन भिक्षा ग्रहण करते थे, अर्थात् वे मधुकर या भौंरे की सा आचरण करते थे। भौंरा जिस तरह फूलों

*मधुकर भौंरा, मधुकरी वृत्ति भौंरे की सी वृत्ति। भौंरा जिस फूलोंका पराग लेता है, पर उन्हे तकलीफ नहीं देता, उसी तरह मधुकिरी वृत्ति वाले साधु गृहस्थों से आहार लेते हैं, पर उन्हे कष्ट हो, ऐसा काम नहीं करते।

का पराग ग्रहण करता है, पर उन को कष्ट नही देता; उसी तरह वे भी गृहस्थो के घरसे आहार ग्रहण करते थे, पर उनको कष्ट हो ऐसा काम नहीं करते थे। सुभट या योद्धा जिस तरह प्रहार को सह सकते हैं, उसी तरह वे धैर्य्य को अवलम्बन कर, भूख, प्यास और धूप प्रभृति के परिषह या कष्ट को सहन करते थे। मोहराज सेनापतियों के जैसे चारों कषायों को उन्हों ने क्षमा प्रभृति अस्त्रों से जीत लिया था। पीछे उन्होंने द्रव्य और भाव से संलेखना करके, कर्मरूपी पर्वत को नाश करने में वज्रवत् अनशन व्रत ग्रहण किया। शेषमें; समाधि को भजनेवाले उन लोगोंने पञ्च परमेष्ठी का स्मरण करते हुए अपने अपने शरीर त्याग दिये। महात्मा लोग मोह-रहित ही होते हैं, अर्थात् महापुरुषो में मोह नहीं होता, संसार के उत्तम से उत्तम पदार्थ तो क्या चीज हैं उन्हें अपने दुर्लभ शरीर से भी मोह नहीं होता।

वे छहों महात्मा वहाँसे देहत्याग कर, अच्युत नाम के बारहवें देवलोक में, इन्द्रके सामानिक देव हुए। इस प्रकार के तपका साधारण फल नहीं होता। बाईस सागरोपम आयुष्य पूरी करके

वे वहाँ से च्यवे अर्थात् उनका उस लोक से दूसरे लोकके लिये पतन हुआ, क्योंकि मोक्ष के सिवा और किसी भी जगह में स्थिरता नहीं है, अर्थात् जबतक मोक्ष नहीं होती, तबतक प्राणी को नित्य शान्ति नहीं मिलती। वह एक स्थान में सदा नहीं रहता। एक लोक से दूसरे लोक में, दूसरे से तीसरे में,—इसी तरह घूमा करता है। एक शरीर छोड़ता है, और दूसरा शरीर धारण करता है। शरीर त्यागने और धारण करने का झगड़ा एकमात्र मोक्षसे ही मिटता है। मोक्ष हो जाने से प्राणी को फिर मरना और जन्म लेना नहीं पड़ता।

ग्यारहवाँ और बारहवाँ भव

वज्रसेन के पुत्र-जन्म।

वज्रनाभ को राजगद्दी।

वज्रसेन को वैराग्य।

जम्बू द्वीप के पूर्व, विदेह-स्थित पुष्कलावती विजय में, लवण-समुद्र के पास, पुण्डरीकिनी नाम की नगरी है। उस नगरी के राजा वज्रसेन की धारणी नाम की रानी की कोख से, उनमें से पाँचने, अनुक्रम से, पुत्ररूप में जन्म लिया। उसमें जीवानन्द वैद्य का जीव, चतुर्दश महास्वप्नों से सूचित वज्रनाभ नामक पहला पूत्र हुआ।

राजपुत्र का जीव वाहु नाम का दूसरा पुत्र हुआ। मन्त्री-पुत्र का जीव सुबाहु नाम का तीसरा पुत्र हुआ। श्रेष्ठी-पुत्र और सार्थेश पुत्रके जीव पीठ और महापीठ नाम के पुत्र हुए। केशव का जीव सुयशा नाम का अन्य राजपुत्र हुआ। वहाँ सुयशा वचपनसे ही वज्रनाभ का आश्रय करने लगा। कहा है पूर्व जन्म से सम्बद्ध हुआ स्नेह वन्धुत्वमें ही वाँधता है, अर्थात् जिन में पूर्व जन्म में प्रीति होती हैं, उनमें इस जन्म में भी प्रीति होती ही है--पूर्व जन्म की प्रीति इस जन्म में भी घनिष्ठता ही कराती है। मानो छः वर्षधर* पर्वतों ने पुरुष रूपमें जन्म लिया हो, इस तरह वे राजपुत्र और सुयशा अनुक्रम से वढ़ने लगे। वे महा पराक्रमी राजपुत्र वाहर के रास्तों में घोडे कुदाते थे, इस से अनेक रूपधारी रैवन्त के विलास को धारण करने लगे। कलाओं का अभ्यास कराने में उनके कलाचार्य साक्षीभूत ही हुए। क्योंकि महान पुरुषों या वड़े लोगों में गुण खुद-वखुद ही पैदा होजाते हैं; सिखाने को विशेष कष्ट उठाना नहीं पड़ता। शिला की तरह वड़े-वडे पर्वतों को वह अपने हाथों से तोलते थे। इससे उन की वल-क्रीड़ा किसी से पूरी न होती। इसी वीच में †लोकान्तिक देवताओं ने आ

* वर्ष=क्षेत्र धर=धारण करनेवाला, अतः वर्षधर=क्षेत्र को धारण करनेवाला। चुल, हिमवन्त, महा हिमवन्त, निषध, शिखरी, रूपी और नीलवन्त,—ये छे भरत हीमवन्तादि क्षेत्रों को जुदा करते हैं, इससे वर्षधर पर्वत कहलाते है।

† लोकान्तिक देवताओं का ऐसा सनातन आचार ही है। अर्थात् सदा से इनकी यही रीति है।

कर राजा वज्रसेन से विज्ञप्ति की—'स्वामिन्! धर्मतीर्थ प्रवर्त्ताओ,
इस के बाद वज्रसेन राजा ने वज्र-जैसे पराक्रमी वज्रनाभ को
गद्दीपर विठाया और मेघ जिस तरह जल से पृथ्वी को तृप्त
करते हैं, उसी तरह उसने सांवत्सरिक दान से पृथ्वी को तृप्त
कर दिया। देव, असुर और मनुष्यों के स्वामियों ने राजा वज्र
सेन का निर्गमोत्सव किया और राजा ने, चन्द्रमा के आकाश को
अलङ्कृत करने की तरह, उद्यान को अलङ्कृत किया, अर्थात्
उस के राज्य छोड़कर जाने का उत्सव देवराज, असुरराज और
नृपालों ने किया और राजा वज्रसेन ने, नगर के बाहर
बग़ीचे में डेरा डाला और वहाँ ही उन स्वयंबुद्ध भगवान् ने
दीक्षा ली। उसी समय उन को मनःपर्य्याय ज्ञान उत्पन्न हुआ।
पीछे वह आत्म-स्वभाव में लीन होनेवाले, समता रूप धन के
धनी, ममताहीन, निष्परिग्रही और नाना प्रकार के अभिग्रहों को
धारण करनेवाले प्रभु पृथ्वीपर विहार करने लगे अर्थात् भूमण्डल
में परिभ्रमण करने लगे। इधर वज्रनाभ ने अपने प्रत्येक भाई को
अलग-अलग देश दे दिये और लोकपालों से जिस तरह इन्द्र
सोहता है, उसी तरह वह भी रोज़ सेवा में उपस्थित रहनेवाले
चारों भाइयों से सोहने लगा। सूर्य के सारथी अरुण की तरह,
सुयशा उस का सारथी हुआ। महारथी पुरुषों को सारथी भी
अपने योग्य ही नियुक्त करना चाहिये।

वज्रनाभ चक्रवर्ती का वर्णन।

वज्रसेन भगवान का आगमन।

वज्रनाभ को वैराग्य।

अब वज्रसेन भगवान् को, आत्मा के ज्ञानादि गुणो को नष्ट करने वाले घाति कर्म* रूपी मल के नाश होने से, दर्पण के ऊपर का मैल नाश होने से जिसतरह दर्पण में उज्ज्वलता होती है, उसी तरह उज्ज्वल ज्ञान उत्पन्न हुआ।

उसी समय वज्रनाभ राजा की आयुधशाला अथवा अस्त्रागार में, सूर्यका भी तिरस्कार करनेवाले, प्रभाकर की प्रभा को भी नीचा दिखानेवाले, चक्रने प्रवेश किया। और तेरह रत्न भी उन को उसी समय मिल गये। जल के प्रमाण से जिस तरह पद्मिनी ऊँची होती है, उसी तरह सम्पत्ति भी पुण्य के प्रमाण से मिलती है। जल जितना ही ऊँचा होता है, कमलिनी भी उतनीही ऊँची होती है। पुण्य जितना ही अधिक होता है ; सम्पत्ति भी उतनी ही अधिक मिलती है। पुण्य जितना ही कम होता है; सम्पत्ति भी उतनी ही कम मिलती है। सुगन्ध से खीचे गये भौरों की तरह ; प्रवल पुण्यो से खीची हुई निधियाँ उस के घर की टहल करने लगीं ; अर्थात् पुण्यवल से नौ निधियाँ उसके घर मे रहने लगी।

---

* आत्मा के ज्ञानादि गुणो को घात करने या नष्ट करने वाले, ज्ञानावरणी। दर्शनावरणी, मोहनी अन्तराय,—ये चार कर्म धाति कर्म कहलाते है।

इसके बाद उसने सारी पुष्कलावती जीतली, तब सब राजाओंने उसके चक्रवर्त्तीपन का अभिषेक किया—उसे चक्रवर्ती माना और उस की वश्यता स्वीकार की—अपने तईं उसके अधीन माना। उस भोगों को भोगनेवाले चक्रवर्त्ती की धर्मबुद्धि दिनोंदिन इस तरह अधिकाधिक बढ़ने लगी, मानो वह उसकी बढ़ती हुई उम्रसे स्पर्द्धा करके बढ़ती हो, अर्थात् ज्यों ज्यों उसकी उम्र बढ़ती थी, त्यों त्यों धर्मबुद्धि उम्रसे पीछे रह जाना नहीं चाहती थी। जिस तरह ढेर जलसे बेल बढ़ती है; उसी तरह भव-वैराग्य-सम्पत्ति से उसकी धर्मबुद्धि पुष्ट होने लगी। इसी बीचमें, साक्षात् मोक्ष हो इस तरह परमानन्द करनेवाले भगवान् वज्रसेन घूमते-घूमते वहाँ आ पहुँचे और चैत्य वृक्षके नीचे बैठकर उन्होंने धर्मदेशना या धर्मोपदेश देना आरम्भ किया। चक्रवर्त्ती वज्रनाभने ज्योंही प्रभुके आने की ख़बर सुनी, त्योंही वह अपने बन्धुओं सहित—राजहंस की तरह—जगत्बन्धु जिनेश्वर के चरण-कमलों में, बड़ी प्रसन्नता से, जा पहुँचा। तीन प्रदक्षिणा देकर और और जगदीश को नमस्कार करके, छोटा भाई हो इस तरह इन्द्रके पीछे बैठ गया। श्रावकोंमें मुख्य श्रावक वह चक्रवर्त्ती—भव्य प्राणियों के मन-रूपी सीप मे बोध-रूपी मोती पैदा करनेवाली, स्वाति नक्षत्र की वर्षा के समान प्रभु की देशना सुनने लगा। जिस तरह गाना सुनकर हिरनका मन उत्सुक हो उठता है उसी तरह वह भगवान् की वाणी को सुनकर उत्सुक-मन हो उठा और इस भाँति विचार करने लगा.—"यह अपार संसार समुद्र की तरह दुस्तर है—इसका पार करना

कठिन है ; पर इसके पार लगाने वाले लोकनाथ मेरे पिताही हैं। यह अँधेरे की तरह पुरुषों को अत्यन्त अन्धा करनेवाले मोह को सब तरफसे भेदनेवाले जिनेश्वर हैं। चिरकाल से सचित कर्म-राशि असाध्य व्याधि-स्वरूपा है। उसकी चिकित्सा करनेवाले यह पिताही हैं। वहुत क्या कहूँ ? करुणारूपी अमृतके सागर-जैसे यह प्रभु दुःख क्लेशों को नाश करनेवाले और सुखोंके अद्वितीय उत्पन्न करनेवाले हैं, अर्थात् यह प्रभु करुणासागर हैं। इनके समान दुःखोंके नाश करने और सुखोंके पैदा करनेवाला और दूसरा कोई नहीं है। अहो ! ऐसे स्वामीके होनेपर भी, मोहान्धों में मुख्य मैंने अपने आत्मा को कितने समय तक वचित किया इस तरह विचार कर, चक्रवर्त्तीने धर्म-चक्रवर्त्ती प्रभुसे भक्ति पूर्वक गद्गद् होकर कहा—"हे नाथ ! घास जिस तरह खेतको ख़राब कर देती है; उसी तरह अर्थसाधन को प्रतिपादन करने वाले नीतिशास्त्रोंने मेरी मति वहुत समय तक भ्रष्ट कर दी। इसी तरह मुझ विषय-लोलुपने नाट्य कर्मसे इस आत्माको, नट की तरह, अनेक वार नचाया ; अर्थात् अनेक प्रकार के रूप धर धर कर, मैंने आत्मा को अनेक नाच नचवाये। यह मेरा साम्राज्य अर्थ और काम को निवन्धन करनेवाला है। इसमें जो धर्म-चिन्तन होता है, वह भी पापानुवंधक होता है। आप जैसे पिता का पुत्र होकर, यदि मैं संसार-समुद्र में भ्रमण करूँ, तो मुझमें और साधारण मनुष्य में क्या भिन्नता होगी ? इसलिये जिस तरह मैंने आपके दिये हुए साम्राज्य का पालन किया ; उसी तरह अब मैं

संयम-साम्राज्य का भी पालन करूँगा ; अतएव आप मुझे उसे दीजिये।"

वज्रनाभ का दीक्षा ग्रहण करना।

वज्रसेन को निर्वाणप्राप्ति।

इसके बाद, अपने वंशरूपी आकाशमें सूर्यके समान, चक्रवर्त्तीने अपने पुत्र को राज्य सौंपकर, भगवान् से व्रत ग्रहण किया। पिता और बड़े भाई द्वारा ग्रहण किये हुए व्रत को उसके बाहु प्रभृति भाइयोंने भी ग्रहण किया ; क्योंकि उनका कुलक्रम ऐसाही था—उनके कुल में ऐसाही होता आया था। सुयशा सारथी ने भी—धर्मके सारथी की तरह—अपने स्वामी के साथ ही भगवान् से दीक्षा ग्रहण की ; क्योंकि सेवक स्वामी की चालपर चलनेवाले ही होते हैं। वह वज्रनाभ मुनि थोड़े ही समय में शास्त्र-समुद्र के पारगामी होगये। इससे मानो प्रत्यक्ष एक अङ्गपणे को प्राप्त हुई जंगम द्वादशांगी हो, ऐसे मालूम होने लगे। बाहु वगैरः मुनि भी ग्यारह अङ्गों के पारगामी हुए। 'क्षयोपशमसे विचित्रता को प्राप्त हुई गुण-सम्पत्तियां भी विचित्र प्रकारकी ही होती हैं।' अर्थात् पूर्वके क्षयोपशम के प्रमाणसे ही गुण प्राप्त होते हैं। वे सब सन्तोष-रूपी धनके धनी थे, तो भी तीर्थङ्कर की चरण-सेवा और दुष्कर तपश्चर्या करने में असन्तुष्ट रहते थे। उन्हें संसारी पदार्थों की तृष्णा न थी, सबमें सन्तोष था, मगर तीर्थङ्कर की चरण-सेवा और कठिन तप से उन्हें सन्तोष न होता था। वे

इन को जितना करते थे, उतनेसे उन की तृप्ति न होती थी वे इन्हें और भी अधिक करना चाहते थे। वे मासोपवास आदिक तप करते थे, तोभी निरन्तर तीर्थङ्कर के वाणी रूपी अमृत के पान करने से उन्हें ग्लानि न होती थी। भगवान् वज्र-सेन तीर्थङ्कर, उत्तम शुक्ल ध्यान का आश्रय कर, ऐसे निर्वाण-पद को प्राप्त हुए, जिस का देवताओं ने महोत्सव किया।

वज्रनाभ मुनि की महिमा।

अनेक प्रकार की लब्धियां।

अब, धर्म के बन्धु हों जैसे वज्रनाभ मुनि, व्रत धारण करने-वाले मुनियों को साथ लेकर पृथ्वीपर विहार करने लगे अर्थात् पृथ्वी-पर्य्यटन करने लगे। जिस तरह अन्तरात्मा से पाँचों इन्द्रियों सनाथ होती हैं, उसी तरह वज्रनाभ स्वामी से बाहु प्रभृति चारों भाई और सारथी—ये पाँचों मुनि सनाथ होगये। चन्द्रमा की कान्ति से जिस तरह औषधियाँ प्रकट होती हैं; उसी तरह योगके प्रभाव से उन्हें खेलादि लब्धियाँ प्रकट हुईं, कोटि-वेध रससे जिस तरह बहुतसा ताम्बा सोना हो जाता है, उसी तरह उनके ज़रासे श्लेष्म की मालिश करने से कोढ़ी की काया सुवर्णवत् कान्तिमती हो जाती थी; अर्थात् उनकी नाक से निकले हुए रहँट की मालिश से कोढ़ी की काया सोने के समान होजाती थी। उन के कान, नाक और अङ्गों का मैल सब तरह के रोगियों के रोगों को नाश करनेवाला और कस्तूरी के समान

सुगन्धित था। अमृत-कुण्ड में स्नान करने से रोगी जिस तरह आरोग्य लाभ करते हैं; उसी तरह उनके शरीर के छूने मात्र से रोगी लोग निरोग होते थे। जिस तरह सूर्यका तेज अन्धकार का नाश करता है; उसी तरह बरसाती और नदियों का बहने वाला जल उनके सगसे सब रोगों को नाश करता था। गन्ध-हस्ती के मद की गन्धसे जिस तरह और हाथी भाग जाते हैं, उसी तरह उनके शरीर से लगकर आये हुए वायु से विष प्रभृति के दोष दूर भाग जाते थे। यदि, किसी तरह, कोई विष-मिला अन्नादिक पदार्थ उनके मुख या पात्र में आ जाता था, तो अमृतके समान विषहीन हो जाता था। जहर उतारने के मन्त्राक्षरों की तरह, उनके वचनों को याद करने से विष-व्याधि से पीड़ित मनुष्यों की पीड़ा नाश हो जाती थी। जिस तरह सीपी का जल मोती हो जाता है; उसी तरह उनके नाखुन, बाल, दाँतों और उनके शरीर से पैदा हुए मैल प्रभृति पदार्थ औषधि रूप में परिणत हो जाते थे।

फिर सूईके नाके में भी डोरे की तरह घुस जाने की सामर्थ्य जिससे हो जाती है, वह अणुत्व शक्ति उन को प्राप्त होगई, अर्थात् इच्छा करने मात्र से वह अपना छोटे-से-छोटा रूप बना सकते थे। उन को अपने शरीरको बड़ा करने की वह महत्वशक्ति प्राप्त होगई, जिससे वह अपने शरीर को इतना बड़ा कर सकते थे, कि जिस से मेरु पर्वत उन के घुटनेतक आवे। उन्हें वह लघुत्व शक्ति प्राप्त होगई, जिस से वह अपने शरीर को हवासे

भी हलका कर सकते थे। उन्हें वह गुरुत्व शक्ति प्राप्त होगई, जिससे वह अपने शरीर को, इन्द्रादि देवताओं के लिए भी असहनीय, वज्रसे भी भारी वना सक्ते थे। उन्हें ऐसी प्राप्ति शक्ति प्राप्त होगई, जिस से वह, पृथ्वीपर रहनेपर भी, वृक्षके पत्तों के समान मेरुके अग्रभाग और नक्षत्र आदिकों को छू सकते थे, अर्थात् पृथ्वीपर खड़े हुए वह आकाश के तारों को हाथों से छू सकते थे। उनको ऐसी प्राकाम्य शक्ति प्राप्त होगई थी, जिससे वह जलमें थलकी तरह चल सकते थे और जलकी तरह पृथ्वीमें उन्मज्जन-निमज्जन कर सकते थे। उन को ऐसी ईशत्व शक्ति प्राप्त होगई थी, जिससे वह चक्रवर्त्ती और इन्द्र की ऋद्धि को बढ़ा सकते थे। इनको ऐसी अपूर्व वशित्व शक्ति प्राप्त हो गई थी, जिस से वह स्वतंत्र और क्रूर जन्तुओ को भी वश में कर सकते थे। उन्हें ऐसी अप्रतिघाती शक्ति प्राप्त होगई थी, जिससे वह छेद की तरह पर्वत के वीच से निःशंक गमन कर सकते थे। उन को ऐसी अप्रतिहत अन्तर्धान होने की सामर्थ्य होगई थी कि वह हवा की तरह सब जगह अदृश्य रूप धारण कर सकते थे और ऐसी काम रूपत्व शक्ति प्राप्त होगई थी, जिससे वह एक ही समय में अनेक प्रकार के रूपों से लोक को पूर्ण कर सकते थे।

एक अर्थ रूप वीज से अनेक अर्थ रूप वीज जान सके ऐसी बीज बुद्धि, कोठी में रखे हुए धान्य की तरह, पहले सुने हुए अर्थ को याद किये विना यथास्थित रहे ऐसी कोष्ठ बुद्धि और आदि

अन्त या मध्य का एक पद सुननेसे तत्काल सारे ग्रन्थ का बोध होजाय, ऐसी पदानुसारिणी लब्धि उनको प्राप्त होगई थी। एक वस्तु का उद्धार करके, 'अन्तमुहूर्त्त मे समस्त श्रुत समुद्र में अवगाहन करने की सामर्थ्य से वे मनोबली लब्धि वाले हुए थे। एक मुहूर्त्त में मूलाक्षर गिनने की लीला से सब शास्त्र को घोप डालते थे, इसलिये वे वाग्बली भी होगये थे। चिरकालतक समाधि या कायोत्सर्ग में स्थिर रहते थे, किन्तु उन्हें श्रम—थकान और ग्लानि नहीं होती थी, इससे वे कायबली भी हुए थे। उनके पात्र के कुत्सित अन्नमें भी अमृत, क्षीर, मधु और घीका रस आनेसे तथा दु:ख से पीडित मनुष्यों को उन की वाणी अमृत, क्षीर, मधु और घृत के समान शान्तिदायिनी होती थी, इससे वे अमृत क्षीर मध्वाज्याश्रवि लब्धिवाले हुए थे। उन के पात्र में रखा हुआ थोड़ा सा अन्न भी दान करने से अक्षय होजाता था, इसलिए उन को अक्षीण महानसी लब्धि प्राप्त हो गयी थी। तीर्थङ्कर की सभा की तरह थोड़ी सी जगह में भी वे असख्य प्राणियों को बिठा सकते थे। इसलिये वे अक्षीण महालय लब्धिवाले थे और एक इन्द्रिय से दूसरी इन्द्रिय का विषय भी प्राप्त कर सकते थे, इसलिये वे संभिन्न श्रोत लब्धिवाले थे। उन को जंघाचरण लब्धि प्राप्त हो गई थी जिससे वे एक कदम में रुचकद्वीप पहुँच सकते थे और वहाँ से वापस लौटते समय पहले कदम में नन्दीश्वर द्वीप में आते और दूसरे क़दम में जहाँ से चले थे वहाँ आ

सकते थे, यानी वे अपने तीन डगों में इतना लम्बा सफर तय कर सकते थे। यदि वे ऊँचे जाना चाहते, तो एक डग में मेरु पर्वत-स्थित पांडुक उद्यान में जा सकते थे और वहाँ से वापस लौटते समय एक डग में नन्दन वन में और दूसरे डग में उत्पात भूमि की तरफ आ सकते थे। विद्याचारण लब्धि से वे एक फलाँग में मानुषोत्तर पर्वत पर और दूसरी फलाँग में नन्दीश्वर द्वीप में जा सकते थे और वापस लौटते समय एक फलाँग में पूर्व उत्पात भूमि में आ सकते थे। ऊर्ध्वगति में, जघाचरण से विपरीत गमनागमन करने में शक्तिमान थे। उनको आसीविष लब्धि भी प्राप्त हो गई थी, इसके सिवा निग्रह अनुग्रह कर सकने वाली और भी बहुत सी लब्धियाँ उन्हें मिल गई थीं; परन्तु इन लब्धियों से वे काम न लेते थे, उन्हें उपयोग में न लाते थे, क्योंकि मुमुक्षु पुरुषों को मिली हुई चीज़ मे भी आकांक्षा नहीं होती।

बीस स्थानकों का स्वरूप।

अब वज्रनाभ स्वामी ने, बीस स्थानकों की आराधना से, तीर्थङ्कर नाम गोत्रकर्म दृढ़ता से उपार्जन किया। उन बीस स्थानकों में पहला स्थानक— अर्हन्त और अरहन्तों की प्रतिमा-पूजा से, उनके अवर्णवाद का निषेध करने से और अद्भुत अर्थ वाली उनकी स्तुति करने से आराधना होती है (अरिहन्त पद)। सिद्धि-स्थान में रहने वाले सिद्धों की भक्ति के लिए जागरण उत्सव करने से तथा यथार्थ रूप से सिद्धत्व का कीर्त्तन करने से दूसरे

स्थान की आराधना होती है (सिद्ध पद)। बाल, ग्लान और नव दीक्षित शिष्य प्रभृति यतियों पर अनुग्रह करने से और प्रवचन या चतुर्विध संघ का वात्सल्य करने से तीसरे स्थानक की आराधना होती है (प्रवचन पद)। और बहुमान-पूर्वक आहार, औषध और कपड़े वगैरः के दान से गुरु का वात्सल्य करना चौथा स्थानक (आचार्य पद) है। बीस वर्ष की दीक्षा पर्याय वाले पर्याय स्थविर, साठ वर्ष की उम्र वाले (वय स्थविर), और समवायांग के धारण करने वाले (श्रुत स्थविर) की भक्ति करना,—पाचवाँ स्थानक (स्थविर पद) है। अर्थ की अपेक्षा में, अपने से बहुश्रुत धारण करने वालों को अन्न-वस्त्रादि के दान वगैरः से वात्सल्य करना—छठा स्थानक (उपाध्याय पद) है। उत्कृष्ट तप करने वाले मुनियों की भक्ति और विश्रामणा से वात्सल्य करना,—सातवाँ स्थानक (साधु पद) है। प्रश्न और वाचना वगैर से निरन्तर द्वादशांगी रूप श्रुत का सूत्र, अर्थ और उन दोनों से ज्ञानोपयोग करना,—आठवाँ स्थानक (ज्ञानपद) है। शंका प्रभृति दोष से रहित, स्थैर्य्य प्रभृति गुणों से भूपित और शमादि लक्षण वाला सम्यग्दर्शन—नवाँ स्थानक (दर्शनपद) है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और उपचार—इन चार प्रकार के कर्मो को दूर करने वाला विनय,—दसवाँ स्थानक (विनय पद) है। इच्छा मिथ्या करणादिक दशविध समाचारी का योग में और आवश्यक में अतिचार रहित यत्न करना,—ग्यारहवाँ स्थानक

(चारित्र पद) है। अहिंसा आदि मूल गुणों में और समित्यादिक उत्तर गुणों में अतिचार-रहित प्रवृत्ति करना,—बारहवाँ स्थानक (ब्रह्मचर्य्य पद) है। क्षण-क्षण और लव-लव मे प्रमाद का परिहार करके, शुभ ध्यान में प्रवर्त्तना,—तेरहवाँ स्थानक (समाधिपद) है। मन और शरीर को पीड़ा न हो, इस तरह यथाशक्ति तप करना,—चौदहवाँ स्थानक (तप पद) है। मन, वचन और काया की शुद्धि-पूर्व्वक तपस्वियों को अन्नादिक का यथाशक्ति दान देना,—पन्द्रहवाँ स्थानक (दानपद) है। आचार्य्य आदिक यानी जिनेश्वर, सूरि, वाचक, मुनि, बाल मुनि, स्थविर-मुनि, ग्लान-मुनि, तपस्वी-मुनि, चैत्य और श्रमणसंघ—इन दशों का अन्न, जल और आसन प्रभृति से वैयावृत्य करना,—सोलहवाँ स्थानक (वैयावच्च पद) है। चतुर्विध संघ के सब विघ्न दूर करने से मन में समाधि उत्पन्न करना,—सत्रहवाँ स्थानक (संयम पद) है। अपूर्व्व सूत्र, अर्थ और उन दोनों को प्रयत्न से ग्रहण करना,—अठारहवाँ स्थानक (अभिनव ज्ञानपद) है। श्रद्धा से, उद्भासन से और अवर्णवाद का नाश करने से श्रुत ज्ञान की भक्ति करना,—उन्नीसवाँ स्थानक (श्रुत पद) है। विद्या, निमित्त, कविता, वाद और धर्म कथा प्रभृति से शासन की प्रभावना करना,—बीसवाँ स्थानक (तीर्थ पद) है।

तीर्थङ्कर नाम कर्म का बन्धन।

बारहवें भव की समाप्ति

इन बीस स्थानकों में से एक-एक पद का आराधन करना भी तीर्थङ्कर नाम-कर्म के बन्ध का कारण है। परन्तु वज्रनाभ भगवान् ने तो इन सब पदों का आराधन करके तीर्थङ्कर नाम-कर्म का बन्ध किया। बाहुमुनि ने साधुओं को वैयावच्च करने से चक्रवर्त्ती के भोग-फल को देनेवाला कर्म उपार्जन किया। तपस्वी महर्षियों की विश्रामणा करने वाले सुबाहु मुनि ने लोकोत्तर बाहुबल उपार्जन किया। तब वज्रनाभ मुनि ने कहा—'अहो! साधुओं की वैयावच्च और विश्रामणा करने वाले ये बाहु और सुबाहु मुनि धन्य हैं।' उनकी ऐसी प्रशंसा से पीठ और महापीठ मुनि विचार करने लगे—'जो उपकार करने वाले हैं, उन्हीं की यहाँ प्रशंसा होती है, हम दोनों आगम शास्त्र के अध्ययन और ध्यान में लगे रहने से कुछ भी उपकार न कर सके, इसलिये अपनी प्रशंसा कौन करे? अथवा सब लोग अपने काम करने वाले को ही ग्रहण करते हैं।' इस तरह माया मिथ्यात्व से युक्त ईर्षा करने से बाँधे हुए दुष्कृत्य को आलोचन न करने से, उन्होंने स्त्री नाम कर्म—स्त्रीपने की प्राप्ति रूप कर्म उपार्जन किया। उन छहों महर्षियों ने अतिचार रहित और खड्ग की धारा के

समान प्रव्रज्या को चौदह लाख पूर्व तक पालन किया। पीछे वे छहों धीरमुनि दोनों प्रकार की संलेखना-पूर्वक पादोपगमन अनशन अंगीकार करके, सर्व्वार्थ सिद्धि नाम के पाँचवें अनुत्तर विमान में, तेतीस सागरोपम आयुवाले देवता हुए।

दूसरा सर्ग

सागरचन्द्र का वृत्तान्त ।

सागरका राजभुवन में सत्कार ।

इस जम्बूद्वीप में, पश्चिम महा विदेह के अन्दर, शत्रुओ से अपराजित, अपराजिता नामकी नगरी थी। उस नगरी में, अपने बल-पराक्रम से जगत् को जीतनेवाला और लक्ष्मी में ईशानेन्द्र के समान ईशानचन्द्र नामक राजा था। वहाँ एक बहुत बडा धनी चन्दनदास नामक सेठ रहता था। वह सेठ धर्मात्माओं में अग्रणी और संसार को आनन्दित करने में चन्दन के समान था। उसके जगत् के नेत्रों को सुखी करने वाला सागरचन्द्र नामका पुत्र था। जिस तरह चन्द्रमा समुद्र को आह्लादित और आनन्दित करता है, उसी तरह वह अपने पिता को आनन्दित और आह्लादित करता था। स्वभाव से ही सरल, धार्मिक और विवेकी सागरचन्द्र सारे शहर का

एक मुखमंडन हो रहा था। एक समय जबकि, सामन्त राजा लोग ईशानचन्द्र राजा के दर्शन और चाकरी के लिये आकर उस के इर्द-गिर्द बैठे हुए थे, तब वह राजभवन में गया। राजा ने भी उस के पिता की तरह उसका आसन और पान इलायची प्रभृति से खूब आदर-सम्मान किया और उसे स्नेह-दृष्टि से देखा।

वसन्तागमन।

उस समय एक मङ्गल-पाठक राजद्वार में आकर, शंखध्वनि-का पराजित करनेवाली वाणी से इस तरह कहने लगा—'हे राजन्! आज आप के बाग़ में उद्यान-पालिका या मालिन की तरह अनेक प्रकार के फूलों को सजानेवाली वसन्त-लक्ष्मी शोभित हो रही है। इन्द्र जिस तरह नन्दन वन को सुशोभित करता है, उसी तरह आप भी खिले हुए फूलों की सुगन्ध से दिशाओं के मुख को सुगन्धित करनेवाले उस बग़ीचे को सुशोभित कीजिये।' मङ्गल-पाठक की उपरोक्त बात सुनकर, राजा ने द्वारापाल को हुक्म दिया—"अपने शहर में ऐसी घोषणा करा दो कि, कल सवेरे सब लोग राज-बाग़ में एकत्र हों।" इसके बाद राजाने स्वयं सागरचन्द्र को आज्ञा दी—'आप भी आइयेगा।' स्वामी की प्रसन्नता के यही लक्षण हैं। पीछे राजा से छुट्टी पाकर साहुकार का लड़का बड़ी खुशी के साथ अपने घर आया। वहाँ आकर उसने अशोकदत्त नाम के अपने मित्र से राजाज्ञा-सम्बन्धी सारी बात कही।

सागरचन्द्र "यह क्या है!" कहता हुआ संभ्रमके साथ वहाँ दौड़ गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि, जिस तरह व्याघ्र हिरणीको पकड़ लेता है, उसी तरह वन्दीवानोंने पूर्णभद्र सेठकी प्रियदर्शना नामकी कन्या पकड़ रखी है। जिस तरह साँपकी गर्दन तोड़कर मणिको लेलेते हैं, उसी तरह उसने वन्दीवानके हाथसे छूरि छीन ली। (पृष्ठ १२९)

सागर और अशोक बाग़ में।

सागरचन्द्र की बहादुरी।

प्रियदर्शना की रक्षा।

दूसरे दिन सवेरे ही राजा अपने परिवार-समेत बाग़ में गया। वहाँ नगर के लोग भी आये थे, क्योंकि 'प्रजा राजा का अनुसरण करनेवाली होती है।' मलय पवन के साथ जिस तरह वसन्त ऋतु आती है; उसी तरह सागरचन्द्र भी अपने मित्र अशोकदत्त के साथ बाग़ में पहुँचा। कामदेव के शसन में रहने वाले-कामी पुरुष—फूल तोड़-तोड़कर, नाच-गान वगैर. में लग गये। स्थान-स्थान पर इकट्ठे होकर, क्रीड़ा करते हुए नगर-निवासी, निवास किये हुए कामदेव रूपी राजा के पड़ाव की तुलना करने लगे। क़दम-क़दम पर गाने-बजाने की ध्वनि इस तरह उठने लगी; गोया दूसरी इन्द्रियों के विषयों को जीतने के लिये उठी हों। इतने में, पास के किसी वृक्ष की गुफा में से "रक्षा करो, रक्षा करो" की आवाज़ किसी स्त्री के कंठ से अकस्मात् निकली। उस आवाज़ के कान में पड़ते ही, उस से आकर्षित हुए के समान सागर चन्द्र "यह क्या है!" कहता हुआ सम्भ्रम के साथ वहाँ दौड़ा गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि, जिस तरह व्याघ्र हिरनी को पकड़ लेता है; उसी तरह बन्दीवानों ने पूर्णभद्र सेठ की प्रियदर्शना नामकी कन्या पकड़ रखी है। जिस तरह साँप

की गर्दन तोड़कर मणि को ले लेते हैं, उसी तरह उसने एक बन्दीवान के हाथ से छुरी छीन ली। उसका ऐसा पराक्रम देखकर, सब बन्दीवान वहाँ से नौ दो ग्यारह हुए, क्योंकि 'जलती हुई आग को देखकर व्याघ्र भी भाग जाते हैं।' इस तरह कठियारे लोगों से आम्रलता छुड़ाने की तरह, सागरचन्द्र ने दुष्टों से प्रियदर्शना छुड़ाई। उस समय प्रियदर्शना विचार करने लगी—"परोपकार करने के व्यसनी पुरुषों में मुख्य यह कौन हैं? अहो! मेरे सौभाग्य की सम्पत्ति से खिँचा हुआ यह पुरुष यहाँ आगया, यह बहुत अच्छा हुआ! कामदेवके रूप को तिरस्कार करनेवाला यह पुरुष मेरा पति हो।" इस तरह के विचार करती हुई प्रियदर्शना अपने घर को चली गई। सागरचन्द्र भी प्रियदर्शना को अपने हृदय में बिठाकर, अपने मित्र अशोकदत्तके साथ अपने घर गया।

सागर के पिताका पुत्रको उपदेश देना।

होते-होते यह बात उसके पिता चन्दनदासके कानों तक भी पहुँच गई। ऐसी बात किस तरह छिप सकती है? चन्दनदासने यह हाल जानकर मन-ही-मन विचार किया—'लड़के का दिल प्रियदर्शना से लग गया है, उसे उससे मुहब्बत हो गई है। यह उचित ही है, क्योंकि राजहंस के साथ कमलिनी ही शोभा देती है। परन्तु सागरचन्द्र ने जो उद्भटपना किया वह ठीक नहीं। क्योंकि पराक्रमी होनेपर भी, वणिक लोगों को अपना पराक्रम प्रकाशित न करना चाहिये। फिर; सागरका स्वभाव सरल है।

उसकी मायावी और धूर्त्त अशोकदत्त से मित्रता हुई है। केले के वृक्ष को जिस तरह वेरके झाड़ की संगत हितकारी नही होती, उसी तरह सागरके साथ उसकी मैत्री हितकर नहीं।' इस तरह बहुत देरतक विचार करके, उसने सागरचन्द्र को अपने पास बुलाया और जिस तरह उत्तम हाथी को उसका महावत शिक्षा देना आरंभ करता है, उसी तरह मीठे वचनों से उसे शिक्षा देनी आरंभ की :—

"हे वत्से सागरचन्द्र ! सारे शास्त्रों का अभ्यास करने से तू व्यवहारकी सारी बातें जानता है, तोभी मैं तुझसे कुछ कहता हूँ। अपन वैश्य लोग कला-कौशल से जीविका करनेवाले हैं। अपनके अनुद्भट और मनोहर भेषमें रहनेसे अपनी निन्दा नहीं हो सकती। इसलिये तुझे यौवनावस्था—जवानीमें भी अपने बल-पराक्रमको गुप्त रखना चाहिये। इस संसारमें, वणिक लोग, सामान्य अर्थमें भी, शङ्कायुक्त वृत्तिवाले कहलाते हैं। जिस तरह स्त्रियोंका शरीर ढका रहनेसे ही अच्छा लगता है; उसी तरह अपन लोगोंकी सम्पत्ति, विषय-क्रीड़ा और दान सदा गुप्त रहनेसे ही अच्छे मालूम होते हैं; अर्थात् स्त्रियोंके शरीर, वैश्योंकी धन-सम्पत्ति, विषय-क्रीडा और दानकी शोभा गुप्त रहनेमें ही है। जिस तरह ऊँटके पाँवमें बँधा हुआ सुवर्णका तोड़ा अच्छा नहीं लगता, उसी तरह अपनी वैश्य जातिको अनुचित कर्म शोभा नहीं देते। अतः प्रियपुत्र ! अपनी कुल-परम्पराके अनुसार उचित व्यवहार-परायण हो कर वही करो, जो अपने कुलमें होता आया है—

कुल परम्पराके विपरीत मत चलो। सम्पत्तिकी तरह अपने गुणों को भी गुप्त और पोशीदा रखो। जो स्वभावसे कपटी और दुर्जन हैं, उनका संसर्ग त्याग दो। कपटहृदय वाले दुष्टोंकी संगति मत करो, क्योंकि दुष्टोंका संसर्ग हड़किये कुत्तेके विषकी तरह काल योगसे विकारको प्राप्त होता है। बच्चे! कोढ़ जिस तरह फैलनेसे शरीरको दूषित कर देता है; उसी तरह तेरा मित्र अशोकदत्त जियादा हेलमेल और परिचयसे तुझे दूषित कर देगा—तेरे चरित्रको कलुषित कर देगा। यह मायावी गणिका—वेश्याकी तरह, मनमें और, वचनमें और एवं क्रियामें और ही है। यह कहता कुछ है, करता कुछ है और इसके मनमें कुछ है। यह मन वचन और कर्ममें यकसाँ नहीं है।

सागरचन्द्रका जवाब।

सेठ चन्दनदास इस प्रकार आदर पूर्व्वक उपदेश देकर चुप हो गया, तब सागरचन्द्र मनमें इस तरह विचार करने लगा:—'पिताजी जो मुझे इस तरहका उपदेश दे रहे हैं, इससे मालूम होता है कि, उनको प्रियदर्शना-सम्बन्धी वृत्तान्त ज्ञात हो गया है। मेरा मित्र अशोकदत्त पिताजीको सङ्गति करने योग्य नहीं जंचता। यह उसे मेरे सङ्ग रहनेके लायक़ नहीं समझते। इन्हें उसकी मुहब्बत से मेरे बिगड़ जानेका भय है। मनुष्यका भाग्य मन्द होनेसे ही, ऐसे सीख देने वाले गुरुजन नहीं होते। सौभाग्य वालोंको ही ऐसी सत्‌शिक्षा देनेवाले गुरुजन मिलते हैं। भलेही उनकी मरज़ी-

माफ़िक़ कोई क्यों न हो ?' मन-ही-मन क्षण भर ऐसे विचार करके, सागरचन्द्र विनययुक्त अतीव नम्र वाणीसे बोला:—"पिताजी! आप जो आदेश करें, जो हुक्म दें, मुझे वही करना चाहिये, क्योंकि मैं आपका पुत्र हूँ। जिसे काम के करनेमें गुरुजनोंकी आज्ञा का उल्लङ्घन हो, उस कामके करनेसे अलग रहना भला, लेकिन अनेक बार, दैवयोगसे, अकस्मात् ऐसे काम आ पड़ते हैं, जिनमें विचार करनेके लिये, थोड़ेसे समयकी भी गुञ्जाइश नहीं होती, अर्थात् विचार करनेके लिऐ समय मिलना कठिन हो जाता है। जिस तरह किसी-किसी मूर्खके पांव पवित्र करनेमें पर्व-वेला निकल जाती है; उसी तरह कितने ही कामोंका समय विचारमें पड़नेसे निकल जाता है। मनुष्य विचारोंमें लगता है और समय निकल जाने से काम बिगड़ जाता है—भयङ्कर हानि हो जाती है। ऐसे प्राण-सङ्कट-काल में भी, प्राणोंके संशयका समय आनेपर भी, जान-जोखिमका मौक़ा आ जानेपर भी, पिताजी! अबसे मैं ऐसा काम करूँगा, जिससे आपको शर्मिन्दा होना न पड़े—आपको लज्जासे सिर नीचा न करना पड़े। आपने अशोकदत्तके सम्बन्धमें जो बातें कही हैं, उनके सम्बन्धमें मेरी यह प्रार्थना है कि, न तो मैं उसके दोषोंसे दूषित ही हूँ और न उसके गुणोंसे भूषित ही हूँ। मैं उसके गुण-दोषोंसे सर्वथा अलग हूँ। रात-दिन साथ रहने, बचपन से एक संग खेलने, बारम्बार मिलने, सजातीय या समान जातीय हो एक विद्या पढ़ने, समान शील और उम्रमें बराबर होने एवं परोक्षमें या नामौजूदगी में उपकार करने एवं सुख-दुःखमें भाग लेने प्रभृति कारणोंसे उसके साथ मेरी मैत्री

होगई है। उसमें मुझे जराभी कपट नही दीखता-उसके व्यवहार में मुझे छल-कपटकी गन्धभी नहीं आती। मालूम होता है, मेरे मित्रके सम्बन्धमें आपको किसीने झूठी ख़बर दी है—ग़लत और मिथ्या बात कही है। क्योंकि दुष्टलोग सबको दुःख देनेवाले ही होते हैं। दूर्जनों का काम शिष्टों को दुःख और क्लेश पहुँचाना ही है। उन्हें पराई हानि में ही लाभ जान पड़ता है। उन्हें दूसरों को दुखी देखने से प्रसन्नता होती है। वे दूसरों के सुख से सुखी नहीं होते। कदाचित् वह ऐसा ही हो—मायावी और धूर्त ही हो; तोभी वह मेरा क्या कर सकता है? मेरी कौनसी हानि कर सकता है? क्योंकि एक जगह रहने पर भी काँच काँच ही रहेगा और मणि मणि ही रहेगी—काँच मणि न हो जायगा और मणि काँच न हो जायगी।"

सागरचन्द्र का विवाह।

पति-पत्नी का पारस्परिक व्यवहार।

इस तरह कह कर सागर चन्द्र चुप हो गया, तब सेठ ने कहा—"पुत्र! यद्यपि तू बुद्धिमान है, तथापि मुझे कहना ही चाहिये; क्योंकि पराये अन्तःकरण को जानना कठिन है—पराये दिलमें क्या है, यह जानना आसान नहीं।" इसके बाद पुत्रके भाव को समझने वाले सेठ ने शीलादिक गुणों से पूर्ण प्रियदर्शना के लिये पूर्णभद्र सेठ से मँगनी की, अर्थात् अपने पुत्र के लिए कन्या देनेकी प्रार्थना की। तब 'आपके पुत्र ने उपकार द्वारा मेरी पुत्री पहले

ही ख़रीद ली है' ऐसा कह कर पूर्णभद्र सेठ ने सागरचन्द्र के पिता की बात स्वीकार करली ; अर्थात् अपनी कन्या देना मजूर कर लिया। फिर, शुभ दिन और शुभ लग्न में उनके माँ बापों ने सागर-चन्द्र के साथ प्रियदर्शना का विवाह कर दिया। मनचाहा बाजा बजने से जिस तरह ख़ुशी होती है, उसी तरह मनवाछित विवाह होने से वर बधू—दूल्हा दुलहिन को बड़ी ख़ुशी हुई। प्रसन्नता क्यों न हो, वर को मन-चाही बहू मिली और बहू को मन चाहा वर मिला। दोनों के समान अन्तःकरण होने से—एक से दिल होने से गोया एक आत्मा हो, इस तरह उन दोनों की मुहब्बत सारस पक्षी की तरह बढ़ने लगी। चन्द्र से जिस तरह चन्द्रिका शोभती है ; उसी तरह निर्मल हृदय और सौम्य दर्शन वाली प्रियदर्शना सागरचन्द्रसे शोभने लगी। चिरकालसे घटना घटाने वाले दैव के योगसे, उन शीलवान्, रूपवान् और सरलहृदय स्त्री-पुरुषोंका उचित योग हुआ—अच्छा मेल मिला। आपसमें एक दूसरेका विश्वास होनेसे, उन दोनो में कभी अविश्वास तो हुआही नही, क्योंकि, सरलाशय व्यक्ति कदापि विपरीत शंका नही करते, अर्थात असरल हृदय और छली-कपटी स्त्री-पुरुषोंके दिलोंमें ही एक दूसरे के ख़िलाफ़ ख़याल पैदा होते हैं। सीधे-सादे सरल चित्त वालोंके दिलोंमें न अविश्वास उत्पन्न होता है और न विपरीत शंका ही उठती है।

अशोकदत्तकी दुष्टता।

अशोक और प्रियदर्शनाका कथोपकथन।

एक दिन सागरचन्द्र किसी कामसे बाहर गया हुआ था।

ऐसे ही समयमें अशोकदत्त उसके घर आया, और उसकी पत्नी प्रियदर्शनासे कहने लगा—'सागरचन्द्र हमेशा धनदत्त सेठकी स्त्रीके साथ एकान्तमें मिलता-जुलता है, उसका क्या मतलव है? स्वभावसे ही सरलहृदया प्रियदर्शना ने कहा—"उसका मतलव आपके मित्र जाने अथवा सर्वदा उनके दूसरे हृदय आप जानें। व्यवसायी और बड़े लोगोंके एकान्त सूचित कामोंको कौन जान सकता है? और जो जाने वह घरमें क्यों कहे?" अशोकदत्त ने कहा—"तुम्हारे पतिका उसके साथ एकान्तमें मिलने-जुलनेका जो मतलव है, उसे मैं जानताहूं, पर कह कैसे सकता हूं?"

प्रियदर्शना ने कहा—' उसका क्या मतलव हैं? वे उससे एकान्तमें क्यों मिलते हैं?'

अशोकदत्तने कहा—'हे सुन्दर भौहों वाली सुन्दरी! जो प्रयोजन मेरा तुम्हारे साथ है, वही उनका उसके साथ है।'

अशोकके ऐसा कहने पर भी उसके भावको न समझकर सरलाशया प्रियदर्शनाने कहा—'तुम्हारा मेरे साथ क्या प्रयोजन है?'

अशोकने कहा—'हे सुभ्रु! तेरे पति के सिवा, तेरे साथ क्या किसी दूसरे रसीले सचेतन पुरुषका प्रयोजन नही?'

प्रियदर्शनाकी फटकार।

कानमें सूई-जैसा, उसकी दुष्ट इच्छाको सूचित करने वाला अशोकदत्तका वचन सुनकर प्रियदर्शना सकोपा हो गई—क्रोधसे काँप उठी और नीचा मुँह करके आक्षेप के साथ वोली—'रे अम-

अरे दुष्ट! मेरे महात्मा पतिकी तू और ही तरह अपने जैसी सम्भावना करता है, तो मित्रके मिषसे तुझ शत्रु जैसे को धिक्कार है! रे पापी! चाण्डाल! तू यहाँ से चला जा, खडा न रह, तेरे देखनेसे भी पाप लगता है।
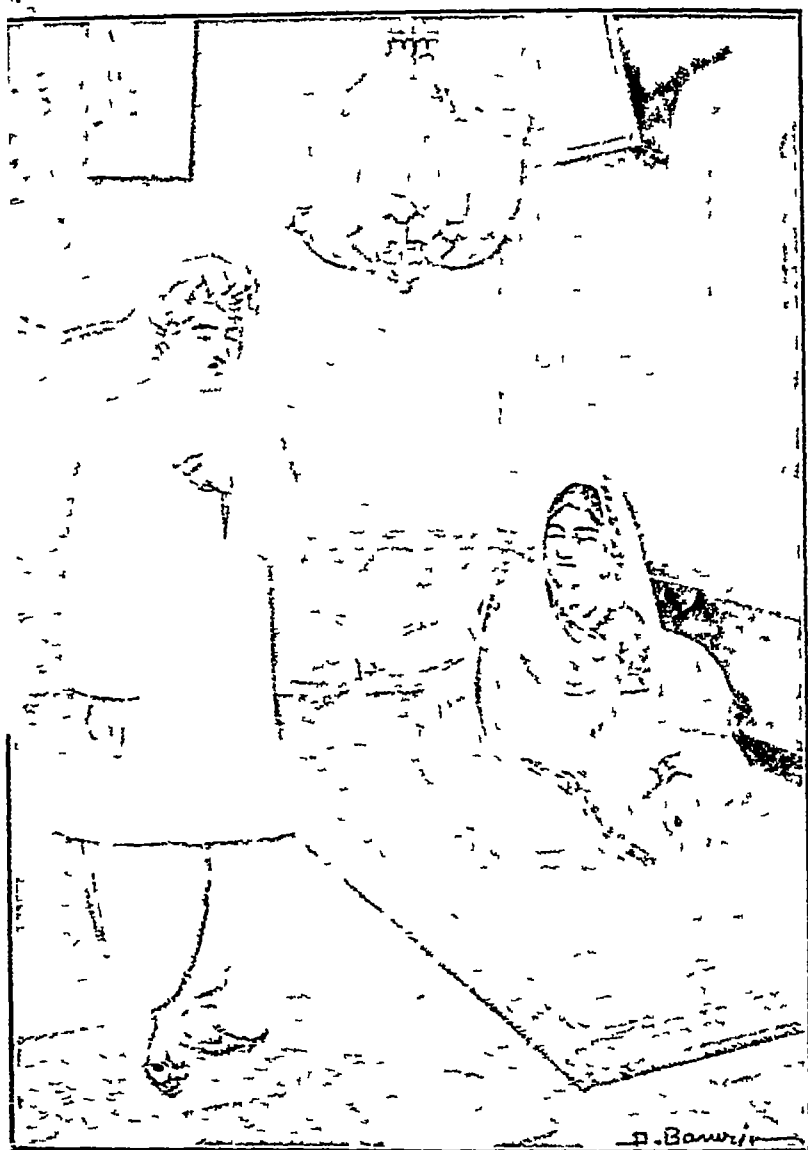
(पृष्ठ १३७)

र्याद ! रे पुरुषाधम ! रे कुलाङ्गार नीच ! तैंने ऐसा विचार कैसे किया और किया तो मुझसे कहा कैसे ? मूर्खके ऐसे साहस की धिक्कार है ! अरे दुष्ट ! मेरे महात्मा पतिकी तू औरही तरह अपने-जैसी सम्भावना करता है, तो मित्रके मिषसे तुझ शत्रु-जैसे को धिक्कार है ! रे पापी ! चाण्डाल ! तू यहाँसे चला जा, खड़ा न रह, तेरे देखने से भी पाप लगता है।'

अशोक और सागर का मिलन।

अशोक की घोर नीचता।

कपटपूर्ण बातें।

प्रियदर्शनासे इस तरह अपमानित होकर, अशोकदत्त चोर की तरह वहाँसे लम्बा हुआ। गो-हत्या करने वालेकी तरह, पाप रूपी अन्धकारसे मलीन मुखी और विमनस्क अशोकदत्त चला जाता था कि, इतने में उसे सामने से आता हुआ सागरचन्द्र दीख गया। स्वच्छ अन्तःकरणवाले सागरचन्द्रने उससे चार नज़र होतेही पूछा-' मित्र ! तुम उद्विग्न से कैसे दीखते हो ?' सागरकी बात सुनते ही, दीर्घ नि:श्वास त्याग कर, कष्टसे दुखित हुएके समान, होठोंको चबाते हुए, मायाके पहाड़ अशोकने कहा—' हे भाई ! हिमालय पर्वतके नज़दीक रहने वालोंके सरदी से ठिठरनेका कारण जिस तरह प्रकट है, उसी तरह इस संसार में बसने वालोंके उद्वेग का कारणभी प्रगटही है। कुठौरके फोड़ेकी

तरह, यह वृत्तान न तो छिपाया ही जा सकता है और न प्रकट ही किया जा सकता है।'

इस तरह कहकर और कपटके आँसू दिखाकर अशोकदत्त चुप होगया। निष्कपट सागरचन्द्र मनमे विचार करने लगा—'अहो! यह संसार असार है, जिसमें ऐसे पुरुषों कोभी अकस्मात् ऐसे सन्देहके स्थान प्राप्त हो जाते हैं। धूआँ जिस तरह अग्नि की सूचना देता है, उसी तरह, धीरज से न सहे जाने योग्य, इसके भीतरी उद्वेगकी इसके आँसू, ज़बर्दस्ती, सूचना देते हैं।' इस तरह चिरकाल तक विचार करके, उसके दुःखसे दुखी सागरचन्द्र गद्गद स्वरसे इस प्रकार कहने लगा—'हे बन्धु! यदि अप्रकाश्य न हो, कहनेमें हर्ज न हो, तो अपने इस उद्वेगके कारणको मुझसे इसी समय कहो और अपने दुःखका एक भाग मुझे देकर अपने दुःखकी मात्रा कम करो।'

अशोकदत्तने कहा—'प्राण-समान आपसे जब मैं कोईभी बात छिपाकर नही रख सकता, तब इस वृत्तान्तको ही किस तरह छिपा सकता हूँ? आप जानते हैं कि, अमावस्याकी रात जिस तरह अन्धकारको उत्पन्न करती है, उसी तरह स्त्रियाँ अनर्थको उत्पन्न करती हैं।'

सागरचन्द्रने कहा—'भाई! इस समय तुम नागिनके जैसी किसी स्त्रीके संकट में पड़ेहो?'

अशोकदत्त बनावटी लज्जाका भाव दिखाकर बोला:—'प्रियदर्शना मुझसे बहुत दिनोंसे अनुचित बात कहा करती थी, परन्तु

मैंने यह समझकर कि, कभी तो इसे लाज आयेगी और यह स्वयं समझ-बूझकर ऐसी बातोंसे अलग हो जायगी, मैंने लज्जाके मारे कितने ही दिनों तक उसकी अवज्ञा-पूर्वक उपेक्षाकी, तोभी वह अपनी कुलटा नारीके योग्य बातें कहनेसे बन्द न हुई। अहो! स्त्रियोंका कैसा असद् आग्रह होता है! हे मित्र ! आज मैं आपको खोजनके लिए आपके घर पर गया था। उस समय छल-कपट से भरी हुई उस स्त्रीने राक्षसीकी तरह मुझे रोक लिया; लेकिन हाथी जिस तरह बन्धनको तुड़ाकर अलग हो जाता है; उसी तरह मैं भी उसके पञ्जेसे बड़ी कठिनाईसे छूटकर जल्दी-जल्दी यहाँ आरहा था। राहमें मैंने विचार किया कि, यह स्त्री मुझे जीता न छोड़ेगी। इसलिये मैं खुदही आत्मघात करलूँ तो कैसा ? परन्तु मरना भी मुनासिब नहीं, क्योंकि मेरी अनुपस्थिति में—मेरे न रहने पर, वह स्त्री मेरे मित्रसे इन सब बातों को कहेगी, यानी इनके विपरीत कहेगी, इसलिये मैं स्वय ही अपने मित्रसे ये सब बातें कह दूँ, जिससे स्त्रीका विश्वास करके वह नष्ट न हो जाय। अथवा यह कहना भी उचित नहीं, क्योंकि मैंने उस स्त्रीका मनोरथ पूर्ण नहीं किया, तब उसकीबुरी बातको कहकर घाव पर नमक क्यों .छिड़कूँ ? मैं ऐसे विचारों में गलताँ-पेचाँ हो रहा था, कि आपने मुझे देख लिया। हे भाई, यही मेरे उद्वेग का कारण है।' अशोकदत्तकी बातें सुनते ही मानो हालाहल विष पान किया हो, इस तरह पवन-रहित समुद्र की तरह सागरचन्द्र स्थिर हो गया।

सागरचन्द्रकी सरलता

सागरचन्द्रने कहा—'स्त्रियोंसे ऐसी ही आशा है, उनसे ऐसे ही काम हो सकते हैं, क्योंकि खारी ज़मीन के निवाण के जलमें खारापन ही होता है। मित्र! अब दुखी मत होओ, अच्छे काममें लगे रहो और उसकी बातों को याद मत करो। भाई! वास्तव में वह जैसी हो, भलेही वैसीही रहे; परन्तु उसके कारण से अपन दोनों मित्रोंके मनोंमें मलीनता न हो—अपने दिलोंमें फ़र्क़ न आवे।' सरल-प्रकृति सागरचन्द्रकी ऐसी अनुनय-विनय से वह अधम अशोकदत्त प्रसन्न हुआ, क्योंकि मायावी लोग अपराध करके भी अपनी आत्मा की प्रशंसा कराते हैं।

सागरचन्द्रको संसारसे विरक्ति।

देहत्याग और युगलिया जन्म।

उस दिनसे सागरचन्द्र प्रियदर्शनाको प्यार करना छोड़कर, निःस्नेह होकर, रोग वाली अँगुलीकी तरह, उसको उद्वेगके साथ धारण करने लगा, फिरभी उसके साथ पहलेकी तरह ही वर्ताव करता रहा। क्योंकि, अपने हाथोंसे लगाई और पाली-पोषी हुई लता, अगर बाँझ भी हो जाय, तोभी उसे जडसे नहीं उखाड़ते। प्रियदर्शनाने यह सोचकर, कि मेरी वजहसे इन दोनों मित्रोंका वियोग न हो जाय, अशोकदत्त-सम्बन्धी वृत्तान्त अपने पतिसे न कहा। सागरचन्द्र संसारको जेलखाना समझकर, अपनी सारी धन-दौलतको दीन और अनाथोंको दान करके कृतार्थ करने लगा।

समय आने पर, प्रियदर्शना, सागरचन्द्र और अशोकदत्त—इन तीनोंने अपनी-अपनी उम्र पूरी करके देह त्याग दी, अर्थात् पञ्चत्वको प्राप्त हुए। उनमें सागरचन्द्र और प्रियदर्शना इस जम्बूद्वीप में, भरतक्षेत्रके दक्षिण खण्डमें, गंगा और सिन्धु नदीके बीचके प्रदेशमें, इस अवसर्पिणी के तीसरे आरेमें, पल्योपमका आठवाँ भाग शेष रहने पर, युगलिया रूपमें उत्पन्न हुए।

छःआरोंका स्वरूप।

पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्रमें, कालकी व्यवस्था करनेके कारण-रूप बारह आरोंका कालचक्र गिना जाता है। वह कालचक्र—(१) अवसर्प्पिणी, और (२) उत्सर्प्पिणी,—इन भेदोंसे दो प्रकारका होता है। उसमें अवसर्प्पिणी कालके एकान्त सुषमा आदि छ. आरे हैं। एकान्त सुषमा नामक पहला आरा चार कोटा-कोटी सागरोपमका, दूसरा सुषमा नामक आरा तीन कोटा-कोटी सागरोपमका, तीसरा सुषम-दुःखमा नामक आरा दो कोटा-कोटी सागरोपमका, चौथा दुःखम-सुषमा नामक आरा बयालीस हज़ार वर्ष कम एक कोटा-कोटी सागरोपमका, पाँचवाँ दुःखमा नामक आरा इक्कीस हजार वर्षका और पिछला या छठा एकान्त दुःखमा नाम आराभी इतना ही यानी इक्कीस हजार वर्षका होता है। इस अवसर्प्पिणीके जिस तरह छःआरे कहे हैं, उसी तरह क्रमसे विपरीत आरे उत्सर्प्पिणी कालकेभी जानने चाहिएँ। उत्सर्प्पिणी और अवसर्प्पिणी कालकी सम्पूर्ण संख्या बीस कोटा-कोटी सागरोपमकी होती है। इसीको "काल-चक्र" कहते हैं।

पहले आरेमें मनुष्य तीन पल्योपम तक जीने वाले, छःकोस ऊँचे शरीर वाले और चौथे दिन भोजन करने वाले होते हैं। वे समचतुरस्र संस्थान वाले, सब लक्षणोंसे लक्षित, वज्रऋषभ नाराच संहनन-संघयण वाले और सदा सुखी रहने वाले होते हैं। फिर, वे क्रोधरहित, मानरहित, निष्कपटी, लोभ-हीन और स्वभावसे ही अधर्मको त्याग करने वाले होते हैं। उत्तर कुरुकी तरह उस समयमें रात-दिन उनके इच्छित मनोरथको पूर्ण करने वाले, मद्याङ्गादिक दस तरहके "कल्पवृक्ष" होते हैं। उनमें मद्यांग नामक कल्पवृक्ष माँगनेपर तत्काल स्वादिष्ट मदिरा देते हैं। भृतांग नामक कल्पवृक्ष भण्डारीकी तरह पात्र देते हैं। तूर्याङ्ग नामक कल्पवृक्ष तीन तरहके बाजे देते है। दीप-शिखा और ज्योतिष्क नामके कल्पवृक्ष अत्यन्त प्रकाश या रोशनी देते हैं। चित्रांग नामक कल्पवृक्ष चित्रविचित्र फूलोंकी माला देते हैं। चित्ररस नामक कल्पवृक्ष रसोइयोंकी तरह विविध प्रकारके भोजन देते हैं। मणयङ्ग नामके कल्पवृक्ष मन-चाहे गहने या ज़ेवर देते हैं। गेहाकार नामके कल्पवृक्ष गन्धर्वनगरकी तरह क्षणमात्रमें सुन्दर मकान देते हैं और अनग्न नामक कल्पवृक्ष इच्छानुसार वस्त्र या कपड़े देते हैं। ये प्रत्येक वृक्ष औरभी अनेक तरहके मन-चाहे पदार्थ देते हैं।

उस समय पृथ्वी शक्करसे भी अधिक स्वादिष्ट होती है और नदी वगैरःका जल अमृतके समान मधुर या मीठा होता है। उस आरेमें अनुक्रमसे धीरे-धीरे आयुष्य, संहननादिक और कल्प वृक्षोंका प्रभाव घटता जाता है।

दूसरे आरेमें मनुष्य दो पल्योपमकी आयुष्य वाले, चार कोस ऊँचे शरीर वाले और तीसरे दिन भोजन करने वाले होते हैं। उस समय कल्पवृक्ष किसी क़दर कम प्रभाव वाले, पृथ्वी न्यून स्वादवाली और पानी भी मिठासमे पहलेसे कुछ उतरते हुए होते हैं। पहले आरेकी तरह, इस आरे में भी, हाथीकी सूँडमें जिस तरह मुटाई कम होती जाती है· उसी तरह सारी बातों में अनुक्रमसे कमी होती जाती है।

तीसरे आरेमे, मनुष्य एक पल्योपम जीनेवाले, दो कोस ऊँचे शरीर वाले और दूसरे दिन भोजन करने वाले होते हैं। इस आरे मेंभी, पहले की तरह, शरीर, आयुष्य, पृथ्वीकी मधुरता और कल्पवृक्षोंकी महिमा कम होती जाती है।

चौथा आरा पहलेके प्रभाव—(कल्पवृक्ष, स्वादिष्ट पृथ्वी और मधुर जल वगैरः) से रहित होता है। उसमें मनुष्य कोटी पूर्वकी आयुष्य वाले और पाँच सौ धनुष ऊँचे शरीर वाले होते हैं।

पाँचवे आरेमें मनुष्य सौ वरसकी उम्रवाले और सात हाथ ऊँचे शरीर वाले होते हैं।

छठे आरेमें सोलह सालकी आयुवाले और एक हाथ उँचे शरीर वाले होते हैं।

एकान्त दुःखमा नामक पहले आरेसे शुरू होने वाले उत्स-र्प्पिणी कालमें, इसी प्रमाणसे अवसर्प्पिणी से विपरीत, छहों आरोंमें मनुष्य समझने चाहिएँ।

सागर और अशोक का पुनर्जन्म ।

अशोक का हाथी के रूप में जन्म लेना ।

अशोक और सागर की पर जन्म में मुलाकात ।

सागरचन्द्र और प्रियदर्शना तीसरे आरेके अन्तमें फिर पैदा हुए, इसलिए वे नौसौ धनुप ऊँचे शरीरवाले एवं पल्योपमके दशमांश आयुष्यवाले युगलिये हुए। उनके शरीर वज्रऋषभ नाराच संहनन वाले और समचतुरस्र संस्थान वाले थे। मेघ-मालासे जिस तरह मेरु पर्वत शोभित होता है, उसी तरह जात्यवन्त सुवर्णकी कान्ति वाला उस सागरचन्द्रका जीव अपनी प्रियङ्गु रङ्गवाली स्त्री से शोभित होता था।

अशोकदत्त भी, अपने पूर्वजन्मके किये हुए कपटसे, उसी जगह, सफेद रंग और चार दाँतोंवाला देवहस्तीके समान हाथी हुआ। एक दिन वह हाथी अपनी मौजमें घूम रहा था। घूमते-घूमते उसने युग्मधर्मि अपने पूर्वजन्मके मित्र—सागरचन्द्र को देखा।

विमलवाहन पहला कुलकर—राजा ।

विमलवाहन और चन्द्रयशा का देहान्त ।

मित्र को देखतेही, उस हाथीका शरीर दर्शनरूपी अमृत-धारासे व्याप्त सा हो उठा। बीजसे जिस तरह अंकुर की उत्पत्ति होती है, उसी तरह उसमें स्नेहकी उत्पत्ति हुई। इसलिये उसने उसे, सुख मालूम हो इस तरह, अपनी सूँड से आलिङ्गन

उस समय, चार दांतोंवाले हाथीपर बैठे हुए सागरचन्द्रको, विस्मयसे उत्तान नेत्रोंवाले दूसरे युगलिये, इन्द्रके समान देखने लगे।

[पृष्ठ १४५]

Narsingh Press, Calcutta

किया और उसकी इच्छा न होनेपर भी उसे अपने कन्धेपर बिठा लिया। परस्पर-दर्शनके अभ्याससे, उन दोनों मित्रोंको, जरा देर पहले किये हुए काम की तरह, पूर्वजन्मका स्मरण हुआ— पहले जन्मकी याद आगई। उस समय, चार दाँतोंवाले हाथीपर बैठे हुए सागरचन्द्रको, विस्मयसे उत्तान नेत्रोंवाले दूसरे युगलिये, इन्द्रके समान देखने लगे। चूँकि वह शङ्ख कुन्दपुष्प और चन्द्र-जैसे निर्मल हाथीपर बैठा हुआ था; इसलिये युगलिये उसे विमलवाहन नामसे पुकारने या बुलाने लगे। जाति-स्मरणसे सब तरहकी नीतिको जाननेवाला, विमल हाथीके वाहनवाला और स्वभावसे ही स्वरूपवान वह सबसे अधिक या ऊँचा हुआ। कुछ समय बीतनेके बाद, चारित्रभ्रष्ट यतियों की तरह, कल्प-वृक्षोंका प्रभाव मन्दा पड़ने लगा। मानो दुर्दैवने फिरसे दूसरे लगाये हों, इस तरह मद्यांग कल्पवृक्ष अल्प और विरस मद्य विलम्बसे देने लगे। भृतांग कल्पवृक्ष, मानो दे कि नहीं, ऐसा विचार करते हों और परवश हों इस तरह, माँगनेपर भी विलम्बसे पात्र देने लगे। तूर्यांग कल्पवृक्ष, बेगारमें पकड़े हुए, गन्धर्वों की तरह, जैसा चाहिये वैसा, गाना नहीं करते थे। बारम्बार प्रार्थना करनेपर भी, दीपशिखा और ज्योतिष्क कल्पवृक्ष, जिस तरह दिनमें दीपक की शिखा प्रकाश नहीं करती, उसी तरह वैसा प्रकाश नहीं करते थे। चित्रांग कल्पवृक्ष भी, दुर्वि-नीत सेवककी तरह, इच्छा करतेही तत्काल, फूलोंकी मालाएँ नहीं देते थे। चित्ररस कल्पवृक्ष, दानकी इच्छा क्षीण सदा-

व्रत बाँटनेवालेकी तरह, चार प्रकारका विचित्र रसवाला भोजन, पहले जितना नहीं देते थे। मण्यंग कल्पवृक्ष, मानो फिर किस तरह वापस मिलेगा, ऐसी चिन्तासे आकुल होगये हों इस तरह, पहलेके प्रमाण से, गहने या ज़ेवर नहीं देते थे। मन्दव्युत्पत्ति शक्तिवाले कवि जिस तरह अच्छी कविता देरमें कर सकते हैं; उसी तरह गेहाकार कल्पवृक्ष घर देनेमें देर करने लगे। क्रूर ग्रहोंसे अवग्रहको प्राप्त हुआ मेघ जिस तरह थोड़ा थोड़ा जल देता है; उसी तरह अनग्न वृक्ष हाथ रोक-रोककर वस्त्र देने लगे। कालके ऐसे प्रभावसे, युगलियोंको भी, देहके अवयवोंकी तरह, कल्पवृक्षोंपर ममता होने लगी। एक युगलियेके स्वीकार किये हुए कल्पवृक्षका दूसरे युगलियेके आश्रय करनेसे, पहले स्वीकार करनेवाले का बहुत भारी पराभव होने लगा। इसलिए आपसके ऐसे पराभव को सहन करने में असमर्थ युगलियोंने अपनेसे अधिक विमलवाहन को अपने स्वामी मान लिया। जाति-स्मरणसे नीतिज्ञ विमलवाहनने, जिस तरह बूढ़ा आदमी अपने नातेदारोंको धन बाँट देता है उसी तरह युगलियोंको कल्पवृक्ष बाँट दिये। दूसरे के कल्पवृक्ष की इच्छासे मर्य्यादा भंग करनेवालों के शिक्षा देनेके लिए उसने "हाकार नीति" प्रकट की। जिस तरह समुद्र की भरतीका जल मर्य्यादा उल्लङ्घन नहीं करता; उसी तरह 'हा! तूने बुरा काम किया' ऐसे शब्दसे सिखाये हुए युगलिये उसकी मर्य्यादा का उल्लङ्घन नहीं करते थे। "डण्डे या लकड़ी की चोट सहना भला, पर हाकार शब्दसे

किया गया तिरस्कार भला नहीं।' इस तरह वे युगलिये मानने लगे। उस विमलवाहन की उम्रके जब छ. महीने बाक़ी रह गये, तब उनकी चन्द्रयशा नाम की स्त्रीसे एक जोडली सन्तान पैदा हुई। वे दोनों जोडले असंख्य पूर्वके आयुष्यवाले, प्रथम संस्थान और प्रथम संहननवाले, श्यामवर्ण और आठ सौ धनुष प्रमाण ऊँचे शरीरवाले थे। माता-पिताने उनके चक्षुष्मान और चन्द्रकान्ता नाम रक्खे। साथ-साथ पैदा हुए लता और वृक्ष-की तरह वे साथ-साथ बढ़ने लगे। छ. मास तक अपने दोनों बच्चोंका पालन-पोषण करके, जरा और रोग बिना मरकर, विमलवाहन सुवर्णकुमार देवलोकमें और उस की स्त्री चन्द्रयशा नागकुमार देवलोकमें उत्पन्न हुई · क्योंकि चन्द्रमाके अस्त होनेपर चन्द्रिका नहीं रहती। वह हाथी भी अपनी उम्र पूरी कर के, नागकुमार निकायमें, देवरूपमें पैदा हुआ, क्योंकि कालका माहात्म्यही ऐसा है।

दूसरा तीसरा कुलकर—राजा।

इसके बाद चक्षुष्मान भी, अपने पिता विमलवाहन की तरह, हाकार नीतिसे ही युगलियों को मर्य्यादाके अन्दर रखने लगा। अन्त समय निकट होनेपर, चक्षुष्मान और चन्द्रकान्ता के यशस्वी और सुरूपा नामकी युगधर्मि जोड़ली सन्तान उत्पन्न हुई। वे भी वैसेही संहनन और वैसेही संस्थानवाले तथा किसी क़दर कम उम्रवाले हुए वय और बुद्धि की तरह, वे दोनो

अनुक्रम से बढ़ने लगे। साढ़े सात सौ धनुष प्रमाण ऊंचे शरीर वाले और सदा साथ-साथ घूमनेवाले वे दोनों तोरण-स्तम्भ के विलास को धारण करते थे। मृत्यु हो जानेपर, चक्षुष्मान सुवर्णकुमारमें और चन्द्रकान्ता नागकुमारमें उत्पन्न हुई। माता-पिता का देहान्त होनेपर, यशस्वी अपने पिता की तरह, जिस तरह गोपाल गायों का पालन करता है उसी तरह, सब युगलियों का लीला से पालन करने लगा। परन्तु उसके ज़माने में, मदमाता हाथी जिस तरह अङ्कुश को नहीं मानता है; उसका उल्लङ्घन करता है, उसी तरह युगलिये भी अनुक्रमसे 'हाकार दण्ड' का उल्लङ्घन करने लगे। तब यशस्वीने उन लोगोको 'माकार दण्ड' से शिक्षा देना शुरू किया। क्योंकि जब एक दवा से रोग आराम न हो, तब दूसरी दवाकी व्यवस्था करनी ही चाहिये। वह महामति यशस्वी हलका या थोड़ा अपराध करनेवाले को दण्ड देनेमें हाकार नीतिसे काम लेने लगा। मध्यम अपराध करनेवाले को दण्डित करने में दूसरी 'माकार नीति' का प्रयोग करने लगा और भारी अपराध करनेवालोंपर दोनो ही नीतियों-का इस्तेमाल करने लगा। यशस्वी और सुरूपा की जब थोड़ी सी उम्र बाक़ी रह गई; तब जिस तरह बुद्धि और विनय साथ-साथ उत्पन्न होते हैं; उसी तरह उनसे एक जोड़ली सन्तान पैदा हुई। पुत्र चन्द्रमा के समान उज्ज्वल था, इसलिये माँ-बापने उसका नाम अभिचन्द्र रक्खा और पुत्री प्रियङ्गुलता का प्रतिरूप थी, इसलिये उस का नाम प्रतिरूपा रखा। वे अपने

माता-पिता से कुछ कम उम्रवाले और साढ़े छै सौ धनुष ऊँचे शरीरवाले थे। एकत्र मिले हुए शमी और अश्वत्थ—पीपल—वृक्षके समान वे साथ-साथ बढ़ने लगे। गंगा और यमुना के पवित्र प्रवाह के मिले हुए जलकी तरह वे दोनों निरन्तर शोभने लगे। आयु पूर्ण होनेपर यशस्वी उदधिकुमार में उत्पन्न हुआ और सुरूपा उसके साथ ही काल करके नागकुमार में पैदा हुई।

चौथा कुलकर—राजा।

अभिचन्द्र भी अपने बाप की तरह, उसी स्थिति और उन दोनों नीतियों से युगलियों का शासन करने लगा। इसके बाद, जिस तरह अनेक प्राणियों के इच्छित चन्द्रमा को रात्रि जनती है, उसी तरह प्रान्त अवस्था में प्रतिरूपाने एक जोड़ली सन्तान जनी। माता-पिताने पुत्रका नाम प्रसेनजित रखा और पुत्री सबके नेत्रोंको प्यारी लगती थी, इससे उसका नाम चक्षुःकान्ता रखा। वे अपने माँ-बापसे कम उम्रवाले, तमाल वृक्षके समान श्याम कान्तिवाले, बुद्धि और उत्साह की तरह, साथ-साथ बढ़ने लगे। वे छै सौ धनुष प्रमाण शरीर को धारण करनेवाले और *विषुवत कालमें जिस तरह दिन और रात एक समान होते हैं; उसी तरह एकसी कान्तिवाले हुए। उनके पिता अभिचन्द्र, पञ्चत्व को प्राप्त होकर—देहत्याग कर, उदधिकुमार में पैदा हुए और प्रतिरूपा नागकुमार में उत्पन्न हुई।

---

* तुला और मेष राशि पर जब सूर्य आता है, तब उसे "विषुवत" काल कहते हैं।

पाँचवाँ कुलकर—राजा।

प्रसेनजित भी, अपने पिता की तरह, सब युगलियों का राजा हुआ। क्योंकि, महात्माओंके पुत्र बहुधा महात्मा ही होते हैं। जिस तरह कामार्त्त या कामी लोग लज्जा और मर्य्यादा-का उल्लङ्घन करते हैं. उसी तरह उस समयके युगलिये भी 'हाकार और माकार' नीतिका उल्लङ्घन करने लगे। उस समय प्रसेनजित, अनाचार रूपी महाभूत को त्रस्त करनेमे मंत्राक्षर-जैसी, तीसरी, धिक्कार नीति' को काममें लाने लगा। प्रयोग-कुशल प्रसेनजित, जिस तरह त्रय अंकुश से हाथी का शासन करते हैं उसी तरह; तीन नीतियोसे सब युगलियो का शासन करने लगा। इसी बीचमें चक्षुःकान्ताने स्त्री-पुरुष रूपी युग्म सन्तान को जन्म दिया। साढ़े पाँच सौ धनुष प्रमाण शरीर-वाले, वे भी अनुक्रम से वृक्ष और उस की छाया की तरह साथ-साथ बढ़ने लगे। वे दोनो युग्मधर्मि मरुदेव और श्रीकान्ताके नामसे लोक में प्रसिद्ध हुए। सुवर्ण की सी कान्तिवाला वह मरुदेव, अपनी प्रियंगुलता के समान रंगवाली प्रियासे उसी तरह शोभने लगा, जिस तरह नन्दन-वन की वृक्ष-श्रेणीसे कनकाचल—मेरु शोभता है। देहावसान होनेपर, प्रसेनजित द्वीपकुमार मे उत्पन्न हुआ और चक्षु:कान्ता देह त्यागकर नागकुमार मे गई।

छठा और सातवाँ कुलकर।

माता-पिता के लोकान्तरित होनेपर, मरुदेव सब युगलियोका

उसी नीति-क्रमसे उसी तरह शासन करने लगा, जिस तरह देवाधिपति इन्द्र देवताओ का शासन करते हैं। मरुदेव और श्रीकान्ता के प्रान्तकालके समय, उनसे नाभि और मरुदेवा इस नाम के युग्म या जोड़ ले पैदा हुए। सवा पाँच सौ धनुष प्रमाण शरीर वाले वे दोनों, क्षमा और सयम की तरह, साथ-साथही बढ़ने लगे। मरुदेवा प्रियङ्गुलताके जैसी कान्तिवाली थी और नाभि सुवर्णकी सी कान्तिवाला था · इसलिये वे दोनों, मानों अपने मातापिताके ही प्रतिविम्ब हों इस तरह, शोभा पाने लगे। उन महात्माओं की आयु उनके माता-पिता मरुदेव और श्रीकान्तासे कुछ कम—संख्याता पूर्वकी थी। मरुदेव देह त्यागकर द्वीपकुमार में पैदा हुआ और श्रीकान्ता भी उसी समय मरकर नागकुमार में उत्पन्न हुई। उनके मरनेके वाद, नाभिराजा युगलियेका सातवाँ * कुलकर—राजा हुआ। वह भी पहले कही हुई तीन प्रकार की नीतियोंसेही युग्मधर्मि मनुष्योंका शासन-शिक्षण करने लगा।

मरुदेवा माताके देखे हुए चौदह स्वप्न।

तीसरे आरेके चौरासी लक्ष, पूर्व और नवासी पक्ष यानी तीन वर्ष साढ़े आठ महीने वाक़ी रहे थे, तव आषाढ महीने की कृष्ण चतुर्दशी या आषाढ़ वदी चौदस के दिन, उत्तराषाढा नक्षत्र

* पहला विमल-वाहन, दूसरा चक्षुष्मान, तीसरा यशस्वी, चौथा अभिचन्द्र, पांचवां प्रसेनजित्, छठा मरुदेव, और सातवां नाभि कुलकर हुआ। युगलियोंके राजाको "कुलकर" कहते हैं।

में, चन्द्रका योग होते ही, वज्रनाभ का जीव, तेतीस सागरोपम आयु भोगकर, सर्व्वार्थ सिद्ध विमानसे च्यवकर, जिस तरह मानसरोवरसे गङ्गातटमें हंस उतरता है उसी तरह, नाभि कुल-कर की स्त्री—मरुदेवा—के पेटमें अवतीर्ण हुआ। जिस समय प्रभु गर्भमें आये उस समय, प्राणिमात्रके दुःखका विच्छेद होनेसे, त्रिलोकी मे सुख हुआ और सर्वत्र बड़ा प्रकाश फैला। जिस रातको देवलोकसे च्यवकर प्रभु माता के गर्भमें आये, उस रातको निवास-भवनमें सोई हुई मरुदेवाने चौदह महास्वप्न देखे। उन्होंने उन स्वप्नोंमें से पहले स्वप्नमें एक उज्ज्वल वृषभ या वल देखा, जिसके कन्धे पुष्ट थे, पूँछ लम्बी और सरल थी और जो सोनेके घुंघुरुओ की माला पहने हुए विजली समेत शरदृतु के मेघके समान था। दूसरे स्वप्नमें उन्होंने—सफेद रङ्गका, क्रमोन्नत, निरन्तर झरते हुए मदकी नदीसे रमणीय, चलते हुए कैलाश-जैसा—चार दाँत वाला हाथी देखा। तीसरे स्वप्नमें उन्होंने—पीले नेत्र, दीर्घ जिह्वा और चपल अयालो वाला, शूरवीरोंकी जयपाताकाकी तरह दुम हि-लाता हुआ—केशरीसिंह देखा। चौथे स्वप्नमें उन्होंने—कमलनयनी पद्म-निवासिनी अगल-वगल अपनी सूँड़ोंमें पूर्ण कुम्भ उठाये हुए दिग्गजोंसे शोभायमान—लक्ष्मी देखी। पाँचवें स्वप्नमें उन्होंने—देव-वृक्षोंके फूलोंसे गुथी हुई, सीधी और धनुर्धारियोंके चढ़ाये हुए धनुषके समान लम्बी—फूलोंकी माला देखी। छठे स्वप्नमें उन्होंने—अपने मुखके प्रतिबिम्बके समान, आनन्दका कारण रूप, अपने

कान्ति-समूहसे दिशाओंको प्रकाशित किये हुए—चन्द्रमण्डल देखा। सातवें स्वप्नमें उन्होंने—रातमेंभी तत्काल दिनका भ्रम करने वाला, सम्पूर्ण अन्धकारको नाश करने वाला और फैलती हुई किरणों वाला—सूर्य्य देखा। आठवे स्वप्नमें उन्होंने—चपल कानोंसे शोभायमान, हाथीके जैसी घूँघुरियोंकी लड़ीके भारवाली चञ्चल पताका से सुशोभित—महाध्वजा देखी। नवें स्वप्नमें उन्होंने—खिले हुए कमलोंसे अर्चित समुद्रमथनसे निकले हुए सुधा-कुम्भ या-अमृत घटके समान—जलसे भरा हुआ सोनेका घड़ा देखा। दसवें स्वप्नमें उन्होंने—आदि अर्हन्तकी स्तुतिके लिए अनेक मुख वाला हुआ हो ऐसा, भौंरोंके गुञ्जार वाला और अनेक कमलोंसे शोभित—पद्माकर या पद्मसरोवर देखा। ग्यारहवें स्वप्नमें उन्होने—पृथ्वी पर फैला हुआ, शरद ऋतुके मेघकी लीलाको चुराने वाला और और उत्ताल तरङ्ग-समूहसे चित्तको आनन्दित करने वाला—क्षीरनिधि या क्षीरसागर देखा। बारहवें स्वप्नमे उन्होंने एक प्रभूत कान्तिमान् विमान देखा। ऐसा जान पड़ता था, मानो भगवान्के देवत्वपनेमें उसमें रहनेके कारण वह पूर्वस्नेहके कारण वहाँ आया हो। तेरहवें स्वप्नमें उन्होंने किसी कारणसे एकत्र हुए तारो के समूह और एकत्र हुई निर्मल कान्तिके समूह-जैसा रत्नपुञ्ज आकाशमें देखा। चौदहवें स्वप्नमें उन्होंने, त्रिलोकीके तेजस्वी पदार्थोंके पिण्डीभूत हुए तेजके समान प्रकाशमान्, निर्धूम अग्निको मुखमें धुसते देखा। रात्रिके विराम-समय, स्वप्नके अन्तमें, प्रफुल्ल-मुखी स्वामिनी मरुदेवा कमलिनीको तरह जाग उठीं। मानो

हृदयके भीतर खुशी समाती न हो, इसलिये वह स्वप्न-सम्बन्धी सारे वृत्तान्तको उद्गार करता हो, इस तरह यथार्थ हाल उन्होंने नाभि- राजको कह सुनाया। नाभिराजने अपने सरल स्वभावके अनुसार स्वप्नका विचार करके—'तुम्हारे उत्तम कुलकर-पुत्र होगा' ऐसा कहा।

मरुदेवा माताके पास इन्द्रका आगमन

स्वप्नफल कथन।

उस समय, स्वामीकी मात्र कुलकरपनसे ही सम्भावना की. यह अयुक्त है, अनुचित है,—ऐसे विचारकरके मानो कोपायमान हुए हों, इस तरह इन्द्रोंके आसन कम्पायमान हुए। हमारे आसन क्यों कम्पायमान हुए, इसका ख़याल करते ही—इस बातकी खोज दिमाग़में करतेही, भगवानके च्यवनकी बात इन्द्रोको ध्यानमें आगई—वे समझ गयेकि, भगवान्का च्यवन हुआ है। इसी समय तत्काल इशारा किये हुए मित्रोंकी तरह, सब इन्द्र इकट्ठे होकर, भगवान्की माताको स्वप्नका अर्थ बतानेके लिए वहाँ आये। वहाँ आतेही हाथ जोड़कर, जिस तरह वृत्तिकार सूत्रके अर्थको स्पष्ट करता है— सूत्रका खूलासा मतलब समझाता है, उसी तरह वे विनय-पूर्व्वक स्वप्नके अर्थको स्पष्ट करने लगे—अर्थात् स्वप्नका फल या ख़्वाब की तावीर कहने लगे:—

"हे स्वामिनी! आपने स्वप्नमें पहले वृषभ—बैल देखा; इस कारण आपका पुत्र मोहरूपी पंक—कीचमें फँसे हुए धर्म रूपी रथका उद्धार करनेमें समर्थ होगा। हाथी देखनेसे आपका पुत्र

पुरूषोंमें सिंहरूप, धीर, निर्भय, शूरवीर और अस्खलित पराक्रमवाला होगा। हे देवि! आपने स्वप्नमे लक्ष्मी देखी, इससे आपका पुरुषश्रेस्ठ पुत्र त्रिलोकी की साम्राज्य-लक्ष्मीका पति होगा। आपने फूलमाला देखी है, इससे आपका पुत्र पुण्यदर्शन स्वरूप होगा और समस्त जगत् उसकी आज्ञाको मालाकी तरह मस्तक पर वहन करेगा। हे जगत्-माता! आपने स्वप्नमे पूर्ण चन्द्र देखा है, इससे आपका पुत्र मनोहर और नयन-सुखकर यानी नेत्रोंको आनन्द देने वाला होगा—जो उसके दर्शन करेगा उसेही सूख होगा—दर्शन करने वालेके नेत्रोंकी दर्शनसे तृप्ति न होगी। आ-पने सूर्य देखा, इस लिये आपका पुत्र मोह-रूपी अन्धकारको नाश करके, जगत्में प्रकाशको फैलाने वाला होगा। वह ससार के अज्ञान-अन्धकारको नाश करके ज्ञानका प्रकाश फैलायेगा। आपने महाध्वजा देखी, इसलिये अपका पुत्र आपके वंशमें महान् प्रतिष्ठावाला और धर्मध्वज होगा। हे माता! आपने स्वप्नमें पूर्ण कुम्भ देखा, इससे आपका पुत्र अतिशयोंका पूर्ण पात्र होगा, अर्थात् सर्व अतिशययुक्त होगा। आपने पद्माकर या पद्म-सरोवर देखा, इससे आपका पुत्र संसार रूपी अटवीमें पड़े हुए मनुष्योंके पाप-तापको नाश करनेवाला होगा। आपने क्षीरसागर देखा इस से आपके पुत्रके अधृष्य होनेपर भी, उसके पास सब कोई जा सकेंगे। हे देवि! आपने स्वप्नमें अलौकिक विमान देखा, इससे आपका पुत्र वैमानिक देवोंके लिये भी सेव्य होगा, अर्थात् वैमानिक देव भी उसकी सेवकाई करेंगे। आपने प्रकाशमान रत्न-पुञ्ज देखा,
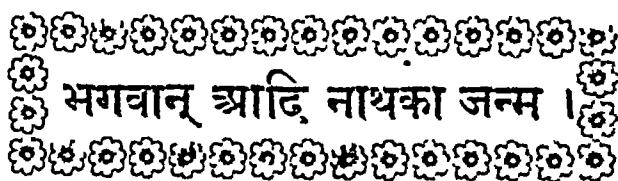
इसलिये आपका पुत्र सर्व गुण रूप रत्नोंकी खानके समान होगा, और आपने अपने मुँहमें जाज्वल्यमान अग्निको प्रवेश करते देखा, इससे आपका पुत्र अन्य तेजस्वियोंके तेजको दूर करने वाला होगा। हे स्वामिनी! आपनेजो चौदह स्वप्न देखे हैं, वे इस बात की सूचना देते हैं, कि आपका आत्मज—पुत्र—चौदह भुवनका स्वामी होगा। इस तरह स्वप्नार्थ कह कर, और मरुदेवा माताको प्रणाम करके, सब इन्द्र अपने-अपने स्थानोंको चले गये। स्वामिनी मरुदेवा भी स्वप्नार्थ-सुधासे सिञ्चित होनेसे उसी तरह उल्लसित और प्रसन्न हुई, जिस तरह वर्षा कालके जलसे सींची हुई पृथ्वी उल्लसित और हर्षित होती है; अर्थात् बरसातके पानीसे ज़मीन जिस तरह तरो-ताज़ा और हरीभरी होती है; उसी तरह मरुदेवा भी स्वप्नफल या ख़्वाबकी ताबीर सुननेसे खूब खुश हुई,।

मरुदेवाकी गर्भयुक्त शरीर-स्थिति।

अब, जिस तरह मेघमाला सूर्यसे, सीप मोती से और गिरि-कन्दरासिंह से शोभा देती है; उसी तरह महादेवी मरुदेवा उस गर्भ से शोभित होने लगी। यद्यपि वे स्वभावसे ही प्रियंगुलता के समान श्यामवर्ण थीं; तथापि शरद ऋतु से मेघमाला जिस तरह पाण्डुवर्ण हो जाती है; उसी तरह वे गर्भके प्रभाव से पाण्डुवर्ण होने लगीं। जगत् के स्वामी हमारा दूध पीवेंगे, इस हर्ष से ही मानो उन के स्तन पुष्ट और उन्नत होने लगे। मानो भगवान् का मुँह देखने के लिये पहलेसे ही उत्कंठित हों, इस तरह

उनके नेत्र विशेष विकार को प्राप्त होगये, अर्थात् भगवान् का मुँह देखने की उत्कंठा और लालसा से उनकी आँखो में ख़ास क़िस्म की तब्दीली होगई। उनका नितम्ब-भाग यानी कमर के पीछे का हिस्सा यद्यपि पहलेसे ही विशाल था, तथापि जिस तरह वर्षाकाल बीतने के बाद नदी के किनारे की जमीन विशाल हो जाती है, उसी तरह और भी विशाल होगया। उनकी चाल यद्यपि स्वभावसे ही मन्दी थी, लेकिन अब मतवाले हाथी की तरह औरभी मन्दी होगई। सवेरे के समय जिस तरह विद्वान् आदमी की बुद्धि बढ़ जाती है, और गरमी की ऋतु में जिस तरह समुद्र की वेला बढ जाती है, उसी तरह गर्भावस्था में उन की लावण्य-लक्ष्मी बढ़ने लगी। यद्यपि उन्होंने त्रिलोकी के असाधारण गर्भको धारण कर रखा था, तथापि उन्हें ज़रा भी कष्ट या खेद न होता था; क्योंकि गर्भ में रहनेवाले अर्हन्तों का ऐसा ही प्रभाव होता है। जिस तरह पृथ्वी के भीतरी भाग में अकुर बढ़ते हैं; उसी तरह मरुदेवा माता के पेट में वह गर्भ भी, गुप्तरीति से, धीरे-धीरे बढ़ने लगा। जिस तरह शीतल जलमें हिम-मृत्तिका या बर्फ डालने से वह औरभी शीतल हो जाता है, उसी तरह गर्भके प्रभाव से, स्वामिनी मरुदेवा औरभी अधिक विश्ववत्सला या जगत् की प्यारी हो गईं। गर्भमें आये हुए भगवान् के प्रभाव से, युग्म-धर्मी लोगो में, नाभिराजा अपने पिता से भी अधिक माननीय हो गये। शरद् ऋतु के योग या मेल से जिस तरह चन्द्रमा की

किरणों का तेज और भी अधिक हो जाता है ; इसी तरह सारे कल्पवृक्ष और भी अधिक प्रभावशाली हो गये। जगत् में तिर्यंच और मनुष्यों के आपस के वैर शान्त होगये , क्योंकि वर्षा ऋतुके आने से सर्वत्र सन्ताप की शान्ति हो जाती है।

भगवान् आदि नाथका जन्म।

इस तरह नौ महीने और साढ़े आठ दिन बीतनेपर, चैत मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी के दिन, जब सब ग्रह उच्च स्थानमें आये हुए थे और चन्द्रमा का योग उत्तराषाढ़ा नक्षत्रसे हो गया था, तब महादेवा मरुदेवाने युगल-धर्मी पुत्रको सुखसे जना। उस समय मानो हर्ष को प्राप्त हुई हों, इस तरह दिशायें प्रसन्न हुईं और स्वर्गवासी देवताओं की तरह लोग बड़ी खुशी से तरह-तरह की क्रीड़ाओं अथवा खेल-तमाशों में लग गये। उपपाद शय्या (देवताओं के पैदा होने की शय्या)में पैदा हुए देवता की तरह, जरायु और रुधिर प्रभृति कलङ्कसे वर्ज्जित, भगवान् बहुत ही सुन्दर और शोभायमान दीखने लगे। उस समय जगत् के नेत्रों को चमत्कृत करनेवाला और अन्धकार को नाश करनेवाला बिजलीके प्रकाश-जैसा प्रकाश तीनों लोक में हुआ। नौकरों-के न बजानेपर भी, मेघवत् गम्भीर शब्दवाली, दुंदुभी आकाशमें बजने लगी। उस समय ऐसा जान पड़ने लगा, मानो स्वर्ग

खुशी के मारे गरज रहा है। उस समय, क्षणमात्र के लिए, नरक-वासियों को भी ऐसा अपूर्व सुख हुआ, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। फिर तिर्यञ्च, मनुष्य और देवताओं को सुख हुआ हो, इसमें तो कहना ही क्या? ज़मीनपर मन्द-मन्द चलता हुआ पवन, नौकरों की तरह, ज़मीन की धूल को साफ करने लगा। वादल चेलक्षेप और सुगन्धित जल की वृष्टि करने लगे, इस-से अन्दर बीज वोये हुए की तरह पृथ्वी उच्छ्वास को प्राप्त होने लगी।

दिक् कुमारियोंका जन्मोत्सव मनाना।

इस समय अपने आसन चलायमान—कम्पित होने से, भोङ्कर, भोगवती, सुभोगा, भोगमालिनी, तोयधारा, विचित्रा, पुष्पमाला और अनिन्दिता—नाम की आठ दिक्-कुमारियाँ, तत्काल, अधःलोक से, भगवान् के सूतिका-गृह या सोहर में आईं। आदि तीर्थङ्कर और तीर्थङ्कर की माता की तीन बार प्रदक्षिणाकर, वे इस प्रकार से कहने लगीं:—'हे जगत्माता! हे जगत्-दीपक को जननेवाली देवि! हम आप को नमस्कार करती हैं। हम अधःलोक में रहनेवाली आठ दिक्कुमारियाँ हैं। हम, अवधिज्ञान से, पवित्र तीर्थङ्कर के जन्म की वात जानकर, उनके प्रभाव से, उनकी महिमा करने के लिए यहाँ आईं हैं; इसलिये आप हम से डरियेगा नहीं।' यह कहकर, ईशान भाग में रहनेवालियोंने, प्रसन्न होकर, पूरव दिशा की तरफ मुँह और

हज़ार खम्भोंवाला सूतिका गृह—ज़च्चाघर बनाया। इसके बाद संवर्त नामक वायु से सूतिकागार या ज़च्चा-घरके चारों तरफ कोस भर तक के कंकर पत्थर और काँटे दूर कर दिये। संवर्त वायु का संहरण करके और भगवान् को प्रणाम करके, वे गीत गाती हुई उनके पास बैठ गईं।

इस तरह आसन के काँपने से प्रभु का जन्म जानकर, मेघंकरा, मेघवती, सुमेधा, मेघमालिनी, तोयधारा, विचित्रा, वारिषेणा और बलाहिका नाम की, मेरु पर्वतपर रहनेवाली, ऊर्ध्व-लोक-वासिनी आठ दिक्कुमारियाँ वहाँ आईं। उन्होंने जिनेश्वर और जिनेश्वर की माता को नमस्कार-पूर्वक स्तुतिकर, भादों के महीने की तरह, तत्काल, आकाश में मेघ उत्पन्न किये। उन मेघों से सुगन्धित जल बरसाकर, सूतिकागार के चारों तरफ चार कोस तक, चन्द्रिका जिस तरह अँधेरे का नाश कर देती है उसी तरह, धूल का नाश कर दिया। घुटनोंतक, पाँच रङ्ग के फूलों की वृष्टि से, मानो तरह-तरह के चित्रोंवाली ही हो इस तरह, पृथ्वी को शोभामन्ती बना दी। पीछे तीर्थङ्कर के निर्मल गुण गान करती हुई एवं हर्षोत्कर्ष से शोभा पाती हुई वे अपने योग्य स्थानपर बैठ गईं।

पूर्व रुचकाद्रि पर्वत पर रहनेवाली नन्दा, नन्दोत्तरा, आनन्दा, नन्दिवर्द्धना, विजया, वैजयन्ती, और अपराजिता नाम की आठ दिशा कुमारियाँ भी मानों मन के साथ स्पर्द्धा करनेवाले हो ऐसे

वेगवान विमानों में बैठकर वहाँ आई। स्वामी और मरुदेवा माता को नमस्कार कर, पहले की तरह कह, अपने हाथों में दर्पण ले, मांगलिक गीत गाती हुई पूर्व दिशा की तरफ खड़ी रहीं।

दक्षिण रुचकाद्रि पर्वतपर रहनेवाली समाहारा, सुप्रदत्ता, सुप्रबुद्धा, यशोधरा, लक्ष्मीवती, शेषवती, चित्रगुप्ता और वसुन्धरा नाम की आठ दिशा-कुमारियाँ प्रमोद-प्रेरित की तरह प्रमोद करती हुई वहाँ आईं और पहले की दिक्कुमारियों की तरह, जिनेश्वर और उन की माता को नमस्कार करके, अपना कार्य निवेदन कर, हाथ में कलश लेकर, दक्षिण दिशा में गीत गाती हुई खड़ी रहीं।

पश्चिम रुचकाद्रि पर्वतपर रहनेवाली इलादेवी, सुरादेवी, पृथ्वी पद्मावती, एकनासा, अनवमिका, भद्रा और अशोका नाम की आठ दिक्-कुमारियाँ, भक्ति से एक दूसरे को जीत लेना चाहती हों इस तरह, खूब जल्दी-जल्दी आईं और पहले-वालियों की तरह भगवान् और माता को नमस्कार करके विज्ञ-प्ति की और पंखा हाथ में लेकर गीत गाती हुई पश्चिम दिशा मे खड़ी रहीं।

उत्तर रुचकाद्रि पर्वत से अलम्बुसा, मिश्रकेशी, पुण्डरीका, वारुणी, हासा, सर्वप्रभा, श्री और ह्री नाम की आठ दिक्कुमा-रियाँ वायु-जैसे रथ पर चढ़कर, अभियोगिक देवताओं के साथ, जल्दी से वहाँ आईं और भगवान् तथा उन की माता को

नमस्कार कर, अपना कार्य जना, हाथ में चँवर ले गीत गाती हुई पश्चिम दिशामें खड़ी होगई।

विदिशाओं के रुचक पर्वत से चित्रा, चित्रकनका, सतेरा सूत्रामणि नाम्नी चार दिक्कुमारियाँ भी आईं और पहलेवालियों की तरह जिनेश्वर और माता को नमस्कार कर, अपना काम जना; हाथ में दीपक ले ईशान प्रभृति विदिशाओं में खड़ी रहीं।

रुचक द्वीप से रूपा, रूपासिका, सुरूपा, और रूपकावती नाम की चार दिक्कुमारिकायें भी वहाँ तत्काल आईं। उन्होंने भगवान् का नाभि-नाल चार अङ्गुल छोड़कर छेदन किया। इसके बाद वहाँ खड्डा खोद, उसमें उसे डाल, गड्ढे को रत्न और वज्र से पूर दिया और उसके ऊपर दूब से पीठिका बाँधी। इसके बाद भगवान् के जन्म-घर के लगता-लगत, पूरब-दक्खन और उत्तर दिशाओं में, उन्होंने लक्ष्मी के घररूप तीन कदलीगृह या केलेके घर बनाये। उनमें से प्रत्येक घर में उन्होंने विमान में हो ऐसे विशाल और सिंहासन से भूषित चतुःशाल या चौक बनाये। फिर जिनेश्वर को अपनी हस्ताञ्जलि में ले, जिन माता को चतुर दासी या होशियार टहलनी की तरह, हाथ का सहारा देकर, चतुःशाल या चौक में ले गईं। वहाँ दोनों को सिंहासनपर बिठाकर, बूढ़ी मालिश करनेवाली की तरह, वे खुशबूदार लक्ष-पाक तेल की मालिश करने लगीं। तैलके अमन्द आमोद की सुगन्ध से दिशाओं को प्रमुदित करके, उन्होंने उन दोनोंके दिव्य उवटन लगाया। फिर पूर्व दिशा की चतुःशाल में ले जाकर,

सिंहासनपर विठाकर, अपने मन के जैसे साफ निर्मल पानी से, उन्होंने दोनों को स्नान कराया। सुगन्धित कषाय वस्त्रों से उनका शरीर पोंछकर, गोशीर्ष चन्दन के रस से उन को चर्चित किया और दोनों को दिव्य वस्त्र और बिजली के प्रकाश के समान विचित्र आभूषण पहनाये। इसके बाद भगवान् और उन की जननी को उत्तर चतुःशाल में ले जाकर सिंहासनपर विठाया। वहाँ उन्होंने अभियोगिक देवताओं से, क्षुद्र हिमवन पर्वत से, शीघ्र ही गोशीर्ष चन्दन की लकड़ियाँ मँगवाईं। अरणीके दो काठों से अग्नि उत्पन्न करके, होम-योग्य बनाये हुए गोशीर्ष चन्दन के काठ से, उन्होंने हवन किया। हवन की आग से जो भस्म तैयार हुई, उस की उन्होंने रक्षा-पोटलियाँ बनाकर दोनों के हाथों में बाँध दी। प्रभु और उन की जननी दोनों ही महामहिमान्वित थे, तोभी दिक्कुमारियाँ भक्ति के आवेश में ये सब कर रही थीं। पीछे 'आप पर्वत की जैसी आयु-वाले होओ'—प्रभु के कान में ऐसा कहकर, पत्थर के दो गोलेका उन्होंने आस्फालन किया। इसके बाद प्रभु और उन की जननी को सूतिका-भुवनमें पलँगपर सुलाकर, वे मांगलिक गीत गाने लगीं।

सौधर्मेन्द्रका भगवान्‌के पास आना और उनकी स्तुति करना।

अब उस समय, लग्न-काल में जिस तरह सब बाजे एक

होना ही है। उसके परिजनोंके मुँह से अपशकुनमय—शोक-कारक और विरस वचन निकलने लगे। कहा है, कि बोलने-वाले के मुख से होनहार के अनुरूप ही बात निकलती है। जन्म-से प्राप्त हुई लक्ष्मी और लज्जारूपी प्रिया ने, मानो उस ने कोई अपराध किया हो इस तरह, उसे छोड़ दिया। चींटी के जिस तरह मृत्यु-समय पंख आ जाते हैं; उसी तरह, उसके अदीन और निद्रारहित होने पर भी, उसमें दीनता और निद्रा आगई। हृदय के साथ उस के सन्धि-बन्धन ढीले होने लगे। महाबलवान् पुरुषों से भी न हिलनेवाले उस के कल्पवृक्ष काँपने लगे। उसके नीरोगी अङ्ग और उपाङ्गों की सन्धियाँ मानो भविष्य में आने-वाली वेदना की शङ्का से टूटने लगीं। जिस तरह दूसरों के स्थायी भाव देखने में असमर्थ हो: उस तरह उस की दृष्टि पदार्थ-ग्रहण करने में असमर्थ होने लगी; यानी उस की नज़र कम हो गई। मानो गर्भावास में निवास करने के दुःखोंका भय लगता हो, इस तरह उस के सारे अङ्ग काँपने लगे। ऊपर महावत बैठा हो ऐसे गजेन्द्र की तरह, उस ललिताङ्ग देव को रम्य क्रीड़ा-पर्वत, नदी, बावड़ी और बगीचे भी प्यारे नहीं लगते थे। उस की ऐसी हालत देखकर देवी स्वयंप्रभा ने कहा,—"हे नाथ! मैंने आप का क्या अपराध किया है, कि आप का मन मुझ से फिरा हुआ सा जान पड़ता है?"

न त्याग दिया। सात आठ क़दम भगवान्‌के सामने चलकर, मानो दूसरे रत्न-मुकुटकी लक्ष्मीको देने वाली हो ऐसी कराञ्जलिको मस्तकपर स्थापन करके, जानु और मस्तक-कमलसे पृथ्वीको स्पर्श करते हुए प्रभुको नमस्कार किया और रोमाञ्चित होकर उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगा:— " हे तीर्थनाथ ! हे जगत् को सनाथ करने वाले ! हे कृपारसके समुद्र ! हे श्री नाभिनन्दन ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे नाथ ! नन्दन प्रभृति तीन बग़ीचोंसे जिस तरह मेरु पर्वत शोभित होता है, उसी तरह मति प्रभृति तीन ज्ञानों सहित पैदा होने से आप शोभते हैं। हे देव ! आज यह भरत क्षेत्र स्वर्गसे भी अधिक शोभायमान है; क्योंकि त्रैलोक्यके मुकुट-रत्न-सदृश आपने उसे अलङ्कृत किया है। हे जगन्नाथ ! जन्म कल्याणसे पवित्र हुआ आजका दिन, संसारमें रहूँ तव तक, आपकी तरह, वन्दना करने योग्य है। आपके इस जन्मके पर्वसे नरकवासियोंको सुख हुआ है। क्योंकि अर्ह-न्तोंका हृदय किसके सन्तापको हरने वाला नहीं होता ? इस जम्बूद्वीपस्थित भरत-क्षेत्र या भारतवर्षमें निधानकी तरह धर्म नष्ट हो गया है, उसे अपने आज्ञा रुपी वीजसे फिर प्रकाशित कीजिये। हे भगवान् ! आपके चरणोंको प्राप्त करके अव कौन संसार-सागरसे नहीं तरेगा ? आपके पदपङ्कजोंकी कृपा होनेसे अव किसका भवसागरसे उद्धार न होगा ? क्योंकि नावके योग से लोहा भी समुद्रके पार हो जाता है। हे भगवान् ! वृक्ष-विहीन देशमें जिस तरह कल्पवृक्ष हो और मरुदेशमें

जिस नरह नदी का प्रवाह हो, उसी तरह इस भरतक्षेत्रमें लोगोंके पुण्यसे आपने अवतार लिया है।

सौधर्मेन्द्र का देवताओंको आदिनाथ भगवान् के जन्मकी खबर देना।

भगवानके चरण ३मलोंमें जानेकी तैयारी।

इस तरह देवलोकके इन्द्रने पहले भगवानकी स्तुति की और पीछे अपने सेनाधिपति नैगमिषी नामक देवको आज्ञा दी - "हे सेनापति! जम्बूद्वीपके दक्षिणार्द्ध-स्थित भरतक्षेत्रके मध्य-भूमि-भागमें लक्ष्मीके निधि रूप, नाभिकुलकरकी पत्नी मरुदेवाके पेटसे, प्रथम तीर्थङ्करने पुत्र रूपसे जन्म लिया है। अत· उनके जन्म-स्नात्रके लिए सब देवताओंको बुलाओ।" इन्द्रकी ऐसी आज्ञा सुनकर, उसने चौदह कोसके विस्तार और अद्भुत आवाज़वाली सुघोषा नामकी घण्टी तीन बार बजाई। मुख्य गाने वालेके पीछे जिस तरह और गवैये गाते हैं - उसी तरह सुघोषा घण्टी की आवाज़ होने पर दूसरे सब विमानोंकी घण्टियाँभी उसके साथ-साथ बजने लगीं। कुलपुत्रोंसे जिस तरह उत्तम कुलकी वृद्धि होती है; उसी तरह उन सब घण्टियोंकी आवाज़ दिशाओं-विदिशाओंमें गूँज-गूँज कर बढ़ गई। देवता लोग प्रमादमें आसक्त थे बत्तीस लाख विमानो में वह शब्द तालवाकी भाँति अनुरणन रूप से बढ़ गया। देवता लोग प्रमादमे आसक्त थे, ग़फ़लतमें पड़े हुए थे, घण्टियोंकी घोर ध्वनि सुनकर मूर्च्छित और बेहोश

होगये और 'यह क्या होता है' ऐसे संभ्रममें पड़कर सावधान होने और चैतन्य लाभ करने लगे। इस तरह सावधान हुए देवोंको उद्देश करके, इन्द्रके सेनापतिने, मेघवत वाणीसे इस प्रकार कहा— 'हे देवताओ! जिस इन्द्रका शासन अनुल्लंध्य है, जिस सुरपतिकी आज्ञाके विरुद्ध कोई भी चलनेका साहस कर नहीं सकता, जिन देवराजके हुक्म के ख़िलाफ़ कोईभी चूँ नहीं कर सकता, जिस स्वर्गाधिपतिके आदेशके विपरीत चलनेकी किसीमें भी क्षमता और सामर्थ्य नहीं, वही वृत्रारि देवाधिपति इन्द्र आपलोगोंको देवी प्रभृति परिवार सहित आज्ञा देते हैं, कि जम्बूद्वीपके दक्षिणार्द्ध भरतखण्डके मध्य भागमें, कुलकर नाभिराजके कुलमे, आदि तीर्थङ्कर भगवान् ने जन्म लिया है। उन्हीं भगवान्‌के जन्म-कल्याणका महोत्सव मनानेके लिए हम लोग वहाँ जाना चाहते हैं। आप लोग भी सपरिवार वहाँ चलनेके लिए शीघ्र शीघ्र तैयार होकर हमारे पास आजायँ, इस शुभकाममें विलम्ब न करें, क्योंकि इससे उत्तम शुभ कार्य और नहीं है।' इस आज्ञाके सुनतेही अनेक देवता तो भगवान्‌की भक्ति और प्रीतिसे खिचकर, वायुके सन्मुख वेगसे जाने वाले हिरनकी तरह, चल खड़े हुए। कितनेही, चकमकसे आकर्षित होने वाले लोहेकी तरह, इन्द्रकी आज्ञासे आकर्षित होकर या खिचकर रवाना होगये। कितने ही, नदियोंके वेगसे दौड़नेवाले जल-जीवोंकी तरह, अपनी अपनी घरवालियोंके उत्साहित और उल्लसित करने एवं ज़ोर देनेसे चल पड़े और

कितने ही वायुके आकर्षणसे गन्धके चलनेकी तरह, अपने मित्रोंके आकर्षणसे अपने अपने घरों से चल दिये। इस तरह अपने अपने सुन्दर विमानों और अन्य वाहनोंसे, मानो दूसरा स्वर्ग हो इस तरह, आकाशको सुशोभित करते हुए देवराज इन्द्रके पास आकर इकट्ठे होगये।

पालक विमानकी रचना।

उस समय पालक नामक अभियोगिक देवको सुरपतिने असम्भाव्य और अप्रतिम यानी लाजवाब और बेजोड विमान रचने की आज्ञा दी। स्वामीकी आज्ञा पालन करने वाले—मालिकके हुकम मुताबिक़ काम करने वाले देवने तत्काल इच्छनुगामी—मरज़ीके माफिक़ चलने वाला—विमान रचकर तैयार कर दिया। वह विमान हज़ारों रत्न-निर्म्मित स्तम्भों—खम्भों—के किरण समूह से आकाश को पवित्र करता था। उसमें बनी हुई खिड़कियाँ उसके नेत्रों-जैसी, दीर्घ ध्वजायें उसकी भुजाओ जैसी और वेदिकायें उसके दाँतों जैसो मालूम होतो थी एवं सोनेके कलशोंसे वह पुलकित हुआ सा जान पड़ता था। उसकी उँचाई ४००० मीलकी और विस्तार या लम्बाई चौड़ाई ८ लाख मीलकी थी। उस विमानमें कान्तिकी तरङ्ग वाली तीन सोपान-पंक्तियों या सीढ़ियोंकी क़तारे थीं जो हिमालय पहाड़ पर गंगा सिन्धु और रोहिताशा नदियोंके जैसी मालूम होती थीं। उन सोपान-पंक्तियों या सीढ़ियोंकी क़तारके आगे, इन्द्र धनुषकी शोभाको धारण करने

वाले, नाना प्रकारके रत्नोंसे बने हुए तोरण थे। उस विमानके अन्दर चन्द्रविम्ब, दर्पण—आईना, मृदङ्ग और उत्तम दीपिका के समान चौरस और हमवार ज़मीन शोभा देती थी। उस ज़मीन पर विछाई हुई रत्नमय शिलाये, अविरल और घनी किरणों से, दीवारों पर बने हुए चित्रों पर, पर्दों के जैसी शोभायमान लगती थीं; यानी हीरे पन्ने और माणिक प्रभृति जवाहिरों से जो लगातार गहरी किरणें निकलती थीं; वे दीवारों पर बने हुए चित्रों पर पर्दों के समान सुन्दर मालूम होती थीं। उसके मध्य-भाग या बीचमें अप्सराओं जैसी पुतलियों से विभूषित—रत्नखचित एक प्रेक्षामण्डप था और उस के अन्दर खिले हुए कमल की कर्णिका के समान सुन्दर माणिक्य की एक पीठिका थी। उस पीठिका की लम्बाई-चौड़ाई बत्तीस माइल थी और उस की मुटाई सोलह योजन थी। वह इन्द्र की लक्ष्मी की शय्या सी मालूम होती थी। उसके ऊपर एक सिंहासन था, जो सारे तेज के सार के पिण्ड से बना हुआ मालूम पड़ता था। उस सिंहासन के ऊपर अपूर्व शोभावाला, विचित्र-विचित्र रत्नों से जड़ा हुआ और अपनी किरणों से आकाश को व्याप्त करनेवाला एक विजय-वस्त्र था। उसके बीच में, हाथी के कान में हो ऐसा एक वज्राङ्कुश और लक्ष्मी के क्रीड़ा करने के हिंडोले-जैसी कुम्भिक जात के मोतियों की माला शोभा दे रही थी और उस मुक्त दाम के आसपास—गंगा-नदी के अन्तर जैसी—उस माला से विस्तार में आधी, अर्द्ध कुम्भिक मोतियों की माला शोभ रही

थी। उनके स्पर्श-सुख के लोभ से मानो स्खलित होता हो इस तरह, पूर्व-दिशाके मन्द गतिवाले वायुसे वे मालायें ज़रा-ज़रा हिलती थीं। उनके अन्दर सञ्चार करनेवाला पवन-श्रवण-सुखद शब्द करता था; यानी हवा के कारण जो आवाज़ निकलती थी, वह कानों को सुखदायी और प्यारी लगती थी। उस शब्द से ऐसा मालूम होता था, गोया वह प्रियभाषी की तरह, इन्द्र के निर्मल यश का गान करता हो। उस सिंहासन के आश्रय से, वायव्य और उत्तर दिशा तथा पूर्व और उत्तर दिशा के वीच में स्वर्गलक्ष्मी के मुकुट-जैसे, चौरासी हज़ार सामानिक देवताओं के चौरासी हज़ार-भद्रासन वने हुए थे। पूर्वमें आठ अग्र महिषी यानी इन्द्राणियों के आठ आसन थे। वे सहोदरों के समान एकसे आकार से शोभित थे। दक्खन-पूरब के वीच में अभ्यन्तर सभा-के सभासदों के वारह हज़ार भद्रासन थे। दक्खन मे मध्य सभा के सभासद् —चौदह हज़ार देवताओ के अनुक्रम से चौदह हज़ार भद्रासन थे। दक्खन-पश्चिम के वीच मे, वाहरी सभा के सोलह हज़ार देवताओं के सोलह हज़ार सिंहासनों की पंक्तियाँ थीं। पश्चिम दिशा में, एक दूसरे के प्रतिविम्ब के समान सात प्रकार की सेना के सेनापति देवताओं के सात आसन थे और मेरु पर्वत के चारों तरफ जिस तरह नक्षत्र शोभते हो, उसीतरह शक्र-सिंहासन के चौतरफा चौरासी हज़ार आत्म-रक्षक देवताओं के चौरासी हज़ार आसन सुशोभित थे। इस तरह सारे विमान की रचना करके आभियोगिक देवताओंने इन्द्र

को खबर दी, तब इन्द्र ने तत्काल उत्तर वैक्रिय रूप धारण किया, इच्छानुसार रूप बनाना, देवताओंका स्वभाव है।

सौधर्मेन्द्र का विमान पर चढ़ना।

इसके बाद मानों दिशाओ की लक्ष्मीही हो ऐसी आठ पटरानियों-सहित, गन्धर्व और नटों का तमाशा देखते हुए, इन्द्रने सिंहासन की प्रदक्षिणा की और पूर्व ओर की सीढ़ियोंकी राहसे, अपनी मान-प्रतिष्ठा या अपने उच्चपद के योग्य उन्नत सिंहासन पर चढ़ गया। उसके अंग के प्रतिबिम्ब या अक्स के माणिक की दीवारों पर पड़ने से, उसके सहस्रों अंग दीखने लगे। वह पूरब तरफ मुंह करके अपने आसनपर जा बैठा। इसके पीछे, उसके दूसरे रूप के समान सामानिक देव, उत्तर ओर की सीढियों से चढ़ कर, अपने-अपने आसनों पर जा बैठे, तब और देवता भी दक्खन तरफ की सीढ़ियों से चढ़-चढ़ कर अपने-अपने आसनों-पर जा बैठे: क्योंकि स्वामी के पास आसन का उल्लङ्घन नहीं होता। सिंहासन पर बैठे हुए इन्द्र के सामने दर्पण प्रभृति आठो मांगलिक पदार्थ शोभा देरहे थे। सचीपति के सिरपर चन्द्रमाके समान छत्र सुशोभित था। चलते-फिरते हंसों की तरह दोनों तरफ चँवर ढुल रहे थे। झरनों से पर्वत शोभा देता है, उसीतरह पताकाओं से सुशोभित आठ हज़ार मील ऊँचा एक 'इन्द्रध्वज' विमान के आगे फरक रहा था। उस समय, नदियों से घिरनेपर जिस तरह समुद्र शोभता है उसी तरह, सामानिक आदि देव-

ताओं से घिरकर इन्द्र शोभने लगा। अन्य देवताओं के विमानों-से वह विमान घिरा हुआ था, इसलिये मण्डलाकार चैत्यों से घिरा हुआ जिस तरह मूल चैत्य शोभता है; उसी तरह वह शोभता था। विमान की सुन्दर माणिक्यमय दीवारो के अन्दर एक दूसरे विमान का जो प्रतिविम्ब पड़ता था, उससे ऐसा मालूम होता था, मानो विमानों से विमानों को गर्भ रहा है; अर्थात् विमान के अन्दर विमान का धोखा होता था।

सौधर्मेन्द्र के विमान का रवानः होना और भगवान् के सूतिकागार के पास पहुँचना।

दिशाओं के मुखमें प्रतिध्वनि-रूप हुई वन्दीजनों की जयध्वनि से, दुंदुभि के शब्द से, गन्धर्व और नटोंके वाजोंकी आवाज़ से मानो आकाश को चीरता हो इस तरह, वह विमान, इन्द्र की इच्छा से, सौधर्म देवलोक के वीचमें होकर चला। सौधर्म देवलोक के उत्तर तरफ से ज़रा तिरछा होकर उतरता हुआ वह विमान, ८ लाख मील लम्बा-चौड़ा होने से जम्बू द्वीप को ढकने वाला ढक्कन सा मालूम होने लगा। उस समय राह चलनेवाले देव एक दूसरे से इस तरह कहने लगे—'हे हस्तिवाहन! दूर हट जाओ; आप के हाथी को मेरा सिंह देख न सकेगा। हे अश्वारोही महाशय! ज़रा दूर रहो। मेरे ऊँट का मिज़ाज बिगड़ा हुआ है, उसे क्रोध आरहा है, आपके घोड़े को वह सहन न करेगा। हे मृगवाहन! आप नज़दीक मत आओ, क्योंकि मेरा

के नाम नहीं जानता।' इन बातों से उसे धूर्त्त-मायावी समझ कर, पण्डिता ने दिल्लगी के साथ कहा—'तेरे कथनानुसार यह तेरा पूर्व जन्म का चरित्र है। ललिताङ्ग देव का जीव तू है और तेरी स्त्री स्वयंप्रभा, इस समय, नन्दीग्राम में, कर्मदोष से लँगड़ी होकर जन्मी है। उसे जाति-स्मरण हुआ है; इससे उसने अपना चरित्र इस पट में लिखकर, जब मैं धातकी खण्ड में गई थी, तब मुझे दे दिया। उस लँगड़ी पर दया आने से मैंने तुझे खोज निकाला; इसलिये अब तू मेरे साथ चल, मैं तुझे उसके पास धातकी खण्ड में ले चलूँ। हे पुत्र! वह ग़रीबनी तेरे वियोग के कारण बड़े दुःख से जीती है। इसलिये वहाँ चलकर, अपनी पूर्व जन्म की प्राणवल्लभा को आश्वासन कर—उसे तसल्ली दे।' ये बातें कहकर ज्योंही पण्डिता चुप हुई कि, उसके समवयस्क या लंगोटिया यारों ने उसकी दिल्लगी करते हुए कहा—'मित्र! आप को स्त्री-रत्न की प्राप्ति हुई है, इस से जान पड़ता है कि, आप के पुण्यका उदय हुआ है। इसलिये आप वहाँ जाकर, उस लूली स्त्री से मिलिये और सदा उसकी परवरिश कीजिये।' मित्रों की ऐसी मसखरी की बातें सुनकर दुर्दान्त लज्जित हो गया और बेची हुई वस्तु में से अवशिष्ट—बाक़ी रही हुई की तरह होकर, वहाँ से चला गया।

को पहलेकी अपेक्षा भी संक्षिप्त करता हुआ, इन्द्र जम्बूद्वीप के दक्खन भरतार्द्ध में, आदि तीर्थङ्करकी जन्मभूमिमें आ पहुँचा। सूर्य जिस तरह मेरु की प्रदक्षिणा करता है, उसी तरह वहाँ उस ने उस विमान से प्रभु के सूतिकागार की प्रदक्षिण की और घर के कोने में जिस तरह धन रखते हैं, उसी तरह ईशान कोण में उस विमान को स्थापन किया।

सौधर्मेन्द्रका भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम करना।

मरुदेवा माता को परिचय देना।

सौधर्मेन्द्र का भगवान् को ग्रहण करना।

पीछे महामुनि जिस तरह मान से उतरता है—मान का त्याग करता है—उसी तरह प्रसन्नचित्त शक्रेन्द्र विमान से उतर कर प्रभु के पास आया। प्रभु को देखते ही उस देवाधिपति ने पहले प्रणाम किया ; क्योंकि 'स्वामी के दर्शन होते ही प्रणाम करना स्वामी की पहली भेट है।' इस के बाद माता सहित प्रभु की प्रदक्षिणा करके, उसने फिर प्रणाम किया। क्योंकि भक्ति में पुनरुक्ति दोष नहीं होता ; यानी भक्ति में किये हुए काम को बारम्बार करने से दोष नहीं लगता। देवताओं द्वारा मस्तकपर अभिषेक किये हुए उस भक्तिमान् इन्द्र ने, मस्तक पर अञ्जलि जोड़कर, स्वामिनी मरुदेवा से इस प्रकार कहना आरम्भ किया :—"अपने पेट में रत्नरूप पुत्र को धारण करनेवाली

और जगदीपक को जननेवाली हे जगत्माता! मैं आप को नमस्कार करता हूँ। आप धन्य हैं, आप पुण्यवती हैं, और आप सफल जन्मवाली तथा उत्तम लक्षणोंवाली हैं। त्रिलोकीमें जितनी पुत्रवती स्त्रियाँ हैं, उन मे आप पवित्र हैं, क्योंकि आपने धर्म का उद्धार करने में अग्रसर और आच्छादित हुए मोक्ष-मार्ग-को प्रकट करनेवाले भगवान् आदि तीर्थङ्कर को जन्म दिया है, अर्थात् आप से धर्म को उद्धार करनेवाले और छिपे हुए मोक्ष-मार्ग को प्रकाशित करनेवाले भगवान् का जन्म हुआ है। हे देवि! मैं सौधर्म देवलोक का इन्द्र हूँ। आप के पुत्र अर्हन्त भगवान् का जन्मोत्सव मनाने के लिए यहाँ आया हूँ। इस लिये आप मुझ से भय, न करना—मुझ से ख़ौफ़ न खाना। ये बातें कहकर, सुरपति ने मरुदेवा माता के ऊपर अवस्वापनिका नाम की निद्रा निर्माण की और प्रभु का एक प्रतिविम्ब बनाकर उनकी बग़ल में रख दिया। पीछे इन्द्रने अपने पाँच रूप बनाये, क्योंकि ऐसी शक्तिवाला अनेक रूपों से स्वामी की योग्य भक्ति करना चाहता है। उनमें से एक रूप से भगवान् के पास आकर, प्रणाम किया और विनय से नम्र हो—'हे भगवन् आज्ञा कीजिये' यह कहकर कल्याणकारी भक्तिवाले उस इन्द्रने गोशीर्ष चन्दन से चर्चित अपने दोनों हाथों से मानो मूर्त्तिमान कल्याण हो इस तरह, भुवनेश्वर भगवान् को ग्रहण किया। एक रूप से जगत् का ताप नाश करने में छत्र रूप जगत्पति के मस्तकपर, पीछे खड़े होकर छत्र धारण किया, स्वामी की दोनों ओर,

बाहुदण्ड के समान दो रूपों से, दो सुन्दर चँवर धारण किये और एक रूप से मानो मुख्य द्वारपाल हो इस तरह वज्र धारण करके भगवान् के सामने खड़ा होगया। जय-जय शब्दों से आकाश को एक शब्दमय करनेवाले देवताओं से घिरा हुआ और आकाश जैसे निर्मल चित्तवाला इन्द्र पाँच रूपोंसे आकाश-मार्ग से चला। प्यासे पथिकों की नज़र जिस तरह अमृत सरोवर पर पड़ती है, उसी तरह उत्कंठित देवताओं की दृष्टि भगवान् के उस अद्भुत रूप पर पड़ी। भगवान् के उस अद्भुत रूप को देखने के लिए, आगे चलनेवाले देवता अपने पिछले भाग में नेत्रों के होने की इच्छा करते थे, यानी वे चाहते थे, कि अगर हमारे सिर के पीछे आँखे होतीं तो हम भगवान् के अद्भुत मनमोहन रूप का दर्शन कर सकते। अगल बगल चलने-वाले देवताओ की स्वामी के दर्शनो से तृप्ति नही हुई, इसलिये मानो उनके नेत्र स्तम्भित हो गये हों, इस तरह अपने नेत्रों को दूसरी ओर नही फेर सके। पीछे वाले देवता भगवान् के दर्शनों की इच्छा से आगे आना चाहते थे, इसलिए वे उल्लंघन करनेमें अपने मित्र और स्वामियों की पर्वा नहीं करते थे। इस के बाद देवपति इन्द्र, हृदय में रक्खे हों इस तरह भगवान् को अपने हृदय से लगाकर मेरु पर्वत पर गया। यहाँ पाण्डुक वनमे, दक्षिन चूलिका पर, अतिपाण्डुक वला शिलापर, अर्हन्त स्नात्र के योग्य सिंहासनपर; पूर्व दिशा का स्वामी इन्द्र, हर्ष के साथ, प्रभु को अपनी गोद में लेकर बैठा।

जिस समय सौधर्मेन्द्र मेरु पर्वत के ऊपर आया, उस समय महाघोषा घण्टी से ख़बर पाकर, अट्ठाईस लाख देवों से घिरा हुआ त्रिशूलधारी वृषभवाहन ईशान कल्पाधिपति ईशानेन्द्र अपने पुष्पक नामक आभियोगिक देवों द्वारा बनाये हुए पुष्पक विमान में बैठ कर दक्खन दिशा की राहसे, ईशान कल्प से नीचे उतरकर और ज़रा तिरछा चलकर, नन्दीश्वर द्वीप में आ, उस द्वीप के ईशान कोण में स्थित रतिकर पर्वतपर, सौधर्मेन्द्र की तरह अपने विमान का छोटा रूप बनाकर, मेरु पर्वत पर भगवान् के निकट भक्ति सहित आया। सनतकुमार इन्द्र भी १२ लाख विमान-वासी देवताओं से घिरकर और सुमन नामक विमान में बैठकर आया। महेन्द्र नामक इन्द्र, आठ लाख विमान-वासी देवताओं सहित, श्रीवत्स नामक विमान में बैठकर, मनके जैसी तेज़ चालसे आया। ब्रह्मेन्द्र नामक इन्द्र, विमान-वासी चार लाख देवताओंके साथ, नंद्यावर्त नामक विमानमें बैठकर, स्वामी के पास आया। लान्तक नामक इन्द्र, पचास हज़ार विमान-वासी देवताओं के साथ, कामगव नामक विमानमें बैठकर जिनेश्वर के पास आया। शुक्र नामक इन्द्र, चालीस हज़ार विमान-वासी देवताओं के साथ, पीतिगम नामक विमानमें बैठकर, मेरु पर्वत पर आया। सहस्रार नामक इन्द्र छः हज़ार विमान-वासी देवताओंके साथ मनोरम नामक विमानमें बैठकर, जिनेश्वरके पास आया। आनँतप्राणत देवलोकका इन्द्र, चार सौ विमान-

वासी देवताओंके साथ अपने विमल नामक विमानमें बैठकर आया और आरणाच्युत देवलोकका इन्द्र भी तीन सौ विमान-वासी देवताओंके साथ, अपने अति वेगवान सर्वतोभद्र नामक विमानमे बैठकर आया।

उस समय रत्नप्रभा पृथ्वीकी मोटी तहमें निवास करने वाले भुवनपति और व्यन्तरके इन्द्रोंके आसन काँप उठे। चमरचंचानाम की नगरी मे, सुधर्मा सभाके अन्दर चमर नामक सिंहासनपर, चमरासुर—चमरेन्द्र बैठा हुआ था। उसने अवधिज्ञानसे भगवानके जन्मका समाचार जानकर सम्पूर्ण देवताओंको सूचित करनेके लिए, अपने द्रुम नामके सेनापतिसे औघघोषा नामकी घण्टी बजवाई। इसके, बाद अपने ६४ हज़ार सामानिक देवों, ३३ त्रायत्रिंशक गुरुस्थानीय देवों, चार लोक पाल, पाँच अग्र महिषी या पटरानी, अभ्यन्तर—मध्य—बाह्य तीन परिषदोंके देव, सात प्रकारकी सेना, सात सेनाधिपति और चारों दिशाओंके ६४ हज़ार आत्मरक्षक देव तथा अन्य उत्तम ऋद्धिवाले असुर कुमार देवोंसे घिरा हुआ, आभियोगिक देवके तत्काल रचे हुए, ४००० मील ऊँचे, दीर्घ ध्वजासे सुशोभित और चार लाख मीलके विस्तार वाले विमानमें बैठकर भगवान्‌का जन्मोत्सव मनानेकी इच्छासे चला। वह चमरेन्द्रभी शक्रेन्द्रकी तरह अपने विमानको राहमें छोटा करके, भगवान्‌के आगमनसे पवित्र हुई मेरु पर्वत की चोटी पर आया। वलि चँचा नामकी नगरीका वलि नामका इन्द्रभी, महौघस्वराघ नामका घण्टा बजवाकर महाद्रुम नामके

सेनापतिके वुलानेसे आये हुए, साठ हजार सामानिक देव और इनसे चौगुने आत्मरक्षक देव एवं अन्य त्राय त्रिंशक प्रभृति देवों सहित, चमरेन्द्रकी तरह अमन्द आनन्दके मन्दिर रूप मेरू पर्वत पर आया। नाग कुमारका धरण नामक इन्द्र मेघस्वरा नामकी घण्टी वजवाकर, भद्रसेन नामके अपनी पैदल सेनाके सेनापति द्वारा वुलाये हुए छः हज़ार सामानिक देवताओं और उनसे चार गुने आत्मरक्षक देव, छः पटरानी एवं अन्यभी नाग-कुमारके देवोंको साथ लेकर दो लाख मील लम्बे चौड़े और दो हज़ार मील ऊँचे और इन्द्र ध्वजसे सुशोभित विमानमें वैठकर भगवान्के दर्शनके लिए उत्सुक होकर मन्दराचल या मेरु पर्वत के ऊपर क्षणभरमें आया। भूतानन्द नामक नागेन्द्र, अपनी मेघ-स्वरा नामकी घण्टी वजवाकर दक्ष नामक सेनापति द्वारा वुलाये हुए सामानिक प्रभृति देवताओ सहित अभियोगिक देवताके वनाये हुए विमानमें वैठकर, तीन लोकके नाथसे सनाथ हुए मेरु पर्वत पर आया। इसी तरह विद्युत्कुमारके इन्द्र हरि और हरिसह, सुवर्णकुमारके इन्द्र वेणुदेव और वेणुदारी, अग्निकुमारके इन्द्र अग्निशिख और अग्निमाणव वायुकुमारके इन्द्र वेलम्ब और प्रभञ्जन स्तनित कुमारके इन्द्र सुघोष और महा घोष, उदधी कुमारके इन्द्र जलकान्तक और जलप्रभ, द्वीप कुमारके इन्द्र पूर्ण और अविष्ट एवं दिक्कुमारके इन्द्र अमित और अमितवाहन भी वहाँ आये।

व्यन्तरोंमें पिशाचोंके इन्द्र काल और महाकाल, भूतोंके इन्द्र सुरुप और प्रतिरूप, यक्षोके इन्द्र पूर्णभद्र और मणिभद्र, राक्षसों के इन्द्र भीम और महाभीम, किन्नरोंके इन्द्र किन्नर और किंपुरुष, किंपुरुषोंके इन्द्र सत्पुरुष और महापुरुष, महोरगके इन्द्र अतिकाय और महाकाय, गन्धर्वोंके इन्द्र गीतरति और गीतयशा अप्रज्ञप्ति और पंच प्रज्ञप्ति वगेर: व्यन्तरोंके दूसरे आठ निकाय, उनके सोलह इन्द्र, उसमेसे अप्रज्ञप्तिके इन्द्र सनिहित और समानक पंच प्रज्ञप्तिके इन्द्र धाता और विधाता, ऋषिवादिके इन्द्र ऋषि और ऋषिपालक, भूतवादिके इन्द्र ईश्वर और महेश्वर, क्रन्दितके इन्द्र सुवत्सक और विशालक, महाक्रन्दितके इन्द्र हास और हासरति, कुष्माडके इन्द्र श्वेत और महाश्वेत, पावकके इन्द्र, पवक और पवकपति, ज्योतिष्कोंके असंख्यात सूर्य और चन्द्र इन दो नामोंके ही इन्द्र, इस प्रकार कुल चौसठ इन्द्र मेरु पर्वत पर एक साथ आये ।

देव कृत जन्मोत्सव

इसके बाद अच्युत इन्द्रने जिनेश्वरके जन्मोत्सवके लिये उपकरण या सामग्री लानेकी-अभियोगिक देवताओंको आज्ञा दी और उसी समय ईशान दिशाकी तरफ जाकर, वैक्रिय समुद्घातसे क्षणभर में उत्तम पुद्गलोंको आकर्षणकर, सुवर्णके, चाँदीके, रत्नके, सुवर्ण और चाँदीके, सुवर्ण और रत्नके, सोने

चाँदी और रत्नोके एवं मिट्टीके आठ माइल ऊँचे आठ तरहके प्रत्येक देवने एक हज़ार आठ सुन्दर कलश बनाये। कलशों की संख्याके प्रमाणसे उसी तरह सुवर्णादिकी आठ प्रकार की झारियाँ, दर्पण, रत्न, करण्डक, डिब्बियाँ, थाल, पात्रिका, फूलों की भंगेरी,—ये सब मानो पहलेसे ही बनाकर रखी हों, इस तरह तत्काल बनाकर वहाँ से लाये। पीछे वर्षा के जलकी तरह क्षीर समुद्र से उन्होंने कलश भर लिये और मानो इन्द्र को क्षीर समुद्र के जल का अभिज्ञान कराने के लिये ही हो, इस तरह पुण्डरीक, उत्पल और कोकनद जाति के कमल भी वहीं से संग ले लिये। जल भरनेवाले पुरुष घड़े से जलाशय मे जल ग्रहण करें, उस तरह हाथ में घडे लिये हुए देवोंने पुष्करवर समुद्र से पुष्कर जात के कमल ले लिये। मानो अधिक घड़े बनाने के लिये ही हों, इस तरह मागध आदि तीर्थों से उन्होंने जल और मिट्टी ली। जिस तरह ख़रीद करनेवाले पुरुष बानगी लेते हैं उसी तरह गंगा आदि महा नदियों से उन्होंने जल ग्रहण किया। मानो पहलेसे ही धरोहर रखी हो, इस तरह क्षुद्र हिमवन्त पर्वत से सिद्धार्थ पुष्प, श्रेष्ठ गन्ध द्रव्य और सर्वौषधियाँ लीं। उसी पहाड़ के ऊपर के पद्म नाम के सरोवर से निर्मल, सुगन्धित और पवित्र जल और कमल लिये। एक ही काम में लगे रहने से मानो स्पर्द्धा करते हों, इस तरह उन्होंने दूसरे पर्वत के तालाबोंमें से पद्म प्रभृति लिये। सब क्षेत्रोंमें से, वैताढ्य के ऊपरसे और विजयोंमें से, अतृप्त के सदृश देवताओं ने, स्वामी के

प्रसाद के समान जल और कमल प्रभृति लिये। मानो उनके लिये ही इकट्ठी करके रक्खी हों, इस तरह वक्षस्कार पर्वत के ऊपर से दूसरी पवित्र और सुगन्धित वस्तुएँ उन्होंने लीं। मानो कल्याण से अपने आत्मा को ही भरते हों, इस तरह आलस्य रहित उन देवताओं ने देवकुरु और उत्तर कुरुक्षेत्र के सरोवरोंसे कलश जलसे भर लिये। भद्रशाल, नन्दन, सौमनस और पाण्डुक वनमें से उन्होंने गोशीर्ष चन्दन आदि वस्तुयें ली। गन्धी जिस तरह सब तरह के गन्ध द्रव्यों को एकत्रित करता है, उसी तरह वे गन्ध द्रव्य और जलको एकत्रिन करके तत्काल मेरु पर्वतपर आये।

अब दस हज़ार सामानिक देव, चालीस हज़ार आत्मरक्षक देव, तैंतीस त्रायस्त्रिंशत् देव, तीनों सभाओं के सब देव, चार लोकपाल, सात बड़ी सेना, और सात सेनापतियों से घिरे हुए आरणाच्युत देवलोकका इन्द्र, पवित्र होकर, भगवान् को स्नान कराने के लिए तैयार हुआ। पहले उस अच्युत इन्द्रने उत्तरासंग करके नि संग भक्ति से, खिले हुए पारिजात प्रभृति पुष्पों की अञ्जलि ग्रहण कर, और सुगन्धित धूप से धूपित कर, त्रिलोकी-नाथ के पास वह कुसुमाञ्जलि रक्खी। इसी समय देवताओं ने भगवान् की सानिध्यता प्राप्त होने के अद्भुत आनन्दसे मानो हँसते हों ऐसे और पुष्पमालाओं से चर्चित किये हुए सुगन्धित जल के घड़े वहाँ लाकर रक्खे। उन जल कलशों के मुँहपर भौंरों के शब्दों से शब्दायमान हुए कमल रक्खे थे। इससे ऐसा मालूम

होता था, मानो वे भगवान् के प्रथम स्नात्र मंगल का पाठ कर रहे हों और स्वामी के स्नान कराने के लिये पातालमें से आये हुए पाताल कलश हों, वे ऐसे कलश मालूम होते थे। अच्युत इन्द्रने अपने सामानिक देवताओं के साथ, मानो अपनी सम्पत्तिके फल रूप हो ऐसे १००८ कलश ग्रहण किये। ऊँचे किये हुए भुजदण्ड के अग्रवर्त्ती ऐसे वे कलश, जिनके दण्डे ऊंचे किये हों ऐसे कमल कोश की शोभा की विडम्बना करते थे; अर्थात् उनसे भी जियादा सुन्दर लगते थे। पीछे अच्युतेन्द्र ने अपने मस्तक की तरह कलश को ज़रा नवाँकर जगत्पति को स्नान कराना आरम्भ किया। उस समय कितने ही देवता गुफा में होनेवाले प्रति शब्दों से मानो मेरु पर्वत को वाचाल करते हों इस तरह आनक नामके मृदंग को बजाने लगे। भक्ति मे तत्पर ऐसे कितने ही देवता, मथन करते हुए महासागर की ध्वनि की शोभा को चुरानेवाली आवाज़ की दुंदुभिको बजाने लगे।

जिस तरह पवन आकुल ध्वनिवाले प्रवाह की तरंगों को भिडाता है; उसी तरह कितने ही देवता, ऊँची ताल से झाँझोंको परस्पर भिड़ा-भिड़ा कर बजाने लगे। कितने ही देवता, मानो ऊर्ध्व लोक में जिनेन्द्र की आज्ञा का विस्तार करती हो, ऐसी ऊँचे मुँहवाली भेरी को ज़ोर-ज़ोर से बजाने लगे। जिस तरह ग्वालिये किसी ऊँचे स्थानपर खड़े होकर सींगिया बजाते हैं; उसी तरह देवता मेरु-शिखरपर खड़े होकर 'काहल' नाम का बाजा बजाने लगे। कितने ही देवता, जिस तरह दुष्ट शिष्योंको

हाथ से पीटते हैं, उसी तरह उद्घोष करने के लिए अपने मृदङ्ग नामक बाजे को पीटने लगे ; यानी मृदङ्ग बजाने लगे। कितने ही वहाँ आये हुए देवता, असंख्य सूरज और चन्द्रमा की कान्ति को हरनेवाली सोने और चाँदी की झाँझों को बजाने लगे। कितने ही देवता मानो मुँह में अमृत भरा हो, इस तरह गाल फुलाकर शंख बजाने लगे। इस तरह देवताओं के बजाये हुए विचित्र प्रकार के बाजों की प्रतिध्वनि से मानो आकाश भी, बिना बाजा बजानेवाले के, एक बाजे-जैसा होगया। चारण मुनि—'हे जगन्नाथ! हे सिद्धिगामि! हे कृपासागर! हे धर्म-प्रवर्त्तक! आपकी जय हो, आपका कल्याण हो'—इस तरहके ध्रुपद, उत्साह, स्कन्धक, गलित और वस्तुवदन—प्रभृति पद्य और मनोहर गद्य से स्तुति करने के बाद अपने परिवार के देवताओं के साथ अच्युतेन्द्र भुवनभर्त्ता के ऊपर धीरे-धीरे कलशों का जल डालने लगे। भगवान् के सिरपर जलधाराकी वृष्टि करनेवाले वे कलश मेरु पर्वत की चोटीपर बरसनेवाले मेघों की तरह शोभा देने लगे। भगवान् के मस्तक के दोनों तरफ देवताओं द्वारा झुकाये हुए वे कलश माणिक्य-निर्मित मुकुट की शोभा को धारण करने लगे। आठ-आठ मील के मुँह वाले घड़ोंमें से गिरनेवाली जल-धारायें, पर्वत की गुहाओं मे से निकलनेवाले झरनों के समान शोभा देने लगीं। प्रभु के मुकुटभाग से उछल-उछलकर चारों तरफ गिरनेवाले जल के छींटें—धर्मरूपी वृक्ष के अङ्कुर के समान शोभने लगे। प्रभु के

शरीरपर पड़ते ही मण्डलाकार हुआ कुम्भजल मस्तक के ऊपर सफेद छत्र के समान, ललाट-भागपर फैला हुआ कान्तिमान ललाट के आभूषण जैसा, कर्ण भाग में वहाँ आकर विश्रान्ति को प्राप्त हुए नेत्रों की कान्ति जैसा, कपोल भाग में कपूर की पत्र रचना के समूह जैसा, मनोहर होठोंपर विशद हास्य की कान्ति के समान, कंठ देश में मनोहर मुक्तामाल जैसा, कन्धोंपर गोशीर्ष चन्दन के तिलक जैसा, भुजा, हृदय और पीठपर विशाल वस्त्रके सदृश एवं कमर और घुटनों के बीच में विस्तृत उत्तरीय वस्त्रके समान—इस तरह क्षीरोदधि—क्षीर सागर का सुन्दर जल भगवान् के प्रत्येक अङ्ग में जुदी-जुदी शोभा को धारण करता था। जिस तरह चातक—पपैहिया—मेहके जलको ग्रहण करता है; उसी तरह कितने ही देवता भगवान् के स्नान के जल को ज़मीनपर पड़ते ही श्रद्धासे ग्रहण करने लगे। ऐसा जल फिर कहाँ मिलेगा,—यह विचार करके कितने ही देवता उसे, मरु-देश या मारवाड़ के लोगों की तरह, अपने-अपने सिरों पर छिड़कने लगे। कितने ही देवता, गरमी से घबराये हुए हाथि-योंकी तरह, अभिलाप-पूर्व्वक, उस जल से अपने-अपने शरीर सींचने लगे। मेरु पर्वत की चोटियोंपर, ज़ोर से फैलनेवाला वह जल चारों तरफ हज़ार नदियों की कल्पना कराने लगा और पांडुक, सौमनस, नन्दन तथा भद्रशाल बाग़ीचों में फैलनेवाला वह जल धारों की लीलाको धारण करने लगा।' स्नान करते-करते भीतर का जल कम होने से नीचे मुखवाले इन्द्र के घड़े मानों

स्नात्र-जल रूपी सम्पत्ति कम होने से लज्जित हुए से जान पड़ने लगे। उस समय इन्द्र की आज्ञा के अनुसार चलनेवाले आभियोगिक देवता उन घड़ों को दूसरे घड़ों के जल से भर देते थे। एक देवता के हाथ से दूसरे देवता के हाथमें—इस तरह अनेकों के हाथों में जानेवाले वे घड़े श्रीमानों के बालकों की तरह शोभते थे। नाभिराज के पुत्र के समीप रक्खी हुई कलशों की पंक्तियाँ आरोपण किये हुए सोने के कमलों की माला की लीला को धारण करती थीं। पीछे मुखभाग में जल का शब्द होनेसे मानो वे अर्हन्त की स्तुति करते हों ऐसे कलशों को देवता फिर से स्वामी के सिरपर ढोलने लगे। यक्ष जिस तरह चक्रवर्त्ति के धन-कलश को पूर्ण करते हैं; उसी तरह देवता प्रभु के स्नान करने से ख़ाली हुए, इन्द्रके घड़ों को जलसे पूर्ण कर देते थे। वारम्बार ख़ाली होने और भरे जानेवाले वे घड़े सञ्चार करनेवाले घटीयत्र के घण्टों की तरह सुन्दर मालूम होते थे। अच्युतेन्द्र ने करोड़ों घड़ों से प्रभु को स्नान कराया, और' अपनी आत्मा को पवित्र किया, यह आश्चर्य्य की बात है! इसके बाद चारण और अच्युत देवलोक के स्वामी अच्युत इन्द्र ने दिव्यगंध काषायी वस्त्र से प्रभु के अंग को पोंछा। उसके साथ ही अपनी आत्मा को भी मार्जन किया। प्रातःकाल की अभ्रलेखा जिस तरह सूर्यमण्डल को छूनेसे शोभा पाती है; उसी तरह गंध काषायी वस्त्र भगवान् के शरीर का स्पर्श करने से शोभायमान् लगता था। साफ किया हुआ भगवान् का शरीर सुवर्णसागरके

सर्वस्व जैसा था और वह सुवर्णगिरि—मेरु के एक भाग से बनाया हुआ हो ऐसा देदीप्यमान था।

इसके बाद अभियोगिक देवताओंने गोशीर्ष चन्दन के रसका कर्दम सुन्दर और विचित्र रक़ावियों में भरकर अच्युतेन्द्र के पास रक्खा, तब चन्द्रमा जिस तरह अपनी चाँदनी से मेरु पर्वत के शिखर को विलेपित करता है; उसी तरह इन्द्र ने प्रभु के अंग पर उसका विलेपन करना आरम्भ किया। कितने ही देवताओं ने उत्तरासङ्ग धारण करके यानी कन्धेपर दुपट्टा डालकर, प्रभुके चारों तरफ अतीव सुगन्धिपूर्ण धूपदानी हाथों में लेकर खड़े हो गये। कितने ही उसमें धूप डालते थे। वे चिकनी-चिकनी धूएँ की रेखासे मानो मेरु पर्वत की दूसरी श्याम रंग की चूलिका बनाते हों, ऐसे मालूम देते थे। कितने ही देवता प्रभुके ऊपर ऊँचा सफेद छत्र धारण करने लगे। इससे वे गगनरूपी महा सरोवर को कमलवाला करते हुएसे जान पड़ते थे। कितने ही चँवर ढोलने लगे। इससे वे स्वामी के दर्शनों के लिए अपने नातेदारों को बुलाते हों ऐसे मालूम होते थे। कितने ही देवता कमर बाँधे हुए आत्मरक्षककी तरह अपने हथियार लगाकर स्वामी के चारों तरफ खड़े थे। मानो आकाश स्थित विद्युल्लता या चंचला बिजली की लीला को बताते हों, इस तरह कितने ही देवता मणिमय और सुवर्णमय पंखोंसे भगवान्‌को हवा करने लगे। कितनेही देवता मानो दूसरे रङ्गाचार्य हों इसतरह विचित्र-विचित्र प्रकारके दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि हर्षोत्कर्ष पूर्व्वक करने लगे।

कितने ही देवता मानो अपने पापका उच्चाटन करते हों, इस तरह अत्यन्त सुगन्धिपूर्ण द्रव्योंका चूर्ण कर चारों दिशाओंमें बरसाने लगे। कितने ही देवता मानो स्वामी द्वारा अधिष्ठित मेरु पर्वतकी ऋद्धि बढ़ानेकी इच्छा रखते हों इस तरह सुवर्णकी वर्षा करने लगे। कितनेही देवता स्वामीके चरणोंमें प्रणाम करने के लिये उतरनेवाले तारोंकी पंक्तियाँ हों ऐसी रत्नोंकी वृष्टि करने लगे ; अर्थात् देवतागण जो रत्नोंकी वर्षा करते थे, उससे ऐसा मालूम होता था; गोया प्रभुकी वन्दना करने के लिए आस्मानसे सितारोंकी क़तारें उतर रही हों। कितनेही देवता अपने मधुर और मीठे स्वरसे गन्धर्वोंकी, सेनाका भी तिरस्कार करनेवाले नये-नये ग्राम और रागोंसे भगवान् के गुण-गान करने लगे। कितनेही देवता मढ़े हुए; घन और छेदों वाले बाजे बजाने लगे , क्योंकि भक्ति अनेक प्रकारसे होती है। कितने ही देवता मानो मेरुपर्वतके शिखरोंको भी नचाना चाहते हों, इस तरह अपने चरण-प्रहारसे उसको कँपाते हुए नचाने लगे। कितने ही देवता दूसरी वारांगना हों इस तरह अपनी स्त्रियोंके साथ विचित्र प्रकारके अभिनयसे उज्ज्वल नाटक करने लगे। कितने ही देवता पँखों वाले गरुड़की तरह आकाशमें उड़ने लगे। कितनेही मुर्गे की तरह ज़मीनपर फड़कने लगे। कितने ही हंसकी सी सुन्दर चालसे चलने लगे। कितने ही सिंहकी तरह सिंहनाद करने लगे। कितने ही हाथियोंकी तरह चिङ्घाड़ते थे। कितने ही घोड़ोंकी तरह खुशीसे हिनहिनाते थे। कितने ही रथकी तरह घनघनाहट

जिस रातको देवलोकसे च्यवकर प्रभु माताके गर्भमें आये, उस रातको निवास-भवनमें
[पृष्ठ १५२]

की आवाज़ करते थे। कितने ही विदूषक या मसखरेकी तरह चार प्रकारके शब्द बोलते थे। कितने ही बन्दर जिस तरह वृक्षों की शाखाओंको हिलाते हैं, उस तरह अपने पाँवोंसे पर्वत-शिखर को कँपाते हुए कूदते थे। कितने ही मानो रणसंग्राममें प्रतिज्ञा करनेको तैयार हुए योद्धा हों, इस तरह अपने हाथोंकी चपेटसे पृथ्वीके ऊपर ताड़ना करते थे। कितने ही मानो दाव जीते हों, इस तरह हल्ला मचाते थे। कितने ही बाजोंकी तरह अपने फूले हुए गालोंको बजाते थे। कितने ही नटकी तरह विकृत रूप बनाकर लोगोंको हँसाते थे। कितनेही आगे पीछे और अगल-बग़लमें गेंदकी तरह उछलते थे। स्त्रियाँ जिस तरह गोलाकार होकर रास करती हैं; उसी तरह कितने ही गोलाकार फिरते हुए रासकी तरह गाते और मनोहर नाच करते थे। कितनेही आगकी तरह प्रकाश करते थे। कितने ही सूर्यकी तरह तपते थे। कितने ही मेघकी तरह गरजना करते थे। कितने ही चपलाकी तरह चमकते थे। कितनेही नाक तक खूब खाये हुए विद्यार्थीकी तरह दिखाव करते थे। स्वामीकी प्राप्तिसे हुए उस आनन्दको कौन छिपा सकता था? इस तरह देवता अनेक तरहके आनन्दके विचार कर रहे थे, उस समय अच्युतेन्द्रने प्रभुके विलेपन किया। उसने पारिजात प्रभृति के खिले हुए फूलोंसे प्रभुकी भक्ति-पूर्वक पूजाकी और ज़रा पीछे हटकर भक्तिसे नम्र होकर शिष्यकी तरह भगवान् की वन्दना की।

———

सौधर्मेन्द्रकी प्रभु-भक्ति ।

बड़े भाईके पीछे दूसरे सहोदरोंकी तरह, अन्य बासठ इन्द्रों ने भी उसी तरह स्नात्र और विलेपनसे भगवान् की पूजाकी।

पीछे सुधर्म इन्द्रकी तरह ईशान इन्द्रने अपने पाँचों रूप बनाये। उनमेसे एक रूपसे भगवान को गोद में लिया, एक रूपसे मोतियोंकी झालरे लटकानेसे मानो दिशाओंको नाच करनेका आदेश करता हो, इस तरह कपूर जैसा सफेद छत्र प्रभुके ऊपर धारण किया। मानो खुशीसे नाचते हों इस तरह हाथोंको विक्षेप करके दोनों रूपसे प्रभुके दोनों तरफ चँवर ढोरने लगा और एक रूपसे मानो अपने तईं प्रभुके दृष्टिपात से पवित्र करनेकी इच्छा रखता हो, इस तरह हाथमे त्रिशूल लेकर प्रभुके आगे खड़ा हो गया।

इसके बाद सौधर्मकल्पके इन्द्रने जगत्पतिके चारों ओर स्फटिक मणिके चार बैल बनाये। ऊँचे ऊँचे सींगों वाले वे चारो बैल दिशाओंमें रहने वाले चन्द्रकान्त मणिके चार कीड़ा-पर्वत हों, इस तरह शोभने लगे। मानों पाताल फोड़ा हो, इस तरह उन बैलों के आठों सींगोंसे आकाशमे जल-धारा चलने लगी। मूलमेंसे अलग-अलग निकली हुई, पर अन्तमें जा मिली हुई वे जलधारायें, नदी के संगमका विभ्रम कराने लगीं। देवता और असुरोंकी स्त्रियाँ द्वारा कौतुकसे देखी हुई वे जलधारायें नदियोंके समुद्रमें गिरने की तरह प्रभु पर गिरने लगीं। जलयंत्रके जैसे उन सींगोंमें से निकलते हुए जलसे इन्द्रने तीर्थङ्करको स्नान कराया। जिस तरह भक्तिसे

हृदय आर्द्र होता है, उसी तरह दूर उछलने वाले भगवान् के स्नानके जलसे देवताओंके कपड़े आर्द्र होगये यानी तर होगये। जिस तरह ऐन्द्रजालिक अपने इन्द्रजालका उपसंहार करता है, उस तरह इन्द्रने उन चारों बैलोंका उपसँहार किया। स्नान करानेके बाद, घनी प्रीतिवाले उस देवराज ने देवदूष्य वस्त्रसे प्रभुके शरीरको रत्नके आईनेकी तरह पोंछा। रत्न-निर्म्मित पट्टे के ऊपर निर्मल और चाँदीके अखण्ड अक्षतोंसे प्रभुके पास अष्ट मङ्गल बनाये। पीछे, मानो बड़ा अनुराग हो इस तरह उत्तम अङ्गरागसे त्रिजगत् गुरुके अङ्गमें विलेपनकर प्रभुके हँसते हुए मुख रूपी चन्द्रकी चाँदनीके भ्रमको उत्पन्न करने वाले उज्ज्वल दिव्य वस्त्रोंसे इन्द्रने पूजाकी और प्रभुके मस्तक पर विश्वके मुखियत्वका चिह्न रूप वज्र यानी हीरे और माणिकों का सुन्दर मुकुट पहनाया। पीछे इन्द्रने सन्ध्या-समय आकाशमें पूरब पश्चिम तरफ जिस तरह सूरज और चन्द्रमा शोभा देते हैं, उसी तरहकी शोभा देने वाले दो सोनेके कुण्डल स्वामीके कानोंमें पहनाये। मानो लक्ष्मीके झूलनेका झूलाही हो वैसी विस्तार वाली मोतियोंकी माला स्वामीके गलेमें पहनायी। सुन्दर हाथीके बच्चे के दाँतोंमें जिस तरह सोनेके कंकण पहनाये जाते हैं, उसी तरह प्रभुके बाहु दण्डोंपर दो बाजूबन्ध पहनाये।

सौधर्मेंद्र का प्रभु को स्तुति करना।

वृक्ष की शाखाके अन्तिम भाग के गुच्छे जैसे गोलाकार बड़े

वड़े फ़ार मोतियोंके मणिमय कंकण प्रभुके पहुँचे पर पहनाये। भगवान्‌की कमरमें वर्षधर पर्वतके नितम्ब भाग पर रहने वाले सुवर्ण कुलके विलासको धारण करने वाले सोनेका कटिसूत्र यानी सोनेकी करधनी पहनायी। और मानो देवताओं और दैत्योंका तेज उनमें लगाहो, ऐसे माणिक्यमय तोड़े प्रभुके दोनों चरणोंमें पहनाये। इन्द्रने जो जो आभूषण या गहने भगवान्‌के अंगको अलंकृत करनेके लिए पहनाये, वे आभूषण या ज़ेवर भगवान्‌के अंगोंसे उल्टे अलंकृत होगये; यानी इन्द्रने गहने तो पहनाये थे, प्रभुके अंगोंके सजानेको, लेकिन उल्टे वे प्रभुके अंगोंसे सज उठे। गहनोंसे भगवानके अङ्गोंकी शोभावृद्धि होनेके वजाय उल्टी गहनोंकी शोभा बढ़ गई। पीछे भक्तियुक्त चित वाले इन्द्रने प्रफुल्लित पारिजातके फूलोंकी मालासे प्रभुकी पूजाकी और पीछे मानो कृतार्थ हुआ हो इस तरह ज़रा पीछे हट कर प्रभुके सामने खड़ा हो, जगत्पतिकी आरती करने के लिए आरती ग्रहणकी। जाज्वल्यमान् कान्तिवाली उस आरती से, प्रकाशित औषधि वाले शिखरसे, जिस तरह महागिरि शोभित होता है; उसी तरह इन्द्र शोभित होने लगा। श्रद्धालु देवताओंने जिसमें फूल बखेरे थे, वह आरती इन्द्र ने प्रभु पर से तीन वार उतारी। पीछे भक्ति से रोमाञ्चित हो, शक्रस्तवसे वन्दना कर; इन्द्रने इस प्रकार प्रभुकी स्तुति करनी आरम्भ कीः—

"हे जगन्नाथ! त्रैलोक्य कमल मार्तण्ड! हे संसार-मरुस्थल में कल्पवृक्ष! हे विश्वोद्धारण बान्धव! मैं आपको नमस्कार

करताहूं। हे प्रभु! यह मुहूर्त्त भी वन्दना करने योग्य है। क्योंकि इस मुहूर्त्त में धर्मको जन्म देने वाले—अपुनर्जन्मा—फिर जन्म ग्रहण न करने वाले—विश्व-जन्तुओंको जन्म के दुःखसे छुड़ाने वाले—आपका जन्म हुआ है। हे नाथ! इस समय आपके जन्माभिषेक के जलके पूर से प्लावित हुई है और विना यत्न किये जिसका मल दूर हुआ है, ऐसी यह रत्न ऽभा पृथ्वी सत्य नाम वाली हुई है। हे प्रभु! जो आपका रात-दिन दर्शन करेंगे, उनका जन्म धन्य है! हम तो अवसर आने पर ही आपके दर्शन करने वाले हैं। हे स्वामि! भरतक्षेत्र के प्राणियों का मोक्षमार्ग ढक गया है। उसे आप नवीन पान्थ या पथिक होकर पुनः प्रकट कीजिये। हे प्रभु! आप की अमृत-तुल्य धर्मदेशना की नो क्या वात है, आपका दर्शनमात्र ही प्राणियों का कल्याण करनेवाला है। हे भवतारक! आपकी उपमा के पात्र कोई नहीं, जिससे आपकी उपमा दी जाय ऐसा कोई भी नहीं, इसलिये मैं तो आपके तुल्य आप ही हो ऐसा कहता हूँ तो अत्र अधिक स्तुति किस तरह की जाय? हे नाथ! आपके सत्य अर्थको बतानेवाले गुणों को भी मैं कहने में असमर्थ हूं, क्योंकि स्वयंभूरमण समुद्र के जल को कौन माप सकता है?"

इन्द्र द्वारा आदिनाथ भगवान्के लालन पालन और मन वहलावके उपाय।

प्रभुका जन्मोत्सव करके उनको उनके स्थानमें छोडना

इस प्रकार जगदीश की स्तुति करके, प्रमोद से सुगन्धित

मनवाले इन्द्रने, पहलेकी तरह ही, अपने पाँच रूप बनाये। उनमें से एक अप्रमादी रूप से, उसने ईशान इन्द्र की गोदी से जगत्पति को, रहस्यकी तरह, अपने हृदयपर ले लिया। स्वामी की सेवा को जाननेवाले इन्द्र के दूसरे रूप, इसी कामपर मुक़र्रर किये गये हों, इस तरह स्वामी-सम्बन्धी अपने-अपने काम पहलेकी तरह ही करने लगे। इसके बाद, अपने देवताओंसे घिरा हुआ सुर-पति, आकाश-मार्ग से, मरुदेवा से अलंकृत किये हुए मन्दिर में आया। वहाँपर रखे हुए तीर्थङ्कर के प्रतिबिम्ब का उपसंहार करके उसने उसी जगहपर माता की बग़ल मे प्रभु को रख दिया। फिर सूर्य जिस तरह पद्मिनी की नींद को दूर करता है, उसी तरह शक्रने माता मरुदेवाकी अवसर्पिणी निद्रा भंगकी और नदी-कूलपर रहनेवाली सुन्दर हंस-माला के विलासको धारण करनेवाले साफ-सफेद रेशमी वस्त्र प्रभुके सिरहाने रक्खे। बालावस्था में भी पैदा हुए भामण्डल के विकल्प को करनेवाले रत्नमय दो कुण्डल भी प्रभु के सिरहाने रक्खे। इसी तरह सोनेसे बने हुए विचित्र रत्नहार और अर्द्ध हारों से व्याप्त एवं सोने के सूर्य के समान प्रकाशमान श्रीदामदण्ड (गिल्लीदण्डा) खिलौना प्रभुके दृष्टिविनोद के लिये, गगन में दिवाकर अथवा आकाश में सूर्य की तरह, घरके अन्दर की छत की चाँदनी में लटका दिया। दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं—प्रभु का दिल खुश होने के लिए, एक सोने और जवाहिरात से बना हुआ चित्ताकर्षक मनोहर खिलौना, प्रभु की नज़र पड़ती रहे, इस तरह घरके अन्दर की

छतमें उसी तरह लटका दिया, जिस तरह कि आस्मान में सूर्य लटका हुआ है। पीछे इन्द्रने अलकापुरी के स्वामी कुबेर को आज्ञा दी कि, तुम बत्तीस कोटि हिरण्य, उतनाही सोना, बत्तीस-बत्तीस नन्दासन, भद्रासन एवं दूसरे भी अतीव मनोहर वस्त्र नेपथ्य प्रभृति संसारी सुख देनेवाली चीज़ें, जिस तरह बादल मेह बरसाते हैं; उसी तरह, प्रभुके मन्दिरमें बरसाओ। कुबेरने अपने आज्ञापालक ज्रम्भकज्ञ नामके देवताओं द्वारा, तत्काल, उसी प्रमाण में वर्षा करायी, क्योंकि प्रचण्ड-प्रताप पुरुषों की आज्ञा मुँहसे निकलते ही पुरी होती है। फिर; इन्द्रने अभियोगिक देवताओं को आज्ञा दी कि, तुम चारों निकायों के देवताओं मे इस बातकी डोंडी पिटवा दो कि, जो कोई अर्हन्त भगवान् और उनकी मा की अशुभ चिन्तना करेगा—उनका अनभल चीतेगा उसके सिरके, अर्जक मंजरीकी तरह, सात टुकड़े हो जायँगे, यानी अर्जक वृक्ष की मंजरी के पककर फूटनेपर जिस तरह सात भाग हो जाते हैं; उसी तरह जगदीश और उनकी जननी का बुरा चाहनेवाले के मस्तक के सात भाग हो जायँगे। जिस तरह गुरु की वाणी को शिष्य उच्च स्वरसे उद्घोषित करता है, उसी तरह उन्होंने भुवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवताओंमें उसी तरह डोंडी पीट दी—सुरपति की आज्ञा सबको जोर-ज़ोर से सुना दी। इसके बाद सूर्य जिस तरह बादल में जलका संक्रम करता है; उसी तरह इन्द्रने भगवान् के अँगूठे में अनेक प्रकार के रसों से भरी हुई नाड़ी संक्रमा दी यानी जिस तरह

सूरज बादलों में जलका सञ्चार करता है; उसी तरह इन्द्रने जगदीश के अँगूठे में अमृत का सञ्चार कर दिया। अर्हन्त माता के स्तनों का दूध नहीं पीते, इसलिये जब उनको भूख लगती है, तब वे अपने सुधारस की वृष्टि करनेवाले अँगूठे को मुँहमें लेकर चूसते हैं। शेषमें प्रभु का सब प्रकारका धातृ कर्म करने के लिए, इन्द्रने पाँच अप्सराओं को धाय होकर वहाँ रहने का हुक्म दिया॰ अर्थात् उनको धाय की तरह प्रभु के लालन-पालन करनेकी आज्ञा दी।

नन्दीश्वर द्वीपमें जाकर देवताओंका महोत्सव करना।

जिन-स्नात्र हो जानेपर, इन्द्र जब भगवान् को उनकी माँ के पास छोड़ने आया, तब बहुत से देवता, मेरु-शिखर से, नन्दीश्वर द्वीप को चले गये। सौधर्मेन्द्र भी नाभिपुत्रको उनके घर में रख-कर, स्वर्गवासियों के आवास-स्थान— नन्दीश्वर द्वीप—में गया और वहाँ पूर्वदिशास्थित—क्षुद्र मेरु जितने ऊँचे—देवरमण नाम के अञ्जनगिरि पर उतरा। वहाँ उसने विचित्र-विचित्र प्रकारकी मणियों की पीठिकावाले चैत्यवृक्ष और इन्द्रध्वज से अङ्कित चार दरवाज़ेवाले चैत्य में प्रवेश किया और अष्टान्हिका उत्सव-पूर्व्वक ऋषभादिक अर्हन्तों की शाश्वती प्रतिमाओं की उसने पूजा की। उस अञ्जनगिरि की चार दिशाओं में चार बड़ी-बड़ी वापिकाये हैं और उनमें से प्रत्येक में स्फटिक मणिका एकेक दधिमुख पर्वत है। दधिमुख नाम के उन चारो पहाड़ों के ऊपर के चैत्यों में

ऋषभ, चन्द्रानन, वारिषेण और वर्द्धमान इन चारों शाश्वत अर्हन्तों की प्रतिमायें हैं। शक्रेन्द्र के चारों दिक्पालोंने, अष्टान्हिका उत्सव-पूर्व्वक, उन प्रतिमाओं की यथाविधि पूजा की। ईशान-इन्द्र उत्तर दिशा के नित्य रमणीक—रमणीय नाम के अञ्जनगिरि पर उतरा और उसने पर्वतपर बने हुए चैत्य में जो पहले की तरह शाश्वती प्रतिमा है, उसकी अष्टान्हिक-उत्सव-पूर्व्वक पूजा की। उसके दिक्पालों ने उस पहाड़ के चारों ओर की चार बावड़ियों के दधिमुख पर्व्वतों के ऊपर बने चैत्यों-की शाश्वती प्रतिमाओं का उसी तरह अट्ठाई महोत्सव किया। अमरेन्द्र दक्षिण दिशास्थित नित्योद्योत नाम के अञ्जनगिरि पर उतरा और रत्नों से नित्य प्रकाशमान् उस पर्वत के चैत्य की शाश्वती प्रतिमा की बड़ी भक्ति से अष्टान्हिक महोत्सव पूर्व्वक पूजा की और उसकी चार वापिकाओं के अन्दर के चार दधिमुख पर्वतों के ऊपर के चैत्यों में उसके चार लोकपालों ने, अचल चित्त से महोत्सव पूर्व्वक वहाँ की प्रतिमाओं की पूजा की। बलि नामक इन्द्र पश्चिम दिशा-स्थित स्वयंप्रभ नाम के अञ्जन-गिरिपर मेघके से प्रभाव से उतरा। उसने उस पर्व्वत के चैत्यमें देवताओं की दृष्टिसे पवित्र करनेवाली ऋषभा चन्द्रानन प्रभृति अर्हन्तों की प्रतिमाओं का उत्सव किया। उसके चार लोकपालोंने भी अञ्जनगिरि की चारों दिशाओं की चार वापिकाओंके दधिमुख पर्व्वतों की शाश्वती प्रतिमाओं का उत्सव किया। इस तरह सारे देवता नन्दीश्वर द्वीपमें खूब उत्सव कर करके, जिस तरह आये थे, उसी तरह अपने-अपने स्थानों को चले गये।
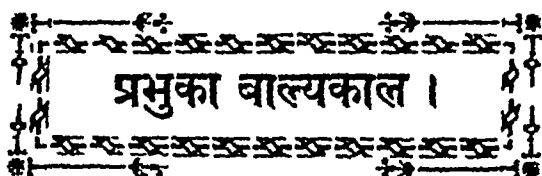
इधर स्वामिनी मरुदेवा सवेरे के समय ज्योंही उठी; उन्होंने रात के स्वप्न की तरह अपने पति नाभिराज से देवताओं के आने-जाने का सारा हाल कहा। जगदीश के उरु या जाँघ पर ऋषभ का चिह्न था, उसी तरह माता ने भी सारे सुपने में पहले ऋषभ ही देखा था, इससे आनन्दमग्न माता-पिताने शुभ दिवस मे, उत्साह-पूर्व्वक प्रभु का नाम ऋषभ रक्खा। उन्हीं के साथ युग्म-धर्मसे पैदा हुई कन्या का नाम भी सुमंगला ऐसा यथार्थ और पवित्र नाम रक्खा। वृक्ष जिस तरह नीक का जल पीता है; उसी तरह ऋषभ स्वामी इन्द्र के संक्रमण किये हुए अंगूठे का अमृत उचित समयपर पीने लगे। पर्वत की गुफामें बैठा हुआ किशोर सिंह जिस तरह शोभायमान लगता है; उसी तरह पिता की गोद में बैठे हुए भगवान् शोभायमान थे। जिस तरह पाँच समिति महामुनि को नहीं छोड़तीं; उसी तरह इन्द्र की आज्ञा से रही हुई पाँचो धाये प्रभु को किसी समय भी अकेला नही छोड़ती थी।

इक्ष्वाकु नामक वंशस्थापन

प्रभु का जन्म हुए ज्योंही एक वर्ष होने को आया, त्योंही सौधर्मेन्द्र वंश-स्थापन करने के लिये वहाँ आया। सेवक को

खाली हाथ स्वामी के दर्शन करने उचित नहीं, इस विचारसे ही मानो इन्द्रने एक बड़ा ईख का साँठा या गन्ना अपने साथ ले लिया। मानो शरीरधारी शरद् ऋतु हो, इस तरह शोभता हुआ इन्द्र इक्षु दण्ड या गन्ना हाथ में लिये हुए नाभिराज की गोद में बैठे हुए प्रभु के पास आया। तब प्रभुने अवधि-ज्ञान से इन्द्र का संकल्प समझकर, उस ईख को लेने के लिये, हाथी की तरह, अपना हाथ लम्बा किया। स्वामी के भाव को समझनेवाले इन्द्रने, मस्तक से प्रणाम करके, भेंटकी तरह, वह इक्षु लता प्रभु-को अर्पण की। प्रभु ने ईख ले लिया, इसलिये "इक्ष्वाकु" नाम का वंश स्थापन करके इन्द्र स्वर्ग को चला गया।

भगवान् के शरीर का वर्णन।

युगादिनाथ का शरीर स्वेद-पसीना, रोग—मल से रहित, सुगन्धिपूर्ण, सुन्दर आकारवाला और सोने के कमल-जैसा शोभायमान था। उनके शरीर में मांस और खून गाय के दूध-की धारा जैसी उज्ज्वल और दुर्गन्ध-रहित था। उनके आहार-विहार की विधि चर्मचक्षु के अगोचर थी और उनके श्वास की खुशबू खिले हुए कमल के जैसी थी,—ये चारों अतिशय प्रभु क जन्म से प्राप्त हुए थे। वज्रऋषभनाराच संघयण को धारण करनेवाले प्रभु मानो भूमिभ्रंश के भयसे यानी पृथ्वी के टुकड़े टुकड़े होजाने के डरसे धीरे-धीरे चलते थे। यद्यपि उनक अवस्था छोटी थी—वे बालक थे, तोभी वे गंभीर और मधुर

ध्वनि से बोलते थे—बाल्यावस्था होने पर भी उनकी वाणी में गाम्भीर्य्य और माधुर्य्य था। क्योंकि लोकोत्तर पुरुषों के शरीर की अपेक्षासे ही बालपन होता है। समचतुरस्र संस्थानवाले प्रभु का शरीर, मानो क्रीड़ा करने की इच्छावाली लक्ष्मी की काञ्चनमय क्रीड़ावेदिका हो, इस तरह शोभा देता था। समान उम्रवाले होकर आये हुए देवकुमारों के साथ, उनके चित्त की अनुवृत्ति के लिये, प्रभु खेलते थे। खेलते समय, धूलिधूसरित और घूँघुरमाल धारण किये हुए प्रभु मतवाले हाथी के बच्चे के जैसे शोभायमान् लगते यानी मदावस्था को प्राप्त हुआ हाथी का बच्चा जैसा अच्छा लगता है, प्रभु भी वैसे ही अच्छे लगते थे। प्रभु लीला मात्र से जो कुछ ले लेते थे, उसे बड़ी ऋद्धिवाला कोई देव भी न ले सकता था। यदि कोई देव बलपरीक्षा के लिये उनकी अँगुली पकड़ता, तो प्रभु के श्वास की हवा से धूल की तरह वह दूर जा पड़ता था। कितने ही देवकुमार गेंद की तरह ज़मीनपर लेटकर, प्रभु को अजीब गेंदो से खिलाते थे। कितने ही देवकुमार राजशुक होकर चाटुकार या खुशामदी की तरह, 'जीओ जीओ, सुखी हो' ऐसे शब्द अनेक तरह से कहते थे। कितने ही देवकुमार स्वामी को खिलाने के लिये, मोर का रूप बनाकर, केकावाणी से षड्ज स्वर में गा गाकर नाचते थे। प्रभु के मनोहर हस्तकमल को पकड़ने और छूने की इच्छा से, कितने ही देवकुमार, हंस का रूप धारण करके, गांधार स्वर में गाते हुए प्रभु के आस-पास फिरते थे। कितने ही प्रभु के प्रीति-

पूर्ण दृष्टिपात रूपी अमृत के पीने की इच्छा से, उनके अगल-बगल, क्रौंच पक्षी का रूप धरकर, मध्यम स्वर से बोलते थे। कितने ही प्रभु के मन की प्रीति के लिये, कोयलका रूप धरकर, नज़दीक के वृक्षपर बैठकर, पञ्चम स्वर से गाते थे। कितने ही प्रभु के वाहन या चढ़ने की सवारी होकर, अपने आत्मा को पवित्र करने की इच्छा से, घोड़े का रूप धरकर, धैवतध्वनि से हिनहिनाते हुए प्रभु के पास आते थे। कितने ही हाथी का रूप धरकर, निषाद स्वर से बोलते और नीचा मुँह करके अपनी सूँड़ों से प्रभु के चरण स्पर्श करते यानी पैर छूते थे। कोई बैल का रूप बनाकर, अपने सींगों से तट प्रदेश को ताड़न करते और बैलकी सी आवाज़से बोलते हुए प्रभुकी दृष्टिको विनोद कराते थे। कोई अञ्जनाचल सुरमेके पहाड़-जैसे बड़े-बड़े भैंसे बन कर आपस में लड़ते हुए, प्रभुको लड़ाई का खेल दिखाते थे। कोई प्रभुके दिल-बहलावके लिये, मल्ल-रूप धारण करके, खम्भ ठोक-ठोक कर, अखाड़ेमें एक दूसरे को बुलाते थे। इस प्रकार योगी जिस तरह परमात्माकी उपासना करते हैं, उसी तरह देवकुमार अनेक प्रकार के खेल तमाशोंसे प्रभु की उपासना करते थे। एक ओर ये सब काम होते थे और दूसरी ओर उद्यानपालिकाओं अथवा मालिनों द्वारा वृक्षों का लालन-पालन होने से जिस तरह वृक्ष बढ़ते हैं; उसी तरह पाँचों धायों के सावधानी से लालन-पालन किये हुए प्रभु क्रम से बढ़ने लगे,

---

प्रभुकी यौवनावस्था

अँगुष्ट पान करने या अँगूठा चूसने की अवस्था बीतने पर, दूसरी अवस्था में क़दम रखतेही, घर में रहने वाले अर्हन्त सिद्ध पाक किया हुआ यानी पकाया हुआ अन्न खाते हैं; लेकिन भगवान् नाभिनन्दन तो, उत्तर कुरुक्षेत्र से देवताओं द्वारा लाये हुए, कल्प-तरु के फलों को खाते और क्षीर समुद्र का जल पीते थे। बीते हुए कलके दिनकी तरह; बाल्यावस्था को उल्लङ्घन करके, सूर्य जिस तरह दिनके मध्य भागमें आता है; उसीतरह प्रभुने उस यौवन का आश्रय लिया, जिसमें अवयव विभक्त होते हैं; अर्थात् बचपनसे जवानीमे क़दम रखा। भगवान् बालकसे युवक हो गये। यौवनावस्था आजाने पर भी प्रभुके दोनों चरण-कमलके बीचके भागकी तरह-मुलायम, सुर्ख़, गरम, कम्प-रहित, स्वेदवर्जित और समतल यानी यकसाँ तलवे वाले थे। मानों नम्र पुरुषकी पीड़ा छेदन करने के लिये ही हो, इस तरह उसके अन्दर चक्रका चिह्न था और लक्ष्मी-रूपिणी हथिनीको स्थिर करनेके लिए— चंचलाको अचल करनेके लिये, माला, अङ्कुश और ध्वजाके भी चिह्न थे; अर्थात् भगवान्‌के पैरोंके तलवोंमें चक्र, माला, अङ्कुश और-ध्वजा पताकाके चिह्न थे। लक्ष्मीके लीला-भुवन-जंसे प्रभु के चरणों के तलवोंमें शङ्ख और घड़ेकी एव पड़ीमें स्वस्तिकका चिह्न था। प्रभुका पुष्ट, गोलाकार और सर्पके फण जैसा उन्नत अँगूठा

वत्स-सदृश श्रीवत्ससे लांञ्छित था। पवनरहित स्थानमें रखी हुई कम्प-रहित दीपशिखाके समान छिद्ररहित और सरल प्रभुके पैरोंकी उङ्गलियाँ चरण रूपी कमलके पत्तों-जैसी जान पड़ती थीं और वे अर्थात् प्रभुके पैरोंकी अँगुलियाँ निर्वात स्थानमें रक्खे हुए दीपककी स्थिर लो के समन बिना छेदों वाली और सीधी थीं और चरण रूपी कमलके पत्तों-जैसी मालूम होती थीं। उन उगँलियोंके नीचे नन्द्यावर्त्तके चिह्न शोभते थे। उनके प्रतिविम्ब ज़मीन पर पड़नेसे धर्म प्रतिष्ठाके हेतु रूप होते थे, अर्थात् चैत्य-प्रतिष्ठामें जिस तरह नन्द्यावर्त्त का पूजन होता है, उसी तरह प्रभुकी अँगूलियोंके नीचेके नन्द्यावर्त्तके चिह्नोंके प्रतिविम्ब या निशान ज़मीन पर पड़ नेसे धर्म-प्रतिष्ठाके हेतुरूप होते थे। जगत्पति के हरेक अँगुलीके पोरुवोंमें अधोसाथियों सहित जौके चिह्न थे। ऐसा मालूम होता था, मानो वे प्रभुके साथ जगत्की लक्ष्मीका विवाह करनेको वहाँ आये हों। पृथु और गोलाकार एड़ी चरण-कमलके कन्द जैसी सुशोभित थी। नाखून मानों अँगूठे और अंगुली रूपी सर्पके फण पर मणि हों इस तरह शोभते थे और चरणोंके दोनों गुल्फ या टखने सोनेके कमल की कली की कर्णिकाके गोलककी शोभाको विस्तारते थे। प्रभुके दोनों पाँवोंके तलवोंके ऊपरके भाग कछुएकी पीठकी तरह अनुक्रम से ऊँचे थे, जिनमें नसें नहीं दीखती थीं और जो रोमरहित तथा चिकनी कान्ति वाले थे। गोरी-गोरी पिंडलियाँ रुधिरमें अस्थि-मान होने से पुष्ट गोल और मृगकी पिंडलियोंकी शोभाका भी

तिरस्कार करने वाली थीं। मांस से भरे हुए गोल घुटने रूईसे भरे हुए गोल तकियेके भीतर डाले हुए दर्पणके रूपको धारण करते थे। मृदु क्रमसे उत्तरोत्तर स्थूल और चिकनी जाँघें केलेके खंभके विलासको धारण करती थीं और मस्त—हाथीकी तरह गूढ और सम स्थितिवाली थी। क्योंकि घोड़ेकी तरह कुलीन पुरुष का शरीर चिह्न अतीव गुप्त होता है। उनकी गुह्य इन्द्रिय पर शिरायें नहीं दीखती थी; वह न ऊँचा न नीचा, न ढीला न छोटा और लम्बाही था। उस पर रोम नहीं थे और आकारमें गोल था। उनके कोप या तेपोके भीतर रहने वाला पंजर शीत प्रदक्षिणावर्त्त शरक धारण करने वाला, अवीभत्स और आवर्त्ताकार था। प्रभुकी कमर विशाल, पुष्ट, स्थूल और अतीव कठोर थी। उनका मध्य भाग सूक्ष्मतामें वज्रके मध्य भाग-जैसा मालूम होता था। उनकी नाभि नदीके भँवर के विलासको धारण करती थी। उसका मध्य भाग सूक्ष्मतामें वज्रके मध्य भागके जैसा था। उनकी नाभिमें नदीके भँवर-जैसे भँवर पड़ते थे और कोखके दोनों भाग चिकने, मांसल, कोमल, सरल और समान थे। उनका वक्षस्थल सोनेकी शिलाके समान विशाल, उन्नत, श्रीवत्स-रत्न पीठके चिह्नसे युक्त और लक्ष्मीकी क्रीडा करनेकी वेदिकाकी शोभाको धारण करता था, अर्थात् उनकी छाती लम्बी-चौड़ी और ऊँची थी। उस पर श्रीवत्सपीठका निशान था और वह लक्ष्मीकी क्रीड़ा करनेकी वेदिका जैसी सुन्दर और रमणीय थी। उनके दोनों कन्धे वैलके कन्धोंकी तरह मज़बूत

पुष्ट और ऊँचे थे। उनकी दोनों बगलोंमें रोऐं अत्यन्त न थे और उनमें बदबू, पसीना और मैल नही था। उनकी दोनों भुजाऐ पुष्ट, कर रूपी फणके छत्र वाली और घुटनों तक लम्बी थीं और चञ्चल लक्ष्मीको नियममें रखनेके लिये नाग-पाश-जैसी जान पडती थीं। उनके दोनों हाथोंके तलवे नवीन आमके पत्तों-जैसे लाल, निष्कर्म होने पर भी कठोर, पसीना रहित, बिना छेदवाले और ज़रा-जरा गर्म थे। पाँवोकी तरह उनके हाथों में भी दण्ड, चक्र, धनुष-कमान, मछली, श्रीवत्स, वज्र, अङ्कुश, ध्वजा-पताका, कमल, चँवर, छाता, शंख, घडा, समुद्र, मन्दिर, मगर, बैल सिह, घोड़ा, रथ,स्वस्तिक, दिग्गज—दिशाओंके हाथी, महल,तोरण,और द्वीप या टापू प्रभृतिके चिह्न थे। उनके अँगूठे और उँगलियाँ लाल हाथोंमें से पैदा होनेके कारण लाल और सरल थे तथा प्रान्त भागमें, माणिकके फूल वाले कल्पवृक्षके अंकुर-जैसे मालूम होते थे। अँगूठेके पोरवोंमें, यश रूपी उत्तम घोडेको पुष्ट करने वाले,जौ के चिह्न स्पष्टरूपसे शोभा दे रहे थे। उँगलियोंके ऊपरके भागमे दक्षिणावर्त्तके चिह्न थे। वे सब सम्पत्तिके कहने वाले दक्षिणावर्त्त शंखपने करको धारण करते थे। उनके करकमल के मूल भागमें तीन रेखायें सुशोभितीथी। वे मानो कष्टसे तीनों लोकोंका उद्धार करनेके लिये ही बनी हैं, ऐसी मालूम होती थी। उनका कंठ गोल किसी क़दर लम्बा, तीन रेखाओं से पवित्र गम्भीर ध्वनिवाला और शखकी बराबरी करने वाला था, यानी उनकी गर्दन गोल और कुछ लम्बी थी। उसपर तीन रेखाओंके निशान

थे। उससे मेघ जैसी गम्भीर आवाज़ निकलती थी और वह शंखके जैसी थी। निर्मल. वर्त्तु लाकार कान्तियोंकी तरङ्ग वाला उनका चेहरा कलङ्क-रहित दूसरे चन्द्रमा-जैसा सुन्दर मालूम होता था; अर्थात् चन्द्रमामें कलङ्क-कालिमा है, पर उनका निर्मल और सुगोल चन्द्रमुख निष्कलङ्क था उसमें कलङ्क-कालिमाका लेशभी न था; अतएव वह चन्द्रमासे भी अधिक सुन्दर था। उनके दोनों गाल नरम चिकने और माससे भरे हुए थे। वे साथ निवास करने वाली वाणी और लक्ष्मीके सुवर्णके दो आईनोंकी तरह दिखाई देते थे—सोनेके दो दर्पणोंकी तरह शोभा देते थे। उनके दोनों कान कन्धों तक लम्बे और अन्दरसे सुन्दर आवर्त्त या आँटे-वाले थे और उनके मुखकी कान्ति रूपी सिन्धुके तीर पर रहने वाली, दो सीपों की तरह मालूम होते थे। बिम्बाफलके समान लाल उनके होठ थे। कुन्द-कली जैसे बत्तीस दाँत थे और अनुक्रमसे विस्तार वाली और उन्नत बाँस-जैसी उनकी नाक थी। उनकी दाढ़ी पुष्ट, गोल, नरम और सत्श्मश्रु तथा उसमें श्मश्रुका भाग श्यामवर्ण, चिकना और मुलायम था। प्रभुकी जीभ नवीन कल्पवृक्षके मूँगे जैसी लाल, कोमल, नाति स्थूल, और द्वादशाङ्ग आगम—शास्त्रके अर्थ को प्रसव करने वाली थी; उनकी आँखें भीतरसे काली और धौली तथा प्रान्तभागमें लाल थीं इससे ऐसा ज्ञान पड़ता था, मानों वे नीलम, स्फटिक और माणिक से बनायी गयी हों। वे कानों तक पहुँची हुई थीं और उनमें श्याम बरौनियां या बाँफनिया थीं; इस लिये, लीन हुए भौंरेवाले खिलेहुए

कमलों-जैसी जान पड़ती थीं। उनकी काली और बाँकी भौंहें दृष्टि रूपी पुष्करणी के तीर पर पैदा हुई लतासी सुन्दर मालूम होती थीं विशाल, मांसल, गोल, कठोर, कोमल और एक समान ललाट अष्टमीके चन्द्रमा जैसा सुन्दर और मनोहर मालूम होता था और मौलिभाग अनुक्रमसे ऊँचा था, इसलिये नीचे मुख किये हुए छाताकी समता करता था। जगदीश्वरता को सूचना देनेवाला प्रभुके मौलि छत्रपर धारण किया हुआ गोल और उन्नत मुकुट कलशकी शोभाका आश्रय था और घुँघरवाले, कोमल, चिकने और भौंरे जैसे काले मस्तकके ऊपरके बाल यमुना नदीकी तरङ्ग के जैसे सुन्दर मालूम होते थे। प्रभुके शरीर का चमड़ा देखनेसे ऐसा जान पड़ता था, मानो उसपर सुवर्णके रसका लेप किया गया हो। वह गोचन्दन-जैसा गोरा, चिकना और साफ था। कोमल, भौंरे जैसी श्याम, अपूर्व उद्गमवाली और कमलके तन्तु-ओंके जैसी पतली या सूक्ष्म रोमावलि शोभायमान थी। इस तरह रत्नोंसे रत्नाकर-सागर जैसे नाना प्रकारके असाधारण—गैर मामूली लक्षणोंसे युक्त प्रभु किसके सेवा करने योग्य नहीं थे? अर्थात् सुर, असुर और मनुष्य सबके सेवा करने योग्य थे। इन्द्र उनको हाथका सहारा देता था, यक्ष चँवर ढोरता था, धरणेन्द्र उनके द्वारपालका काम करता था, वरुण छत्र रखता था, 'आयु-ष्मन भव, चिरजीवो हो' ऐसा कहनेवाले असंख्य देवता उनको चारों तरफसे घेरे रहते थे; तोभी उन्हें ज़रा भी घमण्ड या गर्व न होता था। जगत्पति निरभिमान होकर अपनी मौजमें

विहार करते थे। वलि इन्द्रकी गोदमें पाँव रखकर और अमरेन्द्र-के गोद रूपी पलँगपर अपने शरीरका उत्तर भाग रख, देवताओं द्वारा लाये गये आसनपर वैठ, दोनों हाथोंमें रुमाल रखनेवाली अप्सराओंसे घिरे हुए प्रभु, अनासक्तता-पूर्व्वक, कितनीही दफा दिव्य संगीतको देखते थे।

एक युगलिये की अकाल मृत्यु।

एकदिन वालकों की तरह, साथ खेलता हुआ युगलिये का एक जोड़ा,एक ताड़के वृक्षके नीचे चला गया। उस समय दैवदुर्विपाकसे ताड़का एक वड़ा फल उनमेंसे एक लड़केके सिरपर गिर पड़ा। काकतालीय-न्यायसे सिरपर चोट लगते ही वह वालक अकाल मौतसे मर गया। ऐसी घटना पहलेही घटी। अल्प कषाय की वजहसे वह वालक स्वर्गमें गया, क्योंकि थोड़े वोझेके कारण रूई भी आकाशमें चढ़ जाती है। पहले वड़े-वड़े पक्षी, अपने घोंसलेकी लकड़ी की तरह, युगलियों की लाशों को उठाकर समुद्रमें फेंक देते थे; परन्तु इस समय उस अनुभवका नाश होगया था, इसलिये वह लाश वहीं पडी रही; क्योंकि अवसर्पिणी काल का प्रभाव आगे वढ़ता जाता था। उस जोड़े में जो वालिका थी वह स्वभावसे ही मुग्धापन से सुशोभित थी। अपने साथी वालकका नाश हो जानेसे विकते-विकते वची हुई चीज़की तरह होकर वह चञ्चल-लोचनी वहीं वैठी रही। इसके वाद, उसके माँ-वाप उसे वहाँसे उठा ले गये और उसका लालन-पालन करने लगे एवं उसका नाम सुनन्दा रख दिया।

सुनन्दा के शरीर की शोभा।

नाभिराज का सुनन्दा को पुत्रवधूरूप में स्वीकार करना।

कुछ समय बाद उसके माता-पिता भी परलोकगामी हुए, क्योंकि सन्तान होनेके बाद युगलिये कुछ दिन ही जीते हैं। माँ-बापकी मृत्यु होनेके बाद, वह चपलनयनी बालिका—"अब क्या करना चाहिये" इस विचारमें जड़ीभूत होगई और अपने झुण्डसे बिछुड़ी हुई हिरनी की तरह जंगलमें अकेली घूमने लगी। सरल अँगुली रूपी पत्तोंवाले चरणोंसे पृथ्वी पर क़दम रखती हुई वह ऐसी मालूम होती थी, गोया खिले हुए कमलों को ज़मीन पर आरोपण करती हो। उसकी दोनों पिंडलियाँ सुवर्ण-रचित तरकस-जैसी शोभा देती थीं। अनुक्रमसे विशाल और गोलाकार उसकी जाँघें हाथी की सूँड जैसी दीखती थीं। चलते समय उसके पुष्ट नितम्ब—चूतड़ कामदेवरूपी जुआरी द्वारा बिछाई हुई सोनेकी चौपड़के विलास को धारण करते थे। मुट्ठीमें आनेवाले और कामके खींचने के आँकड़े जैसे मध्यभागसे एवं कुसुमायुधके खेलनेकी वापिका जैसी सुन्दर नाभिसे वह बहुत अच्छी लगती थी। उसके पेटपर त्रिवली रूपी तरंगें लहर मारती थीं। उसकी त्रिवली को देखने से ऐसा जान पड़ता था, मानो उसने अपने सौन्दर्य्य से त्रिलोकी को जीतकर तीन रेखाएँ धारण की हैं। उसके स्तनद्वय रतिप्रीतिके दो क्रीड़ा-पर्वतसे जान पड़ते थे और रति-प्रीतिके हिंडोले की दो सुवर्ण की डंडियोंके जैसी उसकी भुजल-

ताये शोभती थीं। उसका तीन रेखाओंवाला कंठ शखके विलास-को हरण करता था। वह अपने ओठोंसे पके हुए बिम्बाफलकी कान्ति का पराभव करती थी। वह अधर रूपी सीपीके अन्दर रहनेवाले दाँत रूपी मोतियों तथा नेत्ररूपी कमल की नाल जैसी नाकसे अतीव मनोहर लगती थी। उसके दोनों गाल ललाटकी स्पर्द्धा करनेवाले, अर्द्धचन्द्र की शोभा को चुरानेवाले थे और मुख-कमलमें लीन हुए भौंरोंके जैसे उसके सुन्दर वाल थे। सर्व्वाङ्ग-सुन्दरी और पुण्य-लावण्य रूपी अमृतकी नदी सी वह वाला वन-देवी की तरह जंगल में घूमती हुई वनको जगमगा रही थी। उस अकेली मुग्धाको देख, कितनेही युगलिये किंकर्त्तव्य विमूढ़, हो नाभिराजाके पास ले आये। श्री नाभिराजाने ' यह ऋषभ की धर्मपत्नी हो," ऐसा कहकर, नेत्ररूपी कुमुद को चाँदनीके समान उस बाला को स्वीकार किया।

सौधर्मेन्द्रका पुनरागमन।

भगवान् से विवाह की प्रार्थना करना।

इसके बाद, एकदिन सौधर्मेन्द्र प्रभुके विवाह समय को अव-धिज्ञानसे जानकर वहाँ आया और जगत्पतिके चरणोंमें प्रणाम कर, प्यादे की तरह सामने खड़ा हो, हाथ जोड़ कहने लगा—"हे नाथ! जो अज्ञानी आदमी ज्ञानके ख़ज़ाने-स्वरूप प्रभुको अपने विचार या बुद्धिसे किसी काम मे लगाता है, वह उपहास का पात्र होता है। लेकिन स्वामी जिनको सदा मिहरबानी की

नज़रसे देखते हैं, वे किसी-किसी समय दिल खोलकर बात कह बैठते हैं। उनमें भी जो स्वामीके अभिप्राय—मालिक की मन्शा—को जानकर बात कहते हैं, वे सच्चे सेवक कहलाते हैं। हे नाथ! मैं आपका अभिप्राय जाने बाद कहता हूँ, इसलिये आप मुझसे नाराज़ न हूजियेगा। मैं जानता हूँ, कि आप गर्भवाससे ही वीतराग हैं—आप को किसी भी सांसारिक पदार्थ से मोह नहीं है—किसी भी वस्तुमें आसक्ति नहीं है। दूसरे पुरुषार्थों की अपेक्षा न होनेसे चौथे पुरुषार्थ—मोक्ष—के लियेही आप सज्ज हुए हैं; तथापि हे भगवन्! मोक्ष-मार्ग भी आपही से प्रकट होगा—लोक-व्यवहार की मर्य्यादा भी आपही बाँधेंगे। अतः उस लोक-व्यवहार के लिये, मैं आपका पाणिग्रहण-महोत्सव करना चाहता हूँ। आप प्रसन्न हों! हे स्वामिन्! त्रैलोक्य-सुन्दरी, परम रूपवती और आपके योग्य सुनन्दा और सुमङ्गलाके साथ विवाह करने योग्य आप हैं।

भगवान् कर्मभोग को अटल समझ कर विवाह करने की स्वीकृति देते हैं।

विवाह की तैयारियाँ।

विवाह-मगडप की अपूर्व शोभा।

उस समय स्वामीने अवधिज्ञान से यह जानकर कि, ८३ लाख पूर्वतक भोगने को दृढ़ भोग-कर्म हैं और वे अवश्यही भोगने पड़ेंगे,

उनके भोगे विना पीछा नहीं छूटेगा—सिर हिलाकर अपनी सम्मति प्रकट की और सन्ध्याकालके कमलकी तरह नीचा मुँह करके रह गये। इन्द्रने प्रभुका आन्तरिक अभिप्राय समझकर, विवाह के लिये उन्हें प्रस्तुत समझकर, विवाह-कर्म आरम्भ करनेके लिए तत्काल वहाँ देवताओं को बुलाया। इन्द्रकी आज्ञासे, उसके अभियोगिक देवताओंने सुधर्मा सभाके छोटे भाईके जैसा एक सुन्दर मण्डप तैयार किया। उसमें लगाये हुए सोने, चाँदी और पद्मरागमणिके खम्भे—मेरु, रोहणाचल और वैताढ्य पर्वत की चूलिका की तरह शोभा देते थे। उस मण्डपके अन्दर रखे हुए सोनेके प्रकाशमान् कलश चक्रवर्त्तीके कांकणी रत्नके मण्डल की तरह शोभा देते थे और वहाँ सोने की वेदियाँ अपनी फैलती हुई किरणोंसे, मानो दूसरे तेजको सहन न करनेसे, सूर्यके तेजका आक्षेप करती सी जान पड़ती थीं। उस मण्डपमें घुसनेवालों का जो प्रतिबिम्ब या अक्स मणिमय दीवारोंपर पड़ता था, उससे वे बहुपरिवारवाले मालूम होते थे। रत्नोंके बने हुए खम्भोंपर बनी हुई पुतलियाँ नाचनेसे थकी हुई नाचनेवालियोंकी तरह मनोहर जान पडती थी। उस मण्डप की प्रत्येक दिशामें जो कल्पवृक्षके तोरण बनाये थे, वे कामदेवके बनाये हुए धनुषों की तरह शोभा देते थे और स्फटिक के द्वार की शाखाओं पर जो नीलम के तोरण बनाये थे, वे शरद् ऋतुकी मेघमालामें रहनेवाली सूओं की पङ्क्तिके समान सुन्दर और मनोमोहक लगते थे। किसी किसी जगह स्फटिक या बिल्लौरी शीशे से बने हुए फ़र्शपर निरन्तर

किरणें पड़नेसे वह मण्डप अमृत-सरके विलास का विस्तार करता था। कहीं-कहीं पद्मराग मणि की शिलाओं की किरणें फैलती थीं, इस कारण वह मण्डप कसूमी और बड़े बड़े दिव्य वस्त्रोंका सञ्चय करनेवाला जैसा मालूम होता था। कहीं-कहीं नीलम की पट्टियों की बहुत सी सुन्दर सुन्दर किरणें पड़नेसे वह मानो फिरसे बोये हुए मांगलिक यवांकुर या जवारों-जैसा मनोहर मालूम होता था। किसी-किसी स्थानमें मरकतमणि से बने हुए फर्शसे अखण्डित किरणें निकलती थीं, उनसे वह वहाँ लाये हुए हरे और मङ्गलमय वाँसों का भ्रम उत्पन्न करता था, अर्थात् हरे हरे वाँसोंका धोखा होता था। उस मण्डप में ऊपर की ओर सफेद दिव्य वस्त्रका चँदोवा था। उसके देखनेसे ऐसा मालूम होता था, गोया उसके मिषसे आकाश-गङ्गा तमाशा देखनेको आई हो और छतके चारों ओर खम्भोंपर जो मोतियों की मालायें लटकाई गई थीं, वे आठों दिशाओंके हर्षके शस्य जैसी मालूम होती थीं। मण्डपके बीचमें देवियोंने रतिके निधान रूप रत्न-कलश की आकाशतक ऊँची चार श्रेणियाँ स्थापन की थीं। उन चार श्रेणियोंके कलशोंको सहारा देनेवाले हरे वाँस जगत्को सहारा देनेवाले स्वामी के वंश की वृद्धि की सूचना देते हुए शोभायमान थे।

अप्सराओं की विवाह सम्बन्धी बात चीत।

उस समय—"हे रम्भा! तू माला गूँथना आरम्भ कर। हे उर्व्वशी! तू दूब तैयार कर। हे धृतमनि! वरको अर्घ्य देनेके लिए

घी और दही ला। हे मंजुघोषा! सखियोंसे धवल अच्छी तरह गवा। हे सुगन्धे! सुगन्धित चीजें तैयार कर। हे तिलोत्तमा दरवाज़ेपर उत्तमोत्तम साथिये बना। हे मैना! तू आये हुए लोगोंका उचित बातचीतसे सम्मान कर। हे सुकेशि! तू वधू और वरके लिये केशाभरण तैयार कर। हे सहजत्या! तू बरात में आये हुए लोगोंको ठहरने को जगह बता। हे चित्रलेखा! तू मातृभवन में विचित्र चित्र बना। हे पूर्णिमे! तू पूर्णपात्रों को शीघ्र तैयार कर। हे पुण्डरीके! तू पुण्डरीकों से पूर्ण कलशों को सजा। हे अम्लोचा! तू वरमाँची को उचित स्थानपर स्थापित कर। हे हंसपादि! तू वधूवर की पादुका स्थापन कर। हे पुंजिकास्थला! तू जल्दी-जल्दी गोवर से वेदी को लीप। हे रामा! तू इधर-उधर क्यों फिरती है? हे हेमा! तू सुवर्ण को क्यों देखती है? ये द्रुतस्थला! तू ढीली सी क्यों होगई है? हे मारिचि! तू क्या सोच रही है? हे सुमुखि! तू उन्मुखी सी क्यों होरही-है? हे गान्धर्वि! तू आगे क्यों नहीं रहती? हे दिव्या! तू व्यर्थ क्यों खेल रही है? अब लग्न-समय पास आगया है, इसलिये अपने अपने विवाहोचित कामो में सब को हर तरहसे जल्दी करनी चाहिये।" इस तरह अप्सराओं का परस्पर एक दूसरीका नाम ले लेकर सरस कोलाहल होने लगा।

अप्सराओं द्वारा दोनों कन्याओं का श्रृङ्गार किया जाना।

इसके बाद कितनी ही अप्सराओं ने, मङ्गल-स्नान कराने के लिये, सुनन्दा और सुमङ्गला को आसन पर बिठाईं। मधुर-धवल-मङ्गल गीत गाते हुए उनके सारे शरीर में तैल की मालिश की गई। इसके बाद, जिनके रत्नपुञ्ज से पृथ्वी पवित्र हुई है, ऐसी उन दोनों कन्याओं के सूक्ष्म पीठी से उबटन किया गया। उनके दोनों चरणों, दोनों, घुटनों, दोनों हाथों, दोनों कन्धों पर दो दो और सिर पर एक—इस तरह उनके अङ्गमें लीन हुए अमृत-कुण्ड-सदृश नौ श्याम तिलक किये गये और तकुए में रहने वाले कसूमी सूतोंसे बायें और दाहिने अङ्गों में मानो सम चतुरस्र संस्थान को जाँचती हो, इस तरह उन्होंने स्पर्श किया। इस प्रकार अप्सराओंने सुन्दर वर्णवाली उन बालाओंके, धायोंकी तरह उनकी चपलताको निवारण करते हुए पीठी लगाई, अर्थात् धाय जिस तरह अपने बालकको दौडने-भागनेसे रोकती है, उसी तरह उन्होंने उन बालाओंको पीठी लगा कर बाहर भागनेसे रोकते हुए पीठी लगाई। हर्षोन्मादसे मतवाली अप्सराओंने वर्णक का सहोदर भाई हो, इस तरह उद्वर्णक भी उसी तरह किया। इसके बाद मानो अपनी कुल-देवियाँ हों, इस तरह उनको दूसरे आसनपर बिठाकर सोनेके घड़ेके जलसे स्नान कराया। गन्धकषायी कपड़ेसे उनका शरीर पोंछा और नर्म वस्त्र उनके बालोंपर लपेटे

रेशमी कपड़े पहनाकर, और उन्हें बिठा कर उनके बालोंसे मोतियों की वर्षाका भ्रम करने वाला जल नीचे टपकाया। धूप रूपी लतासे सुशोभित उनके ज़रा-ज़रा गीले बाल दिव्य धूपसे धूपित किये। सोने पर जिस तरह गेरूका लेप करते हैं, उसी तरह उन स्त्री-रत्नोंके अङ्गोंको सुन्दर अङ्गरागसे रञ्जित किया। उनकी गर्दनों, भुजाओंके अगले भागों, स्तनों और गालों पर मानों कामदेवकी प्रशस्ति हो, इस तरह पत्र-वल्लरी की रचना की। मानो रतिदेवके उतरनेका नवीन मडल हो ऐसा चन्दनका सुन्दर तिलक उनके ललाटों पर किया। उनकी आँखोंमें नील कमलके वनमें आने वाले भौंरेके जैसा काजल आँजा। मानो कामदेवने अपने शस्त्र रखनेके लिये शस्त्रागार बनाया हो, इस तरह खिले हुए फूलों की मालाओं से उन्होंने उनके सिर किये। माथा-चोटी और माँग पट्टी करनेके बाद, चन्द्रमाकी किरणोंका तिरस्कार करने वाले लम्बे-लम्बे पल्लेवाले कपड़े उन्हें पहनाये। पूरब और पश्चिम दिशाओंके मस्तकों पर जिस तरह सूरज और चाँद रहते हैं, उसी तरह उनके मस्तकों पर विचित्र रत्नोंसे देदीप्यमान दो मुकुट धारण कराये। उनके दोनों कानोंमें, अपनी शोभा से रत्नोंसे अङ्कुरित हुई पृथ्वीके सारे गर्वको खर्व करने वाले, मणिमय कर्णफूल और झूमके पहनाये। कर्णलताके ऊपर, नवीन फूलोंकी शोभाकी विडम्बना करने वाले मोतियोंके दिव्य कुण्डल पहनाये। कर्णमें विचित्र माणिककी कान्तिसे आकाशको प्रकाशमान करने वाले और संक्षेप किये हुए इन्द्र धनुषकी शोभाका निरादर

करने वाले पदक पहनाये। भुजाओंके ऊपर, कामदेवके धनुषमें बँधे हुए वीरपट्टके जैसे शोभायमान, रत्नजडित वाजूवन्द बाँधे और उनके स्तन रूपी किनारों पर, उस जगह चढ़ती—उतरती नदीका भ्रम करने वाले हार पहनाये। उनके हाथोंमें मोतियोंके कङ्गन पहनाये, जो जल-लताके नीचे जलसे शोभित क्यारियोंकी तरह सुन्दर मालूम देते थे। उनकी कमरोंमें मणिमय कर्धनियाँ पहनाईं, जिनमें लगी हुई घूँघरोंकी पंक्तियाँ झंकार करती थी और वह कटि-मेखला या कर्धनी रतिपतिकी मङ्गल-पाठिका की तरह शोभा देती थीं। उनके पाँवोंमें जो पायजेवें पहनाई गई थीं, उनके घूँघरू छमाछम करते हुए ऐसे जान पड़ते थे, मानो उनके गुण कीर्त्तन कर रहे हों।

पाणिग्रहण उत्सव।

इस तरह सजाई हुई दोनों वालिकाये देवियोंने वुलाकर मातृभुवनमें सोनेके आसन पर वैठाईं। उस समय इन्द्रने आकर वृषभ लाञ्छन वाले प्रभुको विवाहकेलिये तैयार होनेकी प्रार्थनाकी। “लोगों को व्यवहार-स्थिति वतानी उचित है और मुझे योग्य कर्म भोगने ही पड़ेंगे,” ऐसा विचार करके उन्होंने इन्द्रकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तव विधिको जानने वाले इन्द्रने प्रभुको स्नान कराया और चन्दन, केशर, कस्तूरी प्रभृति सुगन्धित पदार्थोंको लगाकर यथोचित आभूषण पहनाये। इसके वाद प्रभु दिव्य वाहन पर वैठकर, विवाह-मण्डपकी ओर चले। इन्द्र छडीवर्दारकी

तरह उनके आगे-आगे चलने लगा। अप्सरायें दोनों ओर लवण उतारने लगीं। इन्द्राणियाँ मंगल गान करने लगीं। सामानिक देवियाँ बलैयाँ लेने लगीं। गन्धर्व खुशीके मारे बाजे बजाने लगे। इस तरह दिव्य वाहन पर बैठकर प्रभु मण्डप-द्वाराके पास आये, तो आपही विधिको जानने वाले प्रभु वाहनसे उतरकर मण्डप द्वारके पास उसी तरह खड़े होगये, जिस तरह समुद्रकी वेला अपना मर्य्यादा भूमिके पास आकर रुक जाती है। इन्द्रने प्रभुको हाथका सहारा दिया, इस कारण वे उस तरह शोभा पाने लगे जिस तरह वृक्षके सहारेसे खड़ा हाथी शोभा पाता है। उसी समय मडप की स्त्रियोंमें से एक ने अन्दर नमक और आग होने के कारण तड़ तड़ आवाज़ करनेवाला एक शराव-सम्पुट दरवाज़ेके विच में रक्खा। किसी स्त्रीने, पूर्णिमा जिस तरह चन्द्रमा को धारण करती है, उसी तरह दूब प्रभृति मंगल पदार्थों से लांछित चाँदी का एक थाल प्रभुके सामने रक्खा। एक स्त्री कसूमी रग के वस्त्र पहने हुए मानो प्रत्यक्ष मंगल हो इस तरह पञ्च शाखावाले मथन दंड को ऊँचा करके अर्घ्य देने के लिये खड़ी हुई। उस समय देवांगनायें इस तरह धवल मंगल गा रही थीं:—हे अर्घ्य देनेवाली! इस अर्घ्य देने योग्य वरको अर्घ्य दे; क्षण-भर, मांखण डण्डा जिस तरह समुद्रमें से अमृत फेंकता है; उसी तरह थाल में से दही फेंक; हे सुन्दरी! नन्दन वनसे लाये हुए चन्दन रस को तैयार कर; भद्रशाल वन से लाई हुई दूब को खुशी से लाकर दे, क्योंकि इकट्ठे हुए लोगों की नेत्रपंक्तिसे

जंगम तोरण बना है और त्रिलोकी में उत्तम ऐसे वर राज तोरण-द्वार में खड़े हुए हैं। उनका शरीर उत्तरीय वस्त्रके अन्तर पटसे ढका हुआ है, इसलिये गङ्गा नदीकी तरग में अन्तरीत युव राज हंसके समान शोभ रहे हैं। हे सुन्दरि! हवासे फूल झड़े पडते हैं और चन्दन सूखा जाता है, अतः इन वरराज को अब द्वार पर बहुत देर तक न रोक। देवांगनायें इस तरह मंगल-गीत गारही थीं, ऐसे समय में उस कसूमी रङ्ग के कपड़े पहने हुए और मथन-दण्ड लिये हुए खड़ी स्त्रीने त्रिजगत् को अर्घ्य देने योग्य वर राज को अर्घ्य दिया और सुन्दर लाल लाल होठों वाली उस देवीने धवल मङ्गल के जैसा शब्द करते हुए अपने कंगन पड़े हुए हाथ से त्रिजगत्पति के भाल का तीन वार मथन दण्डसे चुम्बन किया। इसके बाद प्रभुने अपनी वाम पादुका से, हीम कर्पर की लीला से, आग समेत शराव सम्पुट का चूर्ण कर डाला और वहाँ से अर्घ्य देनेवाली ललना द्वारा गले में कसूमी कपडा डाल कर खींचे हुए प्रभु मातृभवन में गये। वहाँ कामदेवका कन्द हो ऐसे मिढोल से शोभायमान हस्त-सूत्र वधू और वर के हाथों में बाँधे गये। जिस तरह केसरी सिंह मेरु पर्वत की शिला पर बैठता है, उसी तरह वरराज मातृ-देवियोंके आगे, ऊँचे सोने के सिंहासन पर बिठाये गये। सुन्दरियोंने शमी वृक्ष और पीपल वृक्षकी छालों के चूर्ण का लेप दोनों कन्याओंके हाथों में किया। वह कामदेव रूपी वृक्षका दोहद पूरा हो ऐसा मालूम होता था।

जब शुभ लग्नका उदय हुआ; यानी ठीक लग्नकाल आया, तब सावधान हुए प्रभुने दोनों बालाओंके लेपपूर्ण हाथ अपने हाथ से पकड़ लिये। उस समय इन्द्रने जिस तरह जलके क्यारे में साल का बीज बोते हैं, उसी तरह लेपवाले दोनों बालाओंके हस्त सम्पुट में एक मुद्रिका डालदी। प्रभुके दोनों हाथ उन दोनोंके हाथोंके साथ मिलते ही दो शाखाओंमें इलझी हुई लताओंसे वृक्ष जिस तरह शोभता है, उस तरह शोभने लगे। जिस तरह नदियोंका जल समुद्र में मिलता है, उसी तरह उस समय तारामेलक पर्व में वधू और वरकी दृष्टि परस्पर मिलने लगी। बिना हवा के जलकी तरह निश्चल दृष्टि दृष्टिसे और मन मनके साथ आपसमें मिल गये और एक दूसरेकी पुतलियोंमें उनका अक्स पड़ने लगा, यानी एक दूसरे की कीकियोंमें वे परस्पर प्रतिबिम्बित हुए। उस समय ऐसा मालूम होने लगा, मानो वे एक दूसरे के हृदयमें प्रवेश कर गये हों। जिस तरह विद्यूत-प्रभादक मेरु के पास रहते हैं, उसी तरह उस समय सामानिक देव भगवान् के निकट अनुवरों की तरह खड़े हुए थे। कन्यापक्षकी स्त्रियाँ, जो हसी दिल्लगी में निपुण थीं। अनुवरोंको इस भाँति कौतुक धवल गीत गाली गाने लगीं:—ज्वर वाला मनुष्य जिस तरह समुद्र सोखने की इच्छा रखता है, उसी तरह यह अनुवर लड्डू खानेको कैसा मन चला रहा है! कुत्ता जिस तरह मिठाई पर मन चलाता है, उसी तरह माँडा पर अखण्ड दृष्टि रखने वाला अनुवर कैसे दिलसे उसे चाह रहा है! मानो जन्मसे कभी देखेही न हों इस

तरह दीनके वालक की भाँति यह अनुवर वडों पर कैसा मन चला रहा है ! जिस तरह मेघ को चातक और पैसेको याचक चाहता है, उसी तरह यह अनुवर सुपारी पर कैसा मन चला रहा है ! जिस तरह गाय का वच्चा घास खानेको मन चलाता है, उसी तरह यह अनुवर पान खानेको कैसा नादीदा सा हो रहा है ! जिस तरह मक्खन की गोली खानेको विल्ली जीभ लपलपाती है, उसी तरह यह अनुवर चूर्ण पर कैसी जीभ लपलपा रहा है ? पोखरी की कीचड़ को भैंसा जिस तरह चाहता है, उसी तरह इत्र प्रभृति सुगन्धित पदार्थों पर इस अनुवर का मन चल रहा है। जिस तरह पागल आदमी निर्माल्यको चाहता है, उसी तरह यह अनुवर फूलमाला को कैसे चंचल नेत्रोंसे देख रहा है ? इस तरह के कौतुक-धवल—गीत-गालियों को ऊँचे कान और मुँह करके सुनने वाले देवता चित्र-लिखे से हो गये। 'लोक में यह व्यवहार वतलाना उचित है, ऐसा निश्चय करके, विवाह में नियत किये हुए मध्यस्थ मनुष्य की तरह, प्रभु उन की उपेक्षा करते थे। जिस तरह वडी नावके पीछे दो छोटी नावें वाँध देते हैं, उसी तरह जगत्पति के पल्ले के साथ दोनों वधुओं के पल्ले इन्द्रने वाँध दिये। आभियोगिक देवता की तरह इन्द्र स्वयं भक्तिसे प्रभुको अपनी कमर पर रख कर वेदी-गृहमें ले जाने लगा। तव उसी समय दोनों इन्द्राणियाँ आकर, तत्काल, दोनों कन्याओं को हथ-लेवा न छूटे इस तरह कमर पर रख कर ले चलीं। तीन लोक के शिरोरत्न रूप उन वधू वरने पूरव के द्वार से वेदी वाले स्थानमे

प्रवेश किया। किसी त्रायस्त्रिंश देवताने, मानों तत्काल ज़मीन से निकला हो इस तरह, वेदी में अग्नि प्रकट की। उसमें समिध डालने से, आकाशचारी मनुष्यों—विद्याधरों की स्त्रियों के कानों के अवतंस रूप होने वाली धूएँ की रेखा आकाश में छा गई। इस के वाद स्त्रियाँ मगल गीत गाने लगीं और प्रभुने सुनन्दा और सुमगला के साथ, अष्ट मगल पूर्ण होने तक, अग्नि की प्रदक्षिणा की। इसके वाद ज्योंही आशीर्व्वादात्मक गीत गाये जाने लगे, त्योंही इन्द्रने उनके हथलेवा और पल्ले की गाँठें छुड़ा दीं। पीछे प्रभुके लग्न उत्सव से उत्पन्न हुई खुशीसे, रंगाचार्य या सूत्रधारकी तरह आचरण करता हुआ, हस्ताभिनयकी लीला वताता हुआ इन्द्र इन्द्राणियों के साथ नाचने लगा। हवा से नचाये हुए वृक्षोंके पीछे जिस तरह उससे लिपटी हुई लतायें नाचा करती हैं; उसी तरह इन्द्रके पीछे और देवता भी नाचने लगे। कितने ही देवता चारणोंकी तरह जय जय शब्द करने लगे। कितने ही भरतकी तरह अजव तरह के नाच करने लगे। कितने ही जन्मके गन्धर्व्व हों इस तरह नाच करने लगे। कितने ही अपने मुखों से वाजों का काम लेने लगे। कितने ही वन्दरों की तरह सम्भ्रम से कूदने फाँदने लगे। कितनेही हँसाने वाले विदूषकों की तरह लोगों को हँसाने लगे और कितनेही प्रतिहारी की तरह लोगों को दूर दूराने लगे। इस तरह भक्ति दिखाने वाले हर्ष से उन्मत्त देवताओं से घिरे हुए और दोनों वगलोंमें सुनन्दा और सुमंगला से सुशोभित प्रभु दिव्य वाहन में बैठ कर अपने स्थान को पधारे। जिस

तरह संगीत या तमाशे को ख़तम करके ,रंगाचार्य अपने स्थानको चला जाता है, उसी तरह विवाह-उत्सव समाप्त करके इन्द्र अपने स्थानको चला गया। प्रभुकी दिखलाई हुई विवाह की रीति रस्म उस समय से दुनिया में चल गई। क्योंकि बड़े आदमियों की स्थिति दूसरों के लिये ही होती है। बड़े लोग जिस चाल पर चलते हैं, दुनिया उसी चाल पर चलती है। महापुरुष जो मर्य्यादा बाँध देते हैं, संसार उसी मर्य्यादा के भीतर रहता है।

अब अनासक्त प्रभु दोनों पत्नियों के साथ भोग भोगने लगे, यानी प्रभु आसक्ति रहित होकर अपनी दोनों पत्नियों के साथ भोग-विलास करने लगे। क्योंकि विना भोग भोगे पहलेके सतावेदनीय कर्मोंका क्षय न होता था। विवाह के बाद प्रभुने उन पत्नियोंके साथ कुछ कम छे लाख पूर्व तक भोग-विलास किया। उस समय बाहु और पीठ के जीव सर्व्वार्थसिद्धि विमान से च्युत होकर, सुमंगला की कोखमें युग्म रूप से उत्पन्न हुए और सुबाहु तथा महा पीठ के जीव भी उसी सर्व्वार्थ-सिद्धि विमान से च्यव कर, उसी तरह सुनन्दा की कोख से उत्पन्न हुए। सुमंगलाने गर्भ के माहात्म्यको सूचित करने वाले चौदह महास्वप्न देखे। देवीने उन सुपनोंका सारा हाल प्रभु से कहा, तब प्रभुने कहा—"तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र होगा।" समय आने पर पूरब दिशा जिस तरह सूरज और सन्ध्या को जन्म देती हैं; उसी तरह सुमंगला ने अपनी कान्ति से दिशाओं को

प्रकाशमान करने वाले भरत और ब्राह्मी नामक दो बच्चों को जन्म दिया और वर्षा ऋतु जिस तरह मेघ और बिजली को जन्म देती है ; उसी तरह सुनन्दाने सुन्दर आकृति वाले बाहुबलि और सुन्दरी नामक दो बच्चों को जन्म दिया। इसके बाद, विदूर पर्वत की ज़मीन जिस तरह रत्नों को पैदा करती है, उस तरह अनुक्रम से उनचास जोडले बच्चों को जन्म दिया। विन्ध्याचल के हाथियों के बच्चों की तरह वे महा पराक्रमी और उत्साही बालक इधर-उधर खेलते हुए अनुक्रम से बढ़ने लगे। जिस तरह अनेक शाखाओं से विशाल वृक्ष सुशोभित होता है; उसी तरह उन बालकों से चारों ओर से घिर कर ऋषभ स्वामी सुशोभित होने लगे।

उस समय जिस तरह प्रातः काल के समय दीपक तेजहीन हो जाता है; उस तरह काल-दोष के कारण कल्पवृक्षों का प्रभाव हीन होने लगा। पीपल के पेड़ में जिस तरह लाख के कण उत्पन्न होते हैं, उस तरह युगलियों मे क्रोधाधिक कषाय धीरे धीरे उत्पन्न होने लगे। सर्प जिस तरह तीन प्रयत्न विशेष की परवा नहीं करता, उसी तरह युगलिये आकर, माकार और धिक्कार—इन तीन नीतियों को उलङ्घन करने लगे। इस कारण युगलिये इकट्ठे होकर प्रभुके पास आये और अनुचित बातों के सम्बन्ध में प्रभु से निवेदन करने लगे। युगलियों की बातें सुनकर, तीन ज्ञान के धारक और जाति स्मरणवान् प्रभु ने कहा-"लोक में जो मर्यादा का उलङ्घन करते हैं, उन्हें शिक्षा देनेवाला

राजा होता है ; अर्थात् जो नियम विरुद्ध काम करते हैं, उन्हें राजा नियमों पर चलाता है। जिसे राजा बनाते हैं, उसे ऊँचे आसन पर विठाते हैं और फिर उसका अभिषेक करते हैं। उसके पास चतुरंगिणी सेना होती है और उसका शासन अखण्डित होता है।" प्रभुकी ये बातें सुनकर युगलियोंने कहा—"स्वामिन्! आपही हमारे राजा हैं। आपको हमारी उपेक्षा न करनी चाहिए; क्योंकि हम लोगों में आपके जैसा और दूसरा कोई नज़र नहीं आता।" यह बात सुनकर प्रभुने कहा—"तुम पुरुषोत्तम नाभिकुलकर के पास जाकर प्रार्थना करो। वही तुम्हें राजा देंगे।" युगलियोंने प्रभुकी आज्ञानुसार नाभिकुलकर के पास जाकर सारा हाल निवेदन किया, तब कुलकरोंमें अग्रगण्य नाभिकुलकर ने कहा—"ऋषभ तुम्हारा राजा हो।" यह बात सुनते ही युगलिये खुश होते हुए प्रभुके सामने आकर कहने लगे—"नाभिकुलकरने आपको ही हमारा राजा नियत किया है।" यह कह कर युगलिये स्वामी का अभिषेक करने के लिये जल लाने चले। उस समय स्वर्ग-पति इन्द्रका आसन हिला। अवधि ज्ञानसे यह जानकर, कि यह स्वामीके अभिषेक का समय है, वह क्षणभरमें वहाँ इस तरह आ पहुँचा, जिस तरह एक घरसे दूसरेमें जाते हैं। इसके बाद सौधर्म कल्पके उस इन्द्रने सोनेकी वेदी रचकर, उसपर अति पा-ण्डुकवला शिला (मेरु पर्वतके ऊपर की तीर्थङ्कर भगवान्के जन्मा-भिषेककी शिला) के समान एक सिंहासन बनाया और पूर्व दिशा के स्वामीने उसी समय स्वस्तिवाचक की तरह देवोंके लाये हुए

तीर्थोंके जलसे प्रभुका राज्याभिषेक किया। फिर इन्द्रने निर्मलता में चन्द्रमाके जैसे तेजोमय दिव्य वस्त्र स्वामीको पहनाये और त्रैलोक्य मुकुट रूप प्रभुके अङ्गों पर उचित स्थानों में मुकुट आदि अलङ्कार पहनाये। इसी बीचमें युगलिये कमलके पत्तोंमें जल लेकर आये। वे प्रभुको गहने कपड़ों से सजे हुए देखकर एक ओर इस तरह खड़े हो रहे, मानों अर्घ्य देनेको खड़े हों। दिव्य वस्त्र और दिव्य अलंकारों से अलंकृत प्रभु के मस्तक पर यह पानी डालना उचित नहीं है, ऐसा विचार करके उन्होंने वह लाया हुआ जल उनके चरणों पर डाल दिया। ये युगलिये सब तरह से विनीत हो गये हैं—ऐसा समझ कर, उनके रहने के लिए, अलकापतिको विनीता नामक नगरी निर्माण करनेकी आज्ञा देकर इन्द्र अपने स्थान को चले गये।

राजधानी निर्माण।

कुबेरने अड़तालीस कोस लम्बी, छत्तीस कोस चौड़ी विनीता नामक नगरी तैयार की और उसका दूसरा नाम अयोध्या रक्खा। यक्षपति कुबेरने उस नगरी को अक्षय वस्त्र, नेपथ्य, और धन-धान्यसे पूर्ण किया। उस नगरीमें हीरे, इन्द्र नीलमणि और वैडूर्य्य मणिकी बड़ी-बड़ी हवेलियाँ, अपनी विचित्र किरणों से, आकाशमें भीतके बिना ही, विचित्र चित्र-क्रियाए रचती थीं अर्थात् उस नगरी की रत्नमय हवेलियों का अक्स आकाशमें पड़ने से, बिना दीवारोंके, अनेक प्रकार के चित्र बने हुए दिखाई देते २ और मेरू पर्वत की चोटीके समान सोनेकी ऊँची हवेलियाँ ध्वजा-

ओंके मिषसे चारों तरफ से पत्रालम्बन की लीला का विस्तार करती थीं। उस नगरी के क़िले पर माणिक के कंगूरों की पङ्क्तियाँ थीं, जो विद्याधरों की सुन्दरियोंको विना यत्नके दर्पण या आईने का काम देती थीं। उस नगरीमें, घरोंके सामने, मोतियों के साथिये पुराये हुए थे, इसलिये उनके मोतियों से बालिकायें इच्छानुसार पाँचीका खेल खेलती थीं। उस नगरी के वागीचों से रात-दिन भिड़ने वाले खेचरियों के विमान क्षणमात्र पक्षियों के घोसलों की शोभा देते थे। वहाँ की अटारियों और हवेलियों में पड़े हुए रत्नोंके ढेरों को देखकर, रत्न-शिखर वाले रोहणाचल का ख़याल होता था। वहाँ की गृह-वापिकायें, जल-क्रीड़ामें आसक्त सुन्दरियों के मोतियोंके हार टूट जानेसे, ताम्रपर्णी नदी की शोभाको धारण करती थीं। वहाँके अमीर और धनियों में से किसी एक भी व्यापारी के पुत्र को देखने से ऐसा मालूम होता था, गोया यक्षाधिपति-कुबेर स्वयं व्यवसाय या तिजारत करने आये हों। वहाँ रातमें चन्द्रकान्त-मणिकी दीवारों से झरनेवाले पानीसे राहकी धूल साफ होती थी। वह नगरी अमृत-समान जल वाले लाखों कुए, बावड़ी और तालाबों से नवीन अमृत कुण्ड वाले नाग लोकके समान शोभा देती थी।

राज्य प्रबन्ध।

जन्मसे बीसलक्ष पूर्व व्यतीत हुए, तब प्रभु प्रजा पालनार्थ राजा हुए। मन्त्रोंमें ओंकारके समान, सबसे पहले राजा ऋषभ जिने-

श्वर अपनी प्रजाका अपने पुत्रके समान पालन करने लगे। उन्होंने दुष्टोंको शिक्षा देने और सज्जनोंका पालन करने की चेष्टा करने वाले, अपने अङ्ग के जैसे मन्त्री मन्त्रणाकार्यके लिये चुने। महाराजा ऋषभ देवने चोरी आदि से प्रजाकी रक्षा करने में प्रवीण, इन्द्रके लोकपालों-जैसे आरक्षक देव चारों ओर नियत किये। राजहस्ति जैसे प्रभुने राज्यकी स्थिति के लिए, शरीर में उत्तमाङ्ग शिरकी तरह, सेनाके उत्कृष्ट अङ्ग रूप हाथी ग्रहण किये। उन्होंने सूर्य्य के घोड़ों की स्पर्द्धा सी करने वाले और ऊँची-ऊँची गर्दनों वाले घोड़े रखे। उन्होंने सुन्दर लकड़ियों से ऐसे रथ बनवाये, जो पृथ्वी के विमान जैसे मालूम होते थे। जिनके सत्व बल की परीक्षा कर ली गई थी, ऐसे सैनिकों की पैदल सेना प्रभुने उसी तरह रक्खी, जिस तरह कि चक्रवर्ती राजा रक्खा करते है। नवीन साम्राज्य रूपी महलके स्तम्भ या खम्भ-जैसे महा बलवान सेनापति प्रभु ने एकत्र किये और गाय, बैल, ऊँट, भैंस-भैंसे एवं ख़च्चर प्रभृति पशु, उनके उपयोगको जानने वाले प्रभुने ग्रहण किये।

प्रभु द्वारा शिल्पोत्पत्ति।

अब, उस समय पुत्र--विहीन वंश की तरह कल्प-वृक्षों के नष्ट हो जाने से लोग कन्द मूल और फल प्रभृति पर गुजारा करते थे। उस समय शाल, गेहूँ, चने और मूँग प्रभृति औषधियाँ घास की तरह, बिना बोये अपने-आप ही पैदा होने लगीं। लेकिन वे लोग उन्हें कच्ची की कच्ची ही—बिना पकाये खाते थे; उनको वे न पचीं तब

उन्होंने प्रभु से जाकर प्रार्थना की। प्रभुने उनकी बात सुनकर कहा—"उन अनाजोंको मसलकर छिलके रहित करो, तब खाओ।" वे लोग ठीक प्रभुके उपदेशानुसार काम करने लगे, किन्तु सख्ती और कड़ाईके कारण उन्हें वह अनाज इस तरह भी न पचे, इसलिये उन्होंने फिर प्रभुसे प्रार्थना की। इस बार प्रभुने कहा—"उन अनाज़ों को हाथोंसे रगड़ कर, जलमे भिगोकर और फिर दोनोंमे रखकर खाओ।" उन्होंने ठीक इसी तरह किया, तोभी उन्हें अजीर्ण की वेदना या बदहज़मी की शिकायत रहने लगी, तब उन्हों ने फिर प्रार्थना की। जगत्पति ने कहा—"पहले कही हुई विधि करके, उस अनाज को मुट्ठी या बग़लमे कुछ देर तक रख कर खाओ। इस तरह तुमको सुख होगा।" लोगों को इस तरह अन्न खाने से भी अजीर्ण होने लगा, तब लोग शिथिल होगये। इसी बीचमें वृक्षोंकी शाखायें आपसमें रगड़ने लगी। उस रगड़न से आग उत्पन्न हुई और घास फूस एवं लकड़ी या काठ प्रभृति को जलाने लगी। प्रकाशमान रत्न के भ्रमसे—चमकते हुए रत्नके धोखेसे, उन्होंने उसे पकड़ने के लिये दौड़ कर हाथ बढ़ाये, परन्तु वे उल्टे जलने लगे। तब आगसे जलकर वे लोग फिर प्रभुके पास जाकर कहने लगे:—"प्रभो! जङ्गलमें कोई अद्भुत भूत पैदाहुआ है।" स्वामीने कहा-"चिकने और रूखे कालके दोषसे आग उत्पन्न हुई है; क्योंकि एकान्त रूखे समय में आग उत्पन्न नहीं होती। तुम उसके पास जाकर, उसके नज़दीक की घास फूस आदिको हटादो और फिर उसे ग्रहण करो। इसके बाद पहली कही हुई विधिसे

तैयारकी हुई औषधियों या धान्यको उसमें डालकर पकाओ और खाओ।" उन मूर्खोंने वैसा ही किया, तब आगने सारी औषधियाँ जला डालीं। उन लोगोंने शीघ्र ही स्वामी के पास जाकर सारा हाल कह सुनाया और कहा कि स्वामिन्! वह आग तो भुखमरे की तरह, उसमें डाली हुई सब औषधियोंको अकेली ही खा जाती है—हमें कुछ भी वापस नहीं देती।" उस समय प्रभु हाथी पर बैठे हुए थे, इस लिये वहीं उन लोगोंसे एक गीली मिट्टीका गोला मँगवाया और उसे हाथीके गण्डस्थल पर रखकर, हाथ से फैला कर, उसी आकार का एक पात्र या बर्तन प्रभुने बनाया। इस तरह शिल्पकलाओंमें पहली शिल्पकला प्रभुने कुम्हारकी प्रकट की। इसके बाद प्रभुने कहा—"इसी तरह तुम और पात्र भी बनालो। पात्रको आगपर रख कर, उसमें अनाज को रखो और पकाकर खाओ।" उन्होंने ठीक प्रभुकी आज्ञानुसार काम किया। उस दिन से पहले शिल्पी या कारीगर कुम्हार हुए। लोगोंके घर बनाने के लिए प्रभुने सुनार या बढ़ई तैयार किया। <u>महा पुरुषों की बनावट विश्वके सुख के लिये ही होती है</u>। घर प्रभृति चीतने या चित्र बनाने के लिये और लोगोंकी विचित्र क्रीडा के लिये प्रभुने चित्रकार तैयार किये। मनुष्यों के वास्ते कपड़े बुनने के लिये प्रभुने जुलाहों की सृष्टि की; क्योंकि उस समय कल्पवृक्षों की जगह प्रभुही एक कल्पवृक्ष थे। लोग बाल और नाखून बढ़ने के कारण दुखी रहते थे, इसलिये जगदीशने नाई बनाये। कुम्हार, बढ़ई, चित्रकार, जुलाहे और नाई—इन पाँच शिल्पियों में से एक

एकके बीस-बीस भेद होनेसे, वे लोगोंमें नदी के प्रवाह की तरह सौ तरह से फैले ; यानी सौ शिल्प प्रकट हुए। लोगोंकी जीविका के लिये घास काटना, लकड़ी काटना, खेती और व्यापार प्रभृति कर्म प्रभुने उत्पन्न किये और जगत्‌की व्यवस्था रूपी नगरीके मानो चतुष्पथ या चार राहें हों, इस तरह साम, दाम, दण्ड और भेद इन चार उपायों की कल्पना की। सबसे बड़े पुत्रको ब्रह्मो-पदेश करना चाहिये, इसे न्याय से ही मानो भगवान्‌ने अपने बड़े पुत्र भरतको ७२ कलायें सिखाईं। भरतने भी अपने अन्य भाइयों तथा पुत्रोंको वे कलायें अच्छी तरहसे सिखाईं। क्योंकि पात्रको सिखायी हुई विद्या सौ शाखा वाली होती है, बाहुबलिको प्रभुने हाथी, घोड़े, और स्त्री-पुरुषोंके अनेक प्रकार के भेदवाले लक्षण बताये। ब्राह्मीको दाहिने हाथसे १८ लिपियाँ सिखाईं और सुन्दरीको बायें हाथसे गणित सिखाई। वस्तुओंके मान, उन्मान, अवमान और प्रतिमान प्रभुने सिखाये और रत्न प्रभृति पिरोनेकी कला भी चलाई। उनकी आज्ञासे वादी और प्रतिवादी अथवा मुद्दई और मुद्दायलयः का व्यवहार राजा, अध्यक्ष और कुलगुरुकी साक्षीसे चलने लगा। हस्ती आदिकी पूजा, धनुर्वेद और और वैद्यककी उपासना, सग्राम, अर्थशास्त्र, बंध, घात, वध और गोष्टी आदि तबसे प्रवृत्त हुए। यह माँ है, यह बाप है, यह भाई है, यह बेटा है, यह स्त्री है, यह धन मेरा है—ऐसी ममता लोगोंमें तबसे ही आरम्भ हुई। उसी समयसे लोग मेरा तेरा अपना या पराया समझने लगे। विवाहमें लोगोंने प्रभुको गहने कपडोंसे सजा हुआ देखा,

तभीसे वे लोग अपने तईं ज़ेवर और कपड़ोंसे अलंकृत करने लगे। लोगोंने पहले जिस तरह प्रभुका पाणिग्रहण होते देखा था, उसी तरह आजतक पाणिग्रहण करते हैं; क्योंकि बड़े लोगोंका चलाया हुआ मार्ग निश्चल होता है। जिनेश्वरने विवाह किया उसीदिनसे दूसरेकी दी हुई कन्याके साथ विवाह होने लगे और चूड़ा कर्म्म, उपनयन आदिकी पूछ भी उसी समयसे हुई। यद्यपि ये सब क्रियाएँ सावद्य हैं, तथापि अपने कर्त्तव्य या फ़र्ज़को समझने वाले प्रभुने, लोगों पर दया करके ये चलाईं। उनकी ही करतूतसे पृथ्वीपर आजतक कला-कौशल आदि प्रचलित हैं। उनको इस समयके बुद्धिमान विद्वानोंने शास्त्र-रूपसे ग्रथित किया है। स्वामीकी शिक्षासे ही सब लोग दक्ष—चतुर हुए, क्योंकि उपदेश विना मनुष्य पशु तुल्य होते हैं।

प्रभु द्वारा प्रजापालन।

विश्व—संसारकी स्थिति रूपी नाटकके सूत्रधार—प्रभुने उग्र, भोग, राजन्य और क्षत्रिय—इन चार भेदोंसे लोगोंके कुलोंकी रचना की। उग्र दण्डके अधिकारी आरक्षक पुरुष उग्र कुलवाले हुए; इन्द्रके त्रायस्त्रिंश देवताओंको तरह प्रभुके मन्त्री आदि भोग कुल वाले हुए; प्रभुकी उम्रवाले यानी प्रभुके समवयस्क लोग राजन्य कुल वाले हुए; और जो बाक़ी बचे वे क्षत्रिय हुए। इस तरह प्रभु व्यवहार नीतिकी नवीन स्थिति की रचना करके, नवोढ़ा स्त्रीकी तरह, नवीन राज्यलक्ष्मीको भोगने लगे। जिस तरह

वैद्य या चिकित्सक रोगीकी चिकित्सा करके उचित औषधि देता है, उसी तरह दण्डित करने लायक़ लोगोंके उनको अपराध-प्रमाण दण्ड देनेका क़ायदा प्रभुने चलाया। दण्ड या सज़ाके डरसे लोग चोरी जोरी प्रभृति अपराध नहीं करते थे, क्योंकि दण्डनीति सब तरहके अन्यायरूप सर्पको वश करनेमें मन्त्रके समान है। जिस तरह सुशिक्षित लोग प्रभुकी आज्ञाको उल्लङ्घन नहीं करते, उसी तरह कोई किसीके खेत, बाग़ और घर प्रभृतिकी मर्यादाको उल्लङ्घन नहीं करते थे। वर्षा भी, अपनी गरजनाके बहाने से, प्रभुके न्याय-धर्मकी प्रशंसा करती हो, इस तरह धान्यकी उत्पत्तिके लिये समय पर बरसती थी। धान्यके खेतों, ईखके बग़ीचों और गायोंके समूहसे व्याप्त देश अपनी समृद्धिसे शोभते थे और प्रभुकी ऋद्धिकी सूचना देते थे। प्रभुने लोगोंको त्याज्य और ग्राह्यके विवेकसे जानकार किया; अर्थात् प्रभुने लोगोंको क्या त्यागने योग्य है और क्या ग्रहण करने योग्य है, इसका ज्ञान दिया— इस कारण यह भरतक्षेत्र बहुत करके विदेह-क्षेत्रके जैसा हो गया। इस तरह नाभिनन्दन ऋषभदेव स्वामीने, राज्याभिषेकके बाद, पृथ्वीके पालन करने में तिरेसठ लक्ष पूर्व व्यतीत किये।

वसन्त वर्णन।

एक दफा कामदेवका प्यारा वसन्त मास आया। उस समय परिवारके अनुरोधसे प्रभु बाग़में आये। वहाँ मानो देहधारी वसन्त हो, इस तरह प्रभु फूलोंके गहनोंसे सजे हुए फूलोंके बँगलेमें विरा-

जमान हुए। उस समय फूल और माकन्दके मकरन्दसे उन्मत्त होकर भौंरे गूंजते थे ; इस लिये ऐसा मालूम होता था, मानो वसन्त लक्ष्मी प्रभुका स्वागत कर रही हो। "पंचम स्वरको उच्चारनेवाली कोकिलाओंने मानो पूर्व रंगका आरम्भ किया हो—ऐसा समझकर, मलयाचलका पवन नट होकर लताओंका नाच दिखाता था। मृगनयनी कामिनियाँ अपने कामुक पुरुषोंकी तरह अशोक और बवूल आदि वृक्षोंको आलिङ्गन, चरणपात और मुखका आसव प्रदान करती थीं। तिलक वृक्ष अपनी प्रवल सुगन्धसे मधुकरोंको प्रमुदित करके, युवा पुरुषके भालस्थलकी तरह वनस्थलको सुशोभित करता था। जिस तरह पतली कमरवाली ललना अपने उन्नत और पुष्ट पयोधरोंके भारसे झुक जाती है ; उसी तरह लवली वृक्षकी लता अपने फूलोंके गुच्छोंके भारसे झुक गई थी। चतुर कामी जिस तरह मन्द-मन्द आलिङ्गन करता है ; उसी तरह मलय पवन आमकी लताको मन्द-मन्द आलिङ्गन करने लगा था। लकड़ीवाले पुरुषकी तरह, कामदेव जामुन, कदम, आम चम्पा और अशोक रूपी लकड़ियोंसे प्रवासी लोगोंको धमकाने में समर्थ होने लगा था। नये पाडल पुष्पके सम्पर्कसे सुगन्धित हुआ मलयाचलका पवन, उसी तरह सुगन्धित जलसे सबको हर्षित करता था। मकरन्द रससे भरा हुआ महुएका पेड़ मधुपात्रके समान फैलते हुए भौंरोंके कोलाहलसे आकुल हो रहा था। गोली और कमान चलानेके अभ्यासके लिये कामदेवने ,कदमके बहानेसे मानो गोलियाँ तैयार की हों, ऐसा जान पड़ता था, जिसे

इष्टापूर्त्ति प्रिय है, ऐसी वसन्त ऋतुने वासन्ती लताको भ्रमर रूपी पथिकके लिये मकरन्द—रसकी प्याऊ लगाई थी। सिन्धुवारके वृक्ष, जिनके फूलोंकी आमोद की समृद्धि अत्यन्त दुर्वार है. विषकी तरह नाक-द्वारा प्रवासियों में महामोह की उत्पत्ति करते हैं। वसन्त रूपी उद्यानपाल-माली चम्पेके वृक्षोंमें लगे हुए भौंरे—रक्षकों की तरह, निःशङ्क होकर वेखटके घूमता था यौवन जिस तरह स्त्री-पुरुषों को शोभा प्रदान करता है, उनका रूप लावण्य-खिलाता है, उनकी खूबसूरती पर पालिश करता है, इसी तरह वसन्त ऋतु बुरे-भले वृक्ष और लताओं को शोभा प्रदान करती थी, उनको हरा भरा, तरो ताजा और सोहना वनाती थी। मतलब यह है, जिस तरह जवानी का दौर दौरा होनेपर बुरे भले सभी स्त्री-पुरुष सुन्दर दीखने लगते हैं, कुरूपसे कुरूप पर एक प्रकार का नूर टपकने लगता हैं, उसी तरह वसन्त का राजत्व होनेसे बुरे भले वृक्ष और लताएँ सुन्दर, मनोमोहक और नेत्र रञ्जक दीखने थे। मृगनयनियोंको फूल तोडना आरंभ करते देख कर ऐसा ख़याल होता था, मानों वे भारी पर्वमें वसन्त को अर्घ्य देनेको तैयार हुई हों। जान पड़ता था, फूल तोडते समय उन्हें ऐसा ख़याल हुआ, कि हमारे मौजूद रहते, कामदेव को दूसरे अस्त्र—फूलकी क्या ज़रुरत है? ज्योंही फूल तोडे गये, वसन्ती लता उनकी वियोग रूपी पीड़ा से पीडित होकर, भौंरोंके गुँजनेकी आवाज़ से रोती हुई सी मालूम होती थी। दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं कि, ज्योंही वसन्ती लताके फूल तोडे गये, वह अपने

फूलोंके वियोग या जुदाई से दुखी हो उठी। भौंरोंके गूँजनेके शब्द से ऐसा जान पड़ता था, मानो वह अपने साथी फूलों की जुदाई से दुखी होकर रो रही हो। एक स्त्री मल्लिका के फूल तोडकर जाना चाहती थी, इतनेमें उसका कपड़ा उसमें उलझ गया, उससे ऐसा मालूम होता था, यानीगोया मल्लिका उससे यह कहती हो कि तू दूसरी जगह न जा; उसे अपने पाससे जाने की मनाही करती थी। उसे अपने पाससे अलग करना न चाहती थी, उसका कपड़ा पकड़ कर उसे रोकती थी। कोई स्त्री चम्पे के फूल को तोड़ना चाहती थी, कि इतने में उसमें पड़ने वाले भौंरे ने उसके होटपर काट लिया। मालूम होता था, अपना आश्रय भङ्ग होने के कारण, भौंरेको क्रोध चढ़ आया और इसीसे उसने आश्रय भङ्ग करने वालीके होठ को डस लिया। कोई स्त्री अपनी भुजा रूपी लता को ऊँची करके, अपनी भुजाके मूल भाग को देखनेवाले पुरुषोंके मनोंके साथ रहने वाले फूलोंको हरण करती थी। नये नये फूलोंके गुच्छे हाथोंमें होनेसे, फूल तोड़नेवाली रमणियाँ जङ्गमवल्ली जैसी सुन्दर मालूम होती थी। वृक्षोंकी शाखा-शाखामें से स्त्रियाँ फूल तोड़ रही थीं, इससे ऐसा मालूम होता था, गोया वृक्षोंमें स्त्री रूपी फल लगे हों। किसीने स्वयं अपने हाथों से मल्लिका की कलियाँ तोड़ कर, मोतियों के हार के समान, अपनी प्रिया के लिये पुष्पाभरण या फूलोंके ज़ेवर बनाये थे। कोई कामदेव के तरकस की तरह, इन्द्रधनुष के से पचरङ्गे फूलोंकी माला अपने हाथोंसे गूँथकर अपनी प्राणप्यारी को देता

और उसे सन्तुष्ट और राज़ी करता था। कोई पुरूष अपनी प्राणवल्लभाकी लीला या खेलमें फेंकी हुई गेंदको, नौकर की तरह उठा लाकर उसे देता था। गमनागमन के अपराधी पतियों पर जिस तरह स्त्रियाँ पादप्रहार करती हैं, उसी तरह कितनी ही कुरंगलोचनी सुन्दरियाँ वृक्षके अग्रभाग पर अपने पाँवों से प्रहार करती थीं। कोई झूले पर बैठी हुई हालकी ब्याही हुई वहू या नवौढ़ा कामिनी उसके स्वामीका नाम पूछने वाली सखियोंके लता-प्रहार को शर्म के मारे मुख मुद्रित करके चुपचाप सहती थी। कोई पुरूष अपने सामने बैठी हुई भीरू कामिनीके साथ झूले पर बैठ कर, गाढ़ आलिङ्गन की इच्छासे, उसे जोर से छातीसे लगानेकी ख्वाहिशसे झूले को खूब जोर से चढ़ाता था। कितने ही नौजवान रसिये बाग़के दरख्तों में बँधे हुए झूलों को जब लीलासे ऊँचे चढ़ाते थे, तब बन्दरों की तरह अच्छे मालूम होते थे।

वसन्त क्रीड़ासे वैराग्योत्पत्ति।

लोकान्तिक देवका आगमन।

उस शहरके लोग इस तरह क्रीड़ा और आमोद-प्रमोदमें मग्न थे। उनको इस दशामें देखकर प्रभु मन-ही-मन विचार करने लगे-क्या ऐसी क्रीड़ा, ऐसा आमोद-प्रमोद, ऐसा खेल क्या किसी और जगह भी होता होगा? ऐसा विचार आते ही, अवधि ज्ञानसे, प्रभुको स्वयं पहले के भोगे हुए अनुत्तर विमान तक के स्वर्ग-सुख याद आगये। उन्हे पहले जन्मों के भोगे हुए स्वर्ग-सुखोंका स्म-

रण हो आया। इन पर विचार करने से उनके मोह का बाँध टूट गया और वे मन-ही-मन कहने लगे—"अरे इन विषय-भोगोंके फन्देमें फँसे हुए, विषयों की चपेटमें आये हुए, विषयों से आक्रान्त हुए, अथवा उनके वशमें हुए लोगों को धिक्कार है, कि जो जो अपने हितकी बातको भी नहीं जानते—जो इतना भी नहीं जानते कि, हमारा हित—हमारी भलाई किस बात में है। अहो! इस संसार रूपी कूपमें, अरघट्ट घटियन्त्र की तरह, प्राणी अपने अपने कर्मोंसे गमनागमन की क्रिया करते हैं। कूपमें जिस तरह रहँटके घड़े आते और जाते हैं; उसी तरह अपने पहले जन्म के कर्मों के फल भोगने के लिए प्राणी जनमते और मरते हैं, अपने कर्मानुसार ही कभी ऊँचे आते और कभी नीचे जाते हैं, कभी उन्नत अवस्था को और कभी अवनत अवस्थाको प्राप्त होते हैं, कभी सुखी होते और कभी दुखी होते हैं; पर मोहके कारण प्राणी इस बात को न समझ कर थोथे विषयोंमें लीन रहते हैं। मोहान्ध प्राणियोंके जन्म को धिक्कार है!! जिनका जन्म, सोने वाले की रातकी तरह, व्यर्थ बीता चला जाता है; यानी नींदमें सोनेवाले की रातका समय जिस तरह वृथा नष्ट होता है; उसी तरह मोहान्ध प्राणियों का जीवन वृथा नष्ट होता है। चूहा जिस तरह वृक्षका छेदन कर डालता है, उसी तरह राग द्वेष और मोह उद्यमशील प्राणियोंके धर्मको भी जड़से छेदन कर डालते हैं। अहो! मूढ़ लोग बड़के वृक्ष की तरह क्रोधको बढ़ाते हैं, कि जो अपने बढ़ाने वाले को समूल ही खा जाता है।

हाथी पर बैठा हुआ महावत जिस तरह सबको तुच्छ या भुनगा के समान समझता है; उसी तरह मान या अभिमान पर बैठे हुए पुरुष मर्य्यादा का उल्लङ्घन करके किसी को भी माल नहीं समझते, जगत् को तुच्छ या हक़ीर समझते हैं। जो मानकी सवारी करते हैं, जो अभिमानी या अहंकारी होते हैं, वे मर्य्यादा भङ्ग करके, लोक, निन्दा और ईश्वर से न डर कर, दुनिया को हिक़ारत की नज़र से देखते हैं, सबको अपने मुक़ावलेमें तुच्छ या नाचीज़ समझते हैं। दुराशय प्राणी या दुर्जन लोग कौंचकी कलीके समान जलन या भयङ्कर वेदना करने वाली माया को नहीं त्यागते। तुषोदक से जिस तरह दूध विगड़ जाता या फट जाता है, काजलसे जिस तरह साफ सफेद कपड़ा काला या मैला हो जाता है; उसी तरह लोभ से प्राणी का निर्मल गुणग्राम दूषित हो जाता या वह स्वयं उसे दूषित कर लेता है। जब तक इस संसार रुपी कारागार या जेलख़ाने में जब तक ये चार कषाय पहरेदार या सन्त्री की तरह जागते रहते हैं, तब तक पुरुषों की मोक्ष-मुक्ति या छुटकारा हो नहीं सकता। दूसरे शब्दोंमें इस तरह समझिये, जिस तरह जेलमें जब तक चौकीदार जागते रहते हैं, क़ैदी को जेलसे मुक्ति या रिहाई नहीं मिल सकती, वह क़ैदसे छूट नहीं सकता; जेलसे मुक्ति पा नहीं सकता; उसी तरह इस संसार रूपी जेलमें जो प्राणी क़ैद हैं, जिन्होंने इस संसारमें जन्म लिया है, जो इस जगत् के बन्धनमें फँसे हुए हैं, संसारी रूपीजेलसे मुक्ति पा नहीं सकते, जब तक कि लोभ मोह आदिक कषाय जाग रहे हैं; मत-

लब यह है, लोभ मोह प्रभृति के त्यागने पर ही प्राणीको संसार से छुटकारा या मुक्ति मिल सकती है। इनके सोते रहने या इनके न होने पर ही प्राणी संसारबन्धन से छूटकर मोक्षपद लाभ कर सकता है। अहो! मानों भूत लगे हों, इस तरह स्त्रियोंके आलिङ्गनमें मस्त हुए प्राणी अपनी क्षीण होती हुई आत्मा को भी नहीं जानते। सिंहको आरोग्य करनेसे जिस तरहसिंह अपने आरोग्य करने वाले का ही प्राण लेता है; उसी तरह आहार प्रभृतिसे उपजा हुआ उन्माद अपने ही भव भ्रमण या संसार वन्धन का कारण होता है। जिस तरह सिंह में किया हुआ आरोग्य आरोग्य करने वालेका काल होता है; उसी तरह अनेक प्रकारके आहार प्रभृति से पैदा हुआ उन्माद हमारी आत्मा में ही उन्माद पैदा करता, यानी आत्मा को भव-वन्धन में फँसाता है। यह सुगन्धी है कि यह सुगन्धी! मैं किसे ग्रहण करूँ, ऐसा विचार करने वाला प्राणी उसमें लम्पट होकर, मुढ़ वनकर, भौंरे की तरह भ्रमता फिरता है। उसे किसी दशामें भी सुख शान्ति नहीं मिलती। जिस तरह खिलौने से वालक को ठगते हैं; उसी तरह केवल उस समय अच्छी लगने वाली रमणीय चीज़ोंसे लोग अपनी आत्मा को ही ठगते हैं। जिस तरह नींदमें सोने वाला पुरुष शास्त्र-चिन्तनसे भ्रष्ट हो जाता है; उसी तरह सदा बाँसुरी और वीणाके नाद को कान लगाकर सुननेवाला प्राणी अपने स्वार्थसे भ्रष्ट हो जाता है। एक साथ ही प्रबल या कुपित हुए वात, पित्त और कफकी तरह प्रवल हुए विषयों से प्राणीअपने चैतन्य या

आत्मा को लुप्त कर डालते हैं; अर्थात् वात, पित्त और कफ—इन तीनों दोषों के एक साथ कोप करने या प्रबल होनेसे जिस तरह प्राणी नष्ट हो जाता है, उसी तरह विषयों के बलवान होनेसे प्राणी का आत्मा नष्ट या तुष्ट हो जाता है, इसलिये विषयी लोगों को धिक्कार है! जिस समय प्रभुका हृदय इस प्रकार संसारी वैराग्य की चिन्ता सन्ततिके तन्तुओं से व्याप्त हो गया, जिस समय प्रभुके हृदयमें वैराग्य-सम्बन्धी विचारोंका ताँता लगा, उस समय ब्रह्म नामक पाँचवें देवलोकके रहने वाले सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्गतोय, तुषिताश्व, अव्याबाध, मरुत, और रिष्ट नामके लोकान्तिक देवताओंने प्रभुके चरणोंके पास आ, मस्तक पर मुकुट जैसी पद्मकोषके समान अञ्जलि जोड, इस तरह कहने लगे- "हे प्रभो! आपके चरण इन्द्रकी चूडामणिके कान्ति रूप जलमे मग्न हुए हैं, आप भरतक्षेत्रमें नष्ट हुए मोक्ष मार्गको दिखानेमें दीपकके समान हैं। आपने जिस तरह इस लोककी सारी व्यवस्था चलाई, उसी तरह अब धर्म-तीर्थको चलाइये और अपने कृत्यको याद कीजिये" देवता लोग प्रभुसे इस तरह प्रार्थना करके ब्रह्मलोकमें अपने अपने स्थानोंको चले गये। और दीक्षाकी इच्छा वाले प्रभु भी तत्काल नन्दन उद्यानसे अपने राजमहलोंकी ओर चले गये।

दूसरा सर्ग समाप्त।

भरतसे राज्य सिंहासनासीन होनेको कहना

भरतका उत्तर।

अव प्रभुने अपने सामन्त और भरत तथा बाहुवलि आदि पुत्र अपने पास बुलवाये। उन्होंने भरतसे कहा—"हे पुत्र! तू इस राज्यको ग्रहण कर; हमतो अब संयम-साम्राज्यको ग्रहण करेंगे।" प्रभुकी ये बातें सुनकर क्षण भर तो भरत नीचा मुँह किये बैठा रहा, इसके बाद हाथ जोड़ नमस्कार कर गद्‌गद्‌ स्वरसे कहने लगा:—"हे प्रभो! आपके चरण-कमलोंकी पीठके आगे लोटनेमें मुझे जो आनन्द आता है, वह मुझे रत्नजड़ित सिंहासनपर बैठनेसे नहीं आ सकता; अर्थात आपकी चरणसेवामें जो सुख है, वह रत्नमय सिंहासन पर बैठनेमें नहीं है। हे प्रभो! आपके सामने पैदल दौड़नेमें मुझे जो सुख मिलता है, वह लीलासे गजेन्द्रकी पीठपर बैठनेसे नहीं मिलेगा। आपके चरण कमलों

छायामें जो सुख और आनन्द है, वह उज्ज्वल छत्रकी छाया में भी नहीं है। यदि मैं आपका विरही हूं, यदि आप मुझसे अलहिदा हों, अगर आपकी और मेरी जुदाई हो, तो फिर साम्राज्यलक्ष्मीका क्या प्रयोजन है? आपके न रहनेसे यह साम्राज्यलक्ष्मी निष्प्रयोजन हैं। इसमें कुछ भी सार और सुख नही है। क्योंकि आपकी सेवाके सुख रूपी क्षीर सागरमें राज्यका सुख एक बूँदके समान है; अर्थात आपकी सेवाका सुख क्षीरसागरवत् है और उसके मुकाबलेमें राज्यका सुख एक बूँदके समान है।

स्वामी का प्रत्युत्तर

भरत को राजगद्दी।

भरतकी बातें सुनकर स्वामीने कहा—"हमने तो राज्यको त्याग दिया है। अगर पृथ्वी पर राजा न हो, तो फिरसे मत्स्यन्याय होने लगे। सबसे बड़ी मछली जिस तरह छोटी मछलियों को निगल जाती है; उसी तरह बलवान लोग निर्बलोंकी चटनी कर जायें, उन्हें हर तरहसे हैरान करें। जिसकी लाठी उसकी भैंसवाली कहावत चरितार्थ होने लगे। ससारमें निर्बलोंके खड़े होनेको भी तिल भर ज़मीन न मिले। इसलिये हे वत्स! तुम इस पृथ्वीका यथोचित रूपसे पालन करो। तुम हमारी आज्ञापर चलने वाले हो और हमारी आज्ञा भी यही है।" प्रभुका ऐसा सिद्धादेश होने पर भरत उसे उल्लङ्घन कर न सकते थे, अतः उन्होंने प्रभुकी बात मंजूर कर ली; क्योंकि गुरुमें ऐसी ही विनय स्थित

होती है। इसके बाद भरतने नम्रतापूर्वक स्वामीको सिर झुका कर प्रणाम किया और अपने उन्नत वंश की तरह पिताके सिंहासनको अलंकृत किया। जिस तरह देवताओंने प्रभुका राज्याभिषेक किया था, उसी तरह प्रभुके हुक्मसे सामन्त और सेनापति आदिने भरतका राज्याभिषेक किया। उस समय प्रभुके शासनकी तरह, भरतके सिर पर पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान अखण्ड छत्र शोभने लगा। उनके दोनों तरफ ढोरे जाने वाले चँवर चमकने लगे। उनके देखनेसे ऐसा जान पड़ता था, मानो वे उत्तरार्द्ध और पूर्वार्द्ध दो भागोंसे भरतके यहाँ आने वाली लक्ष्मीके दूत हों। अपने अत्यन्त उज्वलके गुण हों, इस तरह कपड़ों और मोतियोंके ज़ेवरोंसे भरत शोभने लगे। बड़ी भारी महिमाके पात्र, उस नवीन राजाको, नये चाँद की तरह, अपने कल्याणकी इच्छासे राज-मण्डलीने प्रणाम किया।

संवत्सरी दान।

प्रभुने बाहुबलि प्रभृति अन्य पुत्रोंको भी उनकी योग्यतानुसार देश बाँट दिये। इसके बाद प्रभुने कल्पवृक्षकी तरह उनकी अपनी इच्छासे की हुई प्रार्थनाके अनुरूप, मनुष्योंको सांवत्सरिक दान देना आरम्भ किया; अर्थात कल्प-वृक्ष जिस तरह माँगने वालेको उसकी प्रार्थनानुसार फल देता है; उसी तरह प्रभुसे जिसने जो माँगा उन्होंने उसे वही दिया। इसके सिवा उन्होंने शहरके चौराहों और दरवाज़ोंपर ज़ोरसे डौंडी पिटवा दी-

साथ वज उठते हैं ; उसी तरह स्वर्ग की शाश्वत घण्टियाँ बड़े ज़ोरों से बज उठीं। पर्वतों की चोटियों के समान अचल और अडिग इन्द्रों के आसन, संभ्रम से हृदय काँपता है इस तरह, काँप उठे। उस वक्त सौधर्म देवलोकाधिपति सौधर्मेन्द्र के नेत्र काँपनेके आटोप से लाल होगये। ललाट-पट्टपर भृकुटी चढ़ानेसे उनका चेहरा विकाल होगया। भीतरी क्रोधरूपी अग्नि की शिखा की तरह उनके होंठ फड़कने लगे। मानो आसन को स्थिर करने के लिए—उस की कँपकँपी बन्द करनेके लिए—वे एक पाँव को ऊँचा करने लगे और 'आज यमराज ने किसको चिट्ठी दी है? आज मौत का वारण्ट किसपर जारी हुआ है? आज किसका काल पुकार रहा है?' ऐसा कहकर, उन्होंने अपना—शूरातन रूप अग्नि को वायु-समान—वज्र ग्रहण करने की इच्छा की। इन्द्र को कुपित केशरीसिंह की तरह देखकर, मानो मूर्त्तिमान हो—ऐसे सेनापतिने आकर कहा,—हे स्वामि! मुझ जैसे सिपाही के होते हुए, आप स्वयं आवेश में क्यों आते हैं? हे जगत्पति! आज्ञा कीजिये, मैं आप के किस शत्रु का मान मर्दन करूँ?' उसी क्षण, अपने मन का समाधान कर, इन्द्रने अवधिज्ञान से देखा, तो उसे मालूम हो गया कि, आदि प्रभुका जन्म हुआ है। उसके क्रोधका वेग तत्काल हर्षसे गल गया, खुशीके मारे.. गुस्सा फौरनही काफूर होगया। वृष्टिसे शान्त हुए दावानल पवतकी तरह, इन्द्र शान्त हो गया। 'मुझे धिक्कार है जो मैंने विचार किया, मेरा दुष्कृत मिथ्या हो' यह कहकर उसने २

कि जिसे जिस चीजकी जरूरत हो, वह आकर लेजाय। जिस समय प्रभु दान करने लगे, उस समय इन्द्रकी आज्ञासे, अलकापति कुवेर के भेजे हुए जृम्भकदेव बहुकालसे भ्रष्ट हुए, नष्ट हुए, बिना मालिक के मर्य्यादाको उल्लङ्घन कर जाने वाले पहाड, कुंज, श्मसान और घरमें छिपे हुए और गुप्त रूपसे रखे हुए सोने, चाँदी और रत्नोंको जगह-जगहसे लाकर वर्षाकी तरह बरसाने लगे। नित्य सूर्योदयसे भोजन-कालतक प्रभु एक करोड़ आठ लाख सुवर्ण मुद्रायें दान करते थे। इस तरह एक सालमें प्रभुने तीन सौ अट्ठासी करोड़ अस्सी लाख सुवर्ण या सुवर्ण मुद्राओंका दान किया। प्रभु दीक्षा ग्रहण करने वाले हैं, संसार से विरक्त होने वाले हैं, यह जानकर लोगोंका मन भी विरक्त हो गया था, उनके मनोंमें भी वैराग्यका उदय हो आया था, इससे वे लोग सिर्फ जरूरतके माफ़िक दान लेते थे, यद्यपि प्रभु इच्छानुसार दान देते थे, तथापि लोग अधिक न लेते थे।

प्रभुका दीक्षा महोत्सव।

वार्षिक दानके अन्तमें, अपना आसन चलायमान होनेसे इन्द्र, दूसरे भरतकी तरह, भगवान्‌के पास आया। जल-कुम्भ हाथमें रखने वाले दूसरे इन्द्रोंके साथ, उसने राज्याभिषेककी तरह जगत्पतिका दीक्षा-सम्बन्धी अभिषेक किया। उस कार्यका अधिकारी ही हो, इस तरह उस समय इन्द्र द्वारा लाये हुए दिव्य गहने और कपड़े प्रभुने धारण किये। मानो अनुत्तर विमानके अन्दरका एक

विमान हो ऐसी सुदर्शना नामकी पालकी इन्द्रने प्रभुके लिए तैयार की। इन्द्रके हाथका सहारा देनेपर, लोकाग्र रूपी मन्दिरकी पहली सीढ़ीपर चढ़ते हों, इस तरह प्रभु पालकी पर चढ़े। पहले रोमाञ्चित हुए मनुष्योंने, फिर देवताओंने अपना मूर्त्तिमान पुण्यभार समझकर पालकी उठाई। उस समय सुर और असुरों द्वारा बजाये हुए मगल बाजों ने अपने नादसे, पुस्करावर्त्त मेघकी तरह, दिशायें पूर्ण कर दीं; यानी उन बाजोंकी आवाज़ दशों दिशाओं में फैल गई। मानों इस लोक और परलोककी मूर्त्तिमान निर्मलता हों—इस तरह दो चँवर प्रभुके दोनों ओर चमकते थे। बन्दीगण या भाटोंकी तरह देवता लोग मनुष्योंके कानोंकी तृप्ति करने वाला भगवानका जयजयकार उच्च स्वरसे करने लगे। पालकीमें बैठकर जाते हुए प्रभु उत्तम देवोंके विमानमें रहने वाली शाश्वत प्रतिमा जैसे शोभते थे। इस प्रकार भगवानको जाते हुए देखकर, शहरके लोग उनके पीछे इस तरह दौड़े, जिस तरह बालक पिताके पीछे दौड़ते हैं। कितने ही तो मेहको देखने वाले मोरकी तरह प्रभुको देखनेके लिये ऊँचे ऊँचे वृक्षोंकी डालियों पर चढ़ गये। स्वामीके दर्शनार्थ राह-किनारेके मकानोंके छज्जों और छतोंपर बैठे हुए लोगोंपर सूरजका प्रबल आतप पड़ रहा था—तेज़ धूप उनके शरीरोंको जलाये डालती थी—पर वे उस कड़ी घामको चन्द्रमाकी शीतल चाँदनीके समान समझते थे। कितनोंही को घोड़ों पर चढ़कर जाने तककी देर बर्दाश्त न होती थी, इसलिये वे घोड़ों पर न चढ़कर स्वयं घोड़े हों इस तरह राहमें दौड़ते थे। कितनेही

पानीमें मछलीकी तरह भीड़में घुसकर स्वामीके दर्शनकी आकांक्षा से आगे निकल जाने लगे। जगदीशके पीछे-पीछे दौड़ने वाली कितनी ही रमणियोंके हार भागा-दौडमें टूट जाते थे, इससे ऐसा जान पडता था, गोया वे प्रभुको लाजाञ्जलि बँधाती हों। यह सुनकर कि, प्रभु आते हैं, उनकी दर्शनाभिलाषिणी कितनी ही स्त्रियाँ गोदमें बालक लिये चन्द्रों-सहित लताओं सी सुन्दर दीखती थीं। पीन पयोधरों या कुच-कुम्भोंके भारके कारण मन्द गतिसे चलने वाली कितनीही स्त्रियाँ—दोनों बाजुओंमे दो पख हों—इस तरह दोनों तरफ रहनेवाली दोनों सखियोंकी भुजाओं का सहारा लेकर आती थीं। कितनीही स्त्रियाँ प्रभु के दर्शनों के आनन्दकी इच्छासे, गतिभंग करने वाले—चलनेमें रुकावट डालने वाले भारी नितम्बोंकी निन्दा करती थीं, राहमें पडनेवाले घरोंकी अनेक कुल-कामिनियाँ सुन्दर कसूमी रंगके कपडे पहने हुए और पूर्णपात्रको धरण किये हुए खडी थीं। वे चन्द्र-सहित सन्ध्याके समान सुहावनी लगती थीं। कितनीही चञ्चलनयनी प्रभुको देखने की इच्छासे अपने हस्त-कमलोंसे चँवर-सदृश वस्त्रके पल्लेको फिराती थीं। कितनीही ललनायें नाभिनन्दनके ऊपर धानी फैंकती थीं। उन्हें देखनेसे ऐसा जान पडता था, मानो वे अपने पुण्यके बीज पूर्ण रूपसे बो रही हों। कितनी ही स्त्रियाँ मानों भगवान्के घरकी सुवासिनी हों इस तरह, चिरजीव चिरनन्द, आयुस्मन् आशीर्वाद देती थीं। कितनीही कमलनयनी नगर नारियाँ अपने नेत्रों को निश्चल और गति को तेज़ करके प्रभु के पीछे-पीछे चलती और उन्हें देखती थीं।

अब अपने बड़े बड़े विमानोंसे पृथ्वीतलको एक छायावाला करते हुए चारों प्रकार के देवता आकाशमें आने लगे। उनमेंसे कितने ही उत्तम देवता मद चूने वाले हाथियों को लेकर आये थे। इससे वे आकाश को मेघाच्छन्न करते हुए से मालूम होते थे। कितने ही देवता आकाश रूपी महासागरमें नौका रूपी घोड़ों पर चढ़ कर, चाबुक रूपी नौका के दण्डे सहित, जगदीश को देखने के लिये आये थे। कितनेही देवता मूर्त्तिमान पवन ही हो इस तरह अतीव वेगवान रथोंमें बैठकर नाभि-कुमार के दर्शनों को आ रहे थे। ऐसा मालूम होता था, मानों वाहनों की क्रीड़ा में उन्होंने परस्पर बाज़ी मारनेकी प्रतिज्ञा की हो। क्योंकि वे आगे निकलने में अपने मित्रों की राह को भी न देखते थे। अपने-अपने गाँवोंमें पहुँचने पर पथिक जिस तरह कहते हैं कि "यह गाँव! यह गाँव!" और अपनी सवारी को रोक लेते हैं ; उस तरह देवता भी प्रभु को देखतेही "यह स्वामी! यह स्वामी!" कहते हुए अपने-अपने वाहनों को ठहरा लेते थे। विमान रूपी हवेलियों और हाथी, घोड़े एवं रथों से आकाशमें दूसरी विनिता नगरी बसी हुई सी मालूम होती थी। सूर्य और चन्द्रमासे घिरे हुए मानुषोत्तर पर्वत की तरह जिनेश्वर भगवान् अनेक देवताओं और मनुष्योंसे घिरे हुए थे। जिस तरह दोनों ओरसे समुद्र सुशोभित होता है ; उसी तरह वे दोनों सुशोभित थे। जिस तरह हाथियों का झुण्ड अपने यूथपति का अनुसरण करता है, उसी तरह शेष अट्ठावन विनीत पुत्र प्रभु के पीछे-पीछे चल रहे थे। माता मरुदेवा, पत्नी सुनन्दा और सुमंगला

आदिनाथ चरित्र
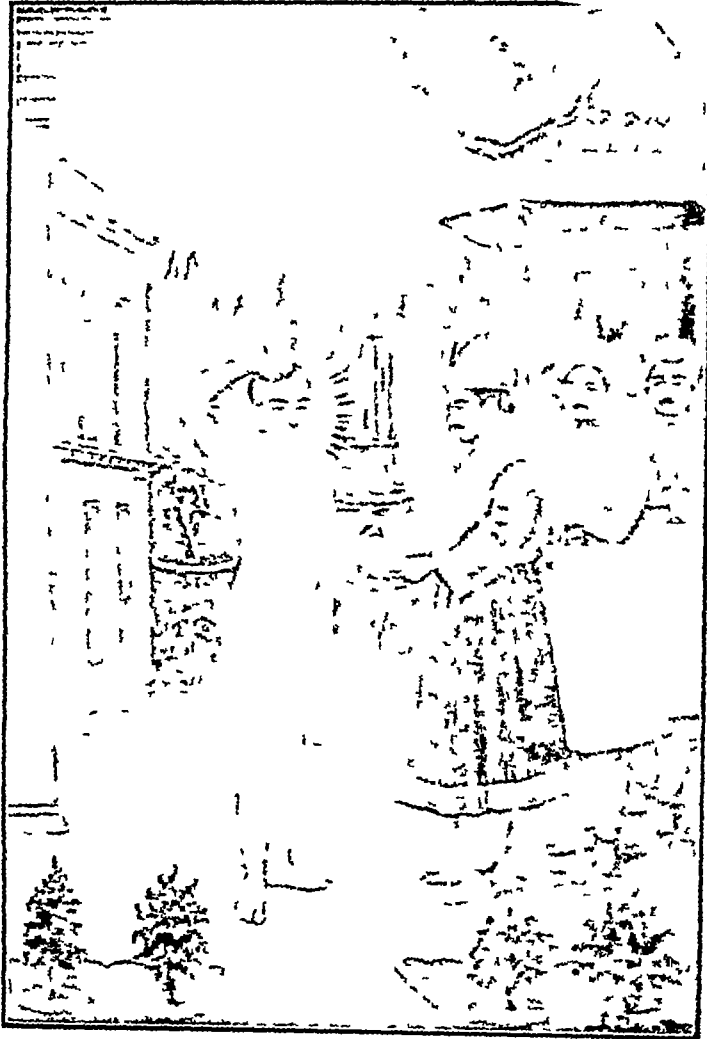
इस तरह प्रभुने अपनी चार मुट्ठियोंमे अपने बाल नोच लिये । सौधर्म-पति ने प्रभुके केश अपने वस्त्रके आँचलमें लेलिये, उससे ऐसा मालूम होने लगा मानो इस कपडे को दूसरे रंगके तन्तुओंसे मण्डित करता हो ।

[पृष्ठ २४६]

Narsingh Press, Calcutta

एवं पुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी तथा अन्य स्त्रियाँ—हिमकण सहित पद्मिनी या बर्फ के कणों सहित कमलिनी की तरह—मुखों पर आँसुओं की बूँदों सहित प्रभुके पीछे-पीछे चल रही थीं। पूर्वजन्मके सिद्धि विमानके जैसे सिद्धार्थ नामके बागमें प्रभु पधारे, अर्थात् जिस बागमें प्रभु पधारे, उसका नाम सिद्धार्थ उद्यान था और वह प्रभुके पूर्व जन्म के सर्वार्थ सिद्ध विमान जैसा मालूम होता था। ममता रहित मनुष्य जिस तरह संसारसे निवृत्त होता है, उसी तरह नाभिनन्दन पालकी रुपी रत्न से वहाँ अशोक वृक्षके नीचे उतरे और कषायों की तरह वस्त्र, माला और गहने उन्होंने तत्काल त्याग दिये। उस समय इन्द्रने प्रभुके पास आकर, मानो चन्द्रमा की किरणोंसे बना हो ऐसा उज्ज्वल और महीन देवदुष्य वस्त्र प्रभुके कन्धे पर डाल दिया।

प्रभुका चारित्र ग्रहण।

इसके बाद चैतके महीनेमें कृष्ण पक्षकी अष्टमी को चन्द्रमा उत्तराषाढा नक्षत्रमें आया था। उस समय दिन के पिछले पहरमें, जय जय शब्दके कोलाहल के मिषसे हर्षोद्गार करते हुए देव और मनुष्योंके सामने, गोया चारों दिशाओं को प्रसाद देनेकी इच्छा हो, इस तरह प्रभुने अपनी चार मुट्ठियों से अपने बाल नोच लिये। सौधर्मपति ने प्रभुके केश अपने वस्त्रके आँचल में ले लिये, उससे ऐसा मालूम होने लगा मानो इस कपड़े को दूसरे रंगके तन्तुओंसे मण्डित करता हो। प्रभुने ज्योंही पाँचवीं मुट्ठीसे

वाकी के वालों को उखाड़ने की इच्छा की, त्योंही इन्द्रने प्रार्थना की—"हे स्वामिन्! अव इतनी केशवल्ली को रहने दीजिये, क्योंकि हवा से जव वह आपके सोनेकी सी कान्तिवाले कन्धे पर आती है, तव मरकत मणि की शोभा को धारण करती है। प्रभुने इन्द्रकी वात मान, वह केशवल्ली वैसेही रहने दी, क्योंकि स्वामी लोग अपने अनन्य या एकान्त मतोंकी याचना का खण्डन नहीं करते इसके वाद सोधर्मपतिने उन वालों को क्षीरसागरमें फेंक आकर सूत्रधार की तरह मुट्ठी सञ्ज्ञासे वाजों को रोंका इस समय छट्ठ तप करने वाले नाभि कुमारने देव, असुर और मनुष्यों के सामने सिद्ध को नमस्कार करके 'समस्त सावद्य योगका प्रत्याख्यान करता हूँ, यह कह कर मोक्ष मार्ग के रथतुल्य चारित्र को ग्रहण किया, शरद् ऋतुकी धूपसे तपे हुए मनुष्योंको जिस तरह वादलोंकी छाय सेसुख होता है, उसी तरह प्रभुके दीक्षा उत्सवसे नारकी जीवोंको भी क्षण मात्र सुख हुआ। मानो दीक्षाके साथ संकेत करके रहा हो, इस तरह मनुष्यक्षेत्र में रहने वाले सर्व संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंके मनोद्रव्यको प्रकाश करने वाला मनः पर्यवज्ञान शीघ्रही प्रभुमें उत्पन्न हुआ। मित्रोंके निवारण करने वन्धुओंके रोकने और भरतेश्वरके वारम्वार निषेध करने पर भी कच्छ और महाकच्छ प्रभृति चार हजार राजाओंने स्वामीकी पहलेकी हुई वडी वडी दयाओंको याद करके, भौंरेकी तरह उनके चरण कमलोंका विरह या जुदाई न सह सकनेसे अपने पुत्र कलत्र और राज्य प्रभृतिको तिनकेके समान त्यागकर "जो स्वामीकी गति वही हमारी गति"

कहते हुए वडी प्रसन्नतासे प्रभुके साथ दीक्षा ली। नौकर चाकरो का क्रम ऐसाही होता है।

इन्द्रकी की हुई स्तुति।

इसके बाद इन्द्र प्रभृति देवता आदि नाथको हाथ जोड़ प्रणाम कर स्तुति करने लगे—"हे प्रभो! हम आपके यथार्थ गुण कहनेमें असमर्थ हैं, तथापि हम स्तुति करते हैं; आपके प्रभावसे हमारी बुद्धिका विकाश होता है। त्रस और स्थावर जन्तुओंकी हिंसाका परिहार करनेसे अभय दान देनेवाली दानशाला रूप आपको हम नमस्कार करते हैं। समस्त मृषावादका परिहार करने से हितकारी सत्य और प्रिय वचन रुपी सुधारसके समुद्र आपको हम नमस्कार करते हैं। अदत्तादान का न्याय करने से रुके हुए पहले पथिक हैं, अतः हे भगवान् हम आपको नमस्कार करते हैं। हे प्रभो! कामदेव रूपी अन्धकार के नाश करने वाले और अखण्डित ब्रह्मचर्य रूपी महातेजस्वी सूर्यके समान आपको हम नमस्कार करते हैं! तिनके की तरह पृथ्वी प्रभृति सब तरह के परिग्रहों को एक दम त्याग देने वाले और निर्लोभिता रूपी आत्मा वाले आप को हम नमस्कार करते हैं आप पञ्च महाव्रतों का भार उठानेमें वृषभके समान हैं और संसार-सागर को पार करनेमें कछुए के समान हैं, आप महा पुरूष हैं, आपको हम नमस्कार करते हैं। हे आदिनाथ! पाच महाव्रतों की पाँच सहोदराओं जैसी पाँच समितियों को धारण करने वाले आपको हम

नमस्कार करते हैं। आत्माराम में मन लगाये रखने वाले, वचन की सवृत्तिसे शोभने वाले और शरीर की सारी चेष्टाओं से निवृत्त रहने वाले; अर्थात् इन तीन गुप्तियों को धारण करने वाले आपको हम नमस्कार करते हैं।"

प्रभु और उनके साथियों का भूख प्यास आग सहन करना।

इस तरह प्रभु की स्तुति करके जन्माभिषेक काल की भाँति देवता नन्दीश्वर द्वीपमें जाकर अपने अपने स्थानों को गये। देवताओं की तरह भरत और बाहुबलि प्रभृति भी प्रभुको प्रणाम करके, बड़े कष्टके साथ अपने अपने स्थानों को गये और दीक्षा लिये हुए कच्छ और महाकच्छ प्रभृति राजाओंसे घिरे हुए एवं मौन धारण किये हुए भगवान् ने पृथ्वी पर विहार करना आरम्भ किया। पारणेके दिन भगवान् को कहींसे भी भीख न मिली। क्योंकि उस समय लोग भिक्षादान को नहीं समझते थे, एक दम सरल स्वभाव थे। भिक्षार्थ आये हुए प्रभुको पहले की तरह राजा समझकर कर, कितने ही लोग उन्हें सूर्यके घोड़े उच्चैश्रवा को भी चालमें परास्त करने वाले घोड़े देते थे। कोई कोई उन्हें शौर्यसे दिग्गजों—दिशाओंके हाथियों को जीतने वाले हाथी भेंट करते थे। कोई कोई रूप और लावण्यसे अप्सराओंको जीतने वाली कन्यायें अर्पण करते थे। कोई कोई चपला की तरह चमकने वाले गहने और ज़ेवर प्रभुके आगे रखते थे। कोई कोई सन्ध्या कालके अभ्र

के समान चित्र-विचित्र वस्तु या कपड़े देते थे। कोइ मन्दार पुष्पोंकी मालासे स्पर्द्धा करनेवाले फुलोंकी मालायें देता था। कोई मेरु पर्वत के शिखर जैसी काञ्चन-राशि भेंट करता था और कोई रोहणा चलके शिखर सदृश रत्न समूह देता था। पर प्रभु उनकी दी हुई किसी चीज़ को न लेते थे। भिक्षा न मिलने पर भी अ-दीनमना प्रभु जङ्गम तीर्थकी तरह विहार करते हुए पृथ्वीतल को पवित्र करते थे। मानो उनका शरीर रस रक्त और मांस प्रभृति सात धातुओं से वना हुआ नहीं था, इस तरह प्रभु भूख प्यास प्रभृति परिषहों को सहन करते थे। नाव जिस तरह हवा का अनुसरण करती है—हवाके पीछे पीछे चलती है, उसी तरह अपनी इच्छासे दीक्षित हुए राजा भी स्वामी का अनुसरण कर विहार करते थे।

सहदीक्षितों की चिन्ता।

अब क्षुधा आदि से ग्लानि को प्राप्त हुए और तत्वज्ञान हीन वे तपस्वी राजा अपनी वुद्धिके अनुसार विचार करने लगे:—ये स्वामी मानो किंपाकके फल हों, इस तरह मधुर फलोंको भी नहीं खाते और खारी जल हो इस तरह स्वादिष्ट जलको भी नहीं पीते। शरीर शुश्रुषा में अपेक्षा रहित हो जानेसे ये स्नान और विलेपन भी नहीं करते, यानी शरीर की ओर से लापरवा हो जानेसे न स्नान करते हैं और न चन्दन केसर और कस्तूरी आदिका शरीर पर लेप करते हैं। कपड़े, गहने और फूलोंको भी भार समझ कर ग्रहण

नही करते। पर्वत की तरह, हवासे उड़ाई हुई राह की धूलसे आलिङ्गन होता है। मस्तक को तपा देने वाली धूपको मस्तक पर सहन करते हैं। कभी सोते नहीं तो भी थकते नही और श्रेष्ठ हाथीकी तरह उन्हें सरदी और गरमीसे तकलीफ नहीं होती। ये भूखको कोई चीज़ समझते ही नहीं, प्यास क्या होती है, इसे जानते भी नहीं, और वैरवाले क्षत्रिय की तरह नींद लेते नहीं; यद्यपि अपन लोग उनके अनुचर हुए हैं, तथापि अपन लोग अपराधी हों, इस तरह वे अपनी ओर देखकर भी अपनको सन्तुष्ट नहीं करते—फिर बोलने का तो कहना ही क्या? इन प्रभुने अपने स्त्री पुत्र आदि परिग्रह त्याग दिये हैं, तो भी ये अपने दिल में क्या सोचा करते हैं, इस बातको अपन नहीं जानते। इस तरह विचार करके वे सब तपस्वी अपनी मण्डली के अगुआ—स्वामीके पास सेवक की तरह रहने वाले—कच्छ और महा कच्छ से कहने लगे—"कहाँ ये भूखको जीतने वाले प्रभु और कहाँ धूपको सहनेवाले प्रभु और कहाँ छायके मकड़े जैसे अपन? अपन अन्नके कीड़े? कहाँ ये प्यास को जीतनेवाले प्रभु और कहाँ जलके मेंढक समान अपन? कहाँ शीतसे पराभव न पाने वाले प्रभु और कहाँ अपन बन्दर के समान काँपने वाले? कहाँ निद्रा को जीतने वाले प्रभु और कहाँ अपन नींदके अजगर? कहाँ रोज ही न बैठने वाले प्रभु और कहाँ आसनमें पशुके समान अपन? समुद्र लाँघने में कव्वे जिस तरह गरुड़का लनुसरण करते है; उसी स्वामीने, व्रत धारण किया है उसके पीछे पीछे चलना या उनकी नकल करना अपन लोगोंने

आरम्भ किया है। क्या अपनी जीविकाके लिये अपनको अपना राज्य फिर ग्रहण करना चाहिये ? अपने राज्य तो भरत ने ग्रहण कर लिये है, इसलिये अब अपन को कहाँ जाना चाहिये ? क्या अपने जीवनके लिये अपने को भरत की शरण में जाना चाहिये ? परन्तु स्वामी को छोड़कर जानेमें अपन को उसका ही भय है। हे आर्य्यों ! हे श्रेष्ठ पुरुषो ! अपन लोग प्रभु के विचारों को जानने वाले और सदा उनके पास रहने वाले हो, कृपया बताइये कि हम किंकर्त्तव्यमूढ़ लोग क्या करें ?

उन्होंने कहा—"स्वयंभूरमण समुद्रका अन्त जो ला सकता है वही प्रभुके विचारों को जान सकता है। पहले तो प्रभु हमें जो आज्ञा प्रदान करते थे, हम वही करते थे, लेकिन आजकल तो प्रभुने मौन धारण कर रखा है, इसलिये अब वह कुछ भी आज्ञा नही करते। इस लिये जिस तरह तुम कुछ नहीं जानते, उसी तरह हम भी कुछ नहीं जानते। अपन सबकी समान गति है। इसलिये आप लोग कहें वैसा करें। इसके बाद वे सब गङ्गानदीके निकटके बागमें गये और वहाँ स्वच्छन्दता पूर्वक कन्दमूल फलादि खाने लगे तभी से वनवासी कन्द मूल फल फूल खानेवाले तपस्वी पृथ्वी पर फैले।

नमि और विनमिका आगमन।

उन कच्छ महाकच्छके नमि और विनमि नामके दो विनीत और सुशील पुत्र थे। वे प्रभुके दीक्षा लेनेसे पहले उसकी आज्ञा

से दूर देशको गये थे। वहाँसे लौटते हुए उन्होंने अपने पिताको वनमें देखा। उनको देखकर वे विचार करने लगे— वृषभनाथ जैसे नाथके होने पर भी, हमारे पिता अनाथकी तरह इस दशाको क्यों प्राप्त हुए। कहाँ उनके पहनने योग्य महीन वस्त्र और कहाँ भीलोंके पहनने योग्य वल्कल—वस्त्र? कहाँ शरीरपर लगाने योग्य उब्टन और कहाँ पशुओंके लोट मारने योग्य ज़मीनकी धूल मिट्टी? कहाँ फूलोंसे गुथा हुआ केशपाश और कहाँ वटवृक्ष सदृश लम्बी जटायें,? कहाँ हाथीकी सवारी और कहाँ प्यादेकी तरह पैदल चलना? इस प्रकार विचार करके उन्होंने अपने पिताको प्रणाम किया और सब हाल पूछा। तब कच्छ और महाकच्छने कहा—"भगवान् ऋषभध्वज ने राज-पाट त्याग, भरत प्रभृति को पृथ्वी बाँट, वृत ग्रहण किया है। जिसतरह हाथी ईख को खाता है, उसी तरह हमने साहससे उन के साथ व्रत ग्रहण किया था; परन्तु भूख, प्यास, शीत और घाम प्रभृतिके क्लेशोंसे दुखी होकर, जिस तरह गधे और खच्चर अपने ऊपर लदे हुए भार को पटक देते हैं उसी तरह हमने व्रतको भंग कर दिया है। हम लोग प्रभुका सा बर्ताव कर नहीं सके और उधर ग्रहस्थाश्रम भी अंगीकार नहीं किया, इससे तपोवन में रहते हैं।" ये बातें सुनकर उन्होंने कहा—"हम प्रभुके पास जाकर पृथ्वी का भाग माँगे।" यह बात कहकर नमि और विनमि प्रभु के चरण-कमलोंके पास आये। प्रभु निःसंग हैं। इस बात को वे न जानते थे, अतः उन्होंने कायोत्सर्ग ध्यान में स्थित प्रभु को

प्रणाम करके प्रार्थनाकी—"हम दोनोंको दूर देशान्तरमें भेज कर, आपने भरत प्रभृति पुत्रों को पृथ्वी बाँट दी और हमें गायके खुर बराबर भी पृथ्वी नहीं दी! अतः हे विश्वनाथ! अब प्रसन्न होकर उसे हमें दीजिये आप देवोंके देव हैं। हमारा क्या अपराध देखा, जिससे देना तो परे किनारा, आप हमारी बात का जवाब भी नहीं देते?" उनके यह कहने सुनने पर भी प्रभु ने उस समय कुछ भी जवाब न दिया। क्योंकि ममता—रहित पुरुष दुनियाँके झगड़ोंमें लिप्त नहीं रहते। प्रभु कुछ नहीं बोलते थे, पर प्रभुही अपने आश्रय-स्थल हैं। ऐसा निश्चय कर के वे प्रभु की सेवा करने लगे स्वामीके पासके मार्ग की धूल शान्त करने के लिये वे सदा ही कमलपत्र में जलाशय—तालावसे जल ला लाकर। छिड़कने लगे। सुगन्ध से मतवाले भौंरों से घिरे हुए फूलों के गुच्छे ला लाकर वे धर्म चक्रवर्त्ती भगवानके सामने बिछाने लगे। सूरज और चन्द्रमा जिस तरह रात-दिन मेरु पर्वत की सेवा करते हैं, उसी तरह वे सदा प्रभु के पास खड़े हुए तलवार खींच कर उनकी सेवाकरने लगे। और नित्य तीनो समय हाथ जोड कर याचना करने लगे—" हे स्वामी! हमें राज्य दो। आपके सिवा हमारा दूसरा कोई स्वामी नहीं है।

नमि विनमि और धरणेन्द्र।

एक दिन प्रभुकी चरण—वन्दना करने के लिए; नागकुमारका श्रद्धावान् अधिपति धरणेन्द्र वहाँ आया। उसने सविस्मय देखा

कि दो सरल स्वभाव बालक राज्य-लक्ष्मी माँगते और भगवान् की सेवा करते हैं। नागराजने अमृत समान मीठी वाणीसे उनसे कहा—"तुम कौन हो और साग्रह दृढ़ताके साथ क्या माँगते हो? जिस समय जगदीशने एक वर्षतक मन चाहा महा दान हर किसीको विना जरा भी रोकटोकके दिया था, उस समय तुम कहाँ थे? इस वक्त स्वामी निर्भय, निष्परिग्रह, अपने शरीरमें भी आकाँक्षा रहित, और रोष-तोषसे विमुक्त हो गये हैं, अर्थात इस समय प्रभु मोह-ममता रहित, और जंजालसे अलग हो गये हैं। उन्हे अपने शरीरकी भी आकांक्षा नहीं है। राग और द्वेषने उनका पीछा छोड़ दिया है।" यह भी प्रभुका सेवक है, ऐसा समझकर नमि विनमिने मानपूर्वक उनसे कहा—"ये हमारे स्वामी—मालिक और हम इनके सेवक या चाकर हैं। इन्होंने आज्ञा देकर हम को किसी और जगह भेज दिया और भरत प्रभृति अपने पुत्रोंको राज्य बाँट दिया। यद्यपि इन्होंने सर्वस्व दे दिया हैं, तथापि ये हमको भी राज्य न देंगे। उनके पास वह चीज है या नहीं, ऐसी चिन्ता करनेकी सेवकको क्या जरूरत? सेवकका कर्त्तव्य तो स्वामी की सेवा करना है।" उनकी बातें सुनकर धरणेन्द्र ने उनसे कहा—"तुम भरतके पास जाकर भरतसे माँगो। वह प्रभुका पुत्र है, अतः प्रभु तुल्य है।" नमि और विनमिने कहा—"इन विश्वेस को पाकर, अब हम इन्हें छोड़ और दूसरेको स्वामी नहीं मानेंगे। क्योंकि कल्पवृक्षको पाकर करीलकी सेवा कौन करता है? हम जगदीशको छोड़कर, दूसरे से नहीं माँगेंगे।

क्या चातक—पपहिया मेघको छोड दूसरेसे याचना करता है ? भरत आदिक का कल्याण हो ! आप किसलिये चिन्ता करते हैं ? हमारे स्वामी से जो होना हो सो हो, उसमें दूसरेको क्या मतलब ? अर्थात हम सेवक, ये स्वामी, हम याचक, ये दाता, इनकी इच्छा हो सो करें। इनके और हमारे बीचमें बोलने वाला दूसरा कौन ?

नमि विनमि को धरणेन्द्र द्वारा वैताढ्य का राज दिया जाना।

उन कुमारों की उपरोक्त युक्तिपूर्ण बातें सुनकर नागराजने प्रसन्न होकर कहा—"मैं पातालपति और इन स्वामी का सेवक हूँ। तुम धन्य हो, तुम भाग्यशाली और बडे सत्यवान हो जो इन स्वामीके सिवा दूसरेको सेवने योग्य नहीं समझते और इसकी दृढ़ प्रतिज्ञा करते हो। इन भुवन पति की सेवासे पाशसे खींची हुई की तरह राज्य सम्पतियाँ पुरुषके सामने आकर खडी हो जाती हैं। अर्थात इन जगदीश की सेवा करने वालेके सामने अष्ठ सिद्धि और नवनिद्धि हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं। इतना ही नहीं, इन महात्मा की कृपासे, लटकते हुए फलकी तरह, वैताढ्य पर्वतके ऊपर रहने वाले विद्याधरोंका स्वामित्व भी सहजमें मिल सकता है। और इनकी सेवासे, पैरोंके नीचेके खज़ाने की तरह, भुवनाधिपति की लक्ष्मी भी विना किसी प्रकारके प्रयास और उद्योग के मिल जाती है। मन्त्रसे वशमें किये हुए की तरह, इनकी सेवासे व्यन्तरेन्द्र की लक्ष्मी भी इनके सेवक के पास नम्र होकर

रहती है। जो भाग्यशाली पुरुष इनकी सेवा करता है, स्वयंवर वधूके समान, ज्योतिष्पति की लक्ष्मी भी उसे वरती है—उसे अपना पति बनाती है। वसन्त-ऋतुसे जिस तरह विचित्र विचित्र प्रकारके फूलों की समृद्धि होती है, उसी तरह इनकी सेवासे इन्द्रकी लक्ष्मी भी प्राप्त होती है। मुक्तिकी छोटी बहन जैसी ओर कठिन से मिलने योग्य अहमिन्द्र की लक्ष्मी भी इनकी सेवा करने वाले को मिलती है। इन जगदीश की सेवा करने वाले प्राणी को जन्म—मरण रहित सदा आनन्दमय परमपद की प्राप्ति होती है। अर्थात् इनका सेवक जन्म-मरणके कष्ट से छुटकारा पाकर नित्य सुख भोगता है। ज़ियादा क्या। कहूँ, इनकी सेवासे प्राणी इस लोक में इनकी ही तरह तीन लोक का अधिपति और परलोकमें सिद्ध होता है। मैं इन प्रभुका दास हूँ और तुम भी इनके सेवक हो; अतः इनकी सेवाके फल स्व-रूप मैं तुम्हें विद्याधरोंका ऐश्वर्य देता हूँ। उसे तुम इनकी सेवा से ही मिला हुआ समझो। क्योंकि पृथ्वी पर जो अरुण का प्रकाश होता है वह भी तो सूर्यसे ही होता है ये कहकर पाठ करने मात्रसे सिद्धिके देने वाली यों ही और प्रजाप्ति प्रभृति अड़तालिस हजार विद्याएँ उन्हें दी और आदेश किया कि तुम वैताढ्य पर्वत पर जाकर दो श्रेणियों में नगर स्थापन करके अक्षय राज करो। इसके बाद वे भगवान्को नमस्कार करके, पुष्पक विमान बना, उसमें बैठ, नागराजके साथही वहाँसे चल दिये। पहले उन्होंने अपने पिता कच्छ और महाकच्छके पास जाकर, स्वामी-सेवा रूपी

वृक्षके फल स्वरूप उस नूतन सम्पत्तिकी प्राप्ति का वृतान्त निवेदन किया, अर्थात् अपने पिताओं के पास जाकर उनसे कहा कि हमने स्वामीकी इस तरह सेवा की और उसके एवज़में हमें ये नवीन सम्पत्ति—विद्याधरोंका राज मिला है। इसके बाद वे अयोध्या पति महाराज भरतके पास गये और अपनी सम्पत्ति और राज पानेका सारा हाल कह सुनाया। यानी पुरुष के मानकी सिद्धि अपना स्थान बतानेसे ही होती है। शेषमें वे अपने नाते रिश्तेदारो और नौकर चाकरो—स्वजन और परिजनों को साथ लेकर उत्तम विमान में बैठ, वैताढ्य पर्वतकी ओर रवाना हुए।

वैताढ्य पर्वत पर बसाये हुए ११० नगर।

वैताढ्य पर्वत के प्रान्त भागको लवण-समुद्र की उत्तान तरङ्गे चुमती थी और वह पूरब तथा पश्चिम दिशा का मानदण्ड सा मालूम होता था, भरत क्षेत्र के उत्तर और दक्षिण भागकी सीमा स्वरूप वह पहाड़ उत्तर-दक्खन ४०० मील लम्बा है, पचास मील पृथ्वी के अन्दर है और पृथ्वीके ऊपर २०० मील ऊँचा है। मानो भुजायें फैलायें हो, इसतरह हिमालयने गङ्गा और सिन्ध नदियोंसे उसका आलिङ्गन किया है। भरतार्द्ध की लक्ष्मी के विश्राम के लिये क्रिड़ा घर हों—ऐसी खण्डप्रभा और तमिस्रा नामकी कन्दराएँ उसके अन्दर हैं। जिस तरह चूलिका या चोटी से मेरू पर्वत की शोभा दीखती है; उसी तरह शाश्वत प्रतिभा युक्त सिद्ध-पद शिखर या चोटीसे अपूर्व शोभा झलक मारती है। विचित्र

रत्नमय नवीन कण्ठाभरण जैसी नौ चोटियाँ उस पहाड़ पर हैं। यहाँ देवता क्रीड़ा करते हैं। दक्खन और उत्तर ओर १६० मील की ऊँचाई पर, मानो वस्त्र हों ऐसी व्यन्तरों की दो निवास श्रेणियाँ उस पहाड़ पर मोजूद हैं। नीचे से चोटी तक मनोहर सोने की शिलाओंवाले उस पर्वत को देखने से मालूम होता है मानों स्वर्गके एक पाँव का आभरण या गहना नीचे गिरा हुआ है। हवाके कारण से पहाड़ के ऊपर के वृक्षों की शाखायें हिल रही थीं, उनके देखने ऐसा जान पड़ता था, मानो पर्वत की भुजायें दूरसे बुला रही हों। उसी वैताढ्य पर्वत पर नामि और विनमि जा पहुँचे।

नमि राजाने, पृथ्वी से अस्सी मील की ऊँचाई पर, उस पर्वत की दक्खन श्रेणी में पचास शहर बसाये। किन्तु पुरुषों ने जहाँ पहले गान किया है, ऐसे बाहुकेतु, पुण्डरीक, हरित्केतु, सेतकेतु, सर्पारिकेतु, श्रीबाहु, श्रीगृह, लोहार्गल, अरिंजय, स्वर्ग। लीला, वज्रार्गल, वज्रविमोक, महीसारपुर, जयपुर, सुकृतमुखी, चतुर्मुखी, बहुमुखी, रता, विरता, अखण्डलपुर, विलासयोनि पुर अपराजित, काँचीदाम, सुविनय, नभःपुर, क्षेमंकर, सहचिन्हपुर, कुसुमपुरी, संजयन्ती, शक्रपुर, जयन्ती, वैजयन्ती, विजया, क्षेमंकर्रा, चन्द्रभासपुर, रविभासपुर, सप्तभूतलावास, सुविचित्र, महाग्रपुर, चित्रकूट, त्रिकूटक, वैश्रवणकूट, शशिपुर, रविपुर, विमुखी, वाहिनी, सुमुखी, नित्योद्योतिनी, और श्री रथनुपुर, चक्रवाल- ये उन नगर और नगरियोंके नाम रक्खे। इन नगरोंके बीचों

बीचमें आये हुए रथनुपुर चक्रवाल नगरमें नामी ने निवास किया।

धरणेन्द्र की आज्ञासे पर्वत की उत्तर श्रेणी में विनमीने उसी तरह पचास नगर बसाये। अर्जुनी, वारुणी, वैसहारिणी, कैलास-वारुणी, विद्युत्दीप, किलिकिल, चारुचूड़ामणि, चन्द्रभाभूषण, वन्शावत्, कुसुम चूल, हन्सगर्भ, मेघक, शङ्कर, लक्ष्मीहर्म्य, चामर, विमल, असुमत्कृत, शिवमन्दिर, वसुमती, सर्व सिद्धस्तुत, सर्व शत्रुंजय, केतुमालांक, इन्द्रकान्त, महानन्दन, अशोक, वीत शोक, विशोकक, सुखालोक, अलक तिलक, नभस्तिलक, मन्दिर, कुमुद कुन्द, गगनवल्लभ, युवतीतिलक, अवनितिलक, सगन्धर्व, मुक्तहार, अनिमिष, विष्टप अग्निज्वाला, गुरुज्वाला, श्रीनिकेतपुर जयश्री निवास, रत्नकुलिश, वशिष्टाश्रम, द्रविणाजय, सभद्रक, भद्राशयपुर, फेन शिखर, गोक्षीरवर शिखर, वैर्यक्षोभ शिखर, गिरिशिखर, धरणी, वारणी, सुदर्शन पुर, दुर्ग, दुर्द्धर, माहेन्द्र, विजय, सुगन्धिनी, सुरत, नागर पुर, और रत्नपुर—ये उन पचास नगर और नगरियों के नाम रक्खे। इन नगर और नगरियों के बीचों बीच में जो गगन-वल्लभ नाम का नगर था, उसीमें धरणेन्द्र की आज्ञा से विनमि ने निवास किया। विद्याधरोंकी महत् ऋद्धि वाली वे दोनों श्रेणि-याँ अपने ऊपर वाली व्यन्तर श्रेणी के प्रतिबिम्ब—अक्स की तरह सुशोभित थीं ; यानी वे दोनों श्रेणी उनके ऊपरकी व्यन्तर श्रेणी के प्रतिबिम्ब की जैसी मालूम होती थीं। उन्होंने और भी अनेक गाँव और खेड़े बसाये और स्थान की योग्यतानुसार कितने ही जनपद भी स्थापन किये। जिस देशसे लाकर जो लोग वहाँ

बसाये, उस देशका उन्होंने वही नाम रक्खा। इन सब नगरोंमें, हृदय की तरह, सभाके अन्दर नमि और विनमि ने नाभि-नन्दन की मूर्त्ति स्थापित की। विद्याधर विद्या से दुर्मद होकर दुर्विनीत न हो जाँय, अर्थात् विद्यासे मत वाले होकर उद्दण्ड और उच्छृङ्खल न हो जायँ इसलिये धरणेन्द्र ने ऐसी मर्य्यादा स्थापन की—'जो दुर्मद वाले पुरुष—जिनेश्वर, जिन चैत्य, चरमशरीरी, और कायोत्सर्गमें रहने वाले किसी भी मुनिका पराभव या उल्लङ्घन करेंगे, उन्हें विद्याएँ उसी तरह त्याग देंगी, जिस तरह आलसी पुरुषको लक्ष्मी त्याग देती है। जो विद्याधर किसी स्त्री के पति को मार डालेगा और स्त्री के विना मरजी के उसके साथ भोग करेगा, उसको भी विद्यायें तत्काल छोड़ देंगी'। नागराजने ये मर्य्यादा ज़ोर से सुनाकर, वह यावत् चन्द्र रहें, यानी जब तक चन्द्रमा रहे तब तक रहें, इस ग़रज़ से उन्हें रत्नभित्ति की प्रशस्ति में लिख दीं। इस के बाद नमि और विनमि दोनों विद्याधरों का राजत्व प्रसाद सहित स्थापन कर एवं और कई व्यवस्थाएँ करके नागपति अन्तर्द्धान होगये।

नमि विनमि की राज्य स्थिति।

अपनी अपनी विद्याओंके नामसे विद्याधरों के सोलह निकाय या जातियाँ हुईं। उन में गौरी विद्या से गौरेय हुए। मनु विद्या से मनु हुए; गान्धार विद्यासे गान्धार हुए; मानवी से मानव हुए; कौशिकी विद्यासे कौशिकी पूर्व हुए, भूमितुण्ड विद्यासे भूमि-

तुण्ढक हुए ; मूलवीर्य्य विद्यासे मूलविर्य्यक हुये, शंकुका विद्यासे शकुक हुए; पाण्डुकी विद्यासे पाण्डुक हुए, काली विद्यासे कालिकेय हुए; श्वपाकी विद्यासे श्वपाक हुए; मातंगी से मातंग हुए वंशालया से वंशालय हुए; पांसुमूल विद्यासे पांसुमूलक हुए और वृक्षमूल विद्यासे वृक्षमूलक हुए। इन सोलह जातियों के दो विभाग करके नमि और विनमि राजाओंने आठ आठ भाग ले लिये। अपने अपने निकाय या जाति में अपनी कायाकी तरह भक्ति से विद्याधिपति देवताओं की स्थापना की। नित्य ही ऋषभ स्वामी को मूर्त्ति की पूजा करने वाले वे लोग धर्म में बाधा न पहुँचे, इस तरह कालक्षेप करते हुए देवताओं की तरह भोग भोगने लगे। किसी किसी समय वे दोनों मानो दूसरे इन्द्र और ईशानेन्द्र हों इस तरह जम्बूद्वीप की जगति के जालेके कटक में स्त्रियों को लेकर क्रीडा करते थे। किसी किसी समय मेरु पर्वत पर नन्दन आदिक वनों में, हवा की तरह, अपनी इच्छानुसार आनन्द पूर्व्वक विहार करते थे। किसी समय श्रावक की सम्पत्ति का यही फल है, ऐसा धार कर, नन्दीश्वरादि तीर्थों में शाश्वत प्रतिमा की अर्च्चना करनेके लिए जाते थे। किसी वक्त विदेहादिक क्षेत्रोंमें, श्री अर्हन्त के समवसरण के अन्दर जाकर, प्रभु के वाणी रुप अमृत का पान करते थे और हिरन जिस तरह कान ऊँचे करके संगीत ध्वनि सुना करते हैं, उसी तरह कभी कभी वे चारण मुनियों से धर्म-देशना या धर्मोपदेश सुनते थे। समकित और अक्षीण भण्डार को धारण करनेवाले वे दोनो

भाई विद्याधरों से घिर कर, त्रिवर्ग—धर्म, अर्थ और काम—का बाधा न आवे इस तरह राज्य करते थे।

कच्छ और महाकच्छ की तपश्चर्य्या।

कच्छ और महाकच्छ जो कि राज तापस हुए थे, गंगा नदी के दहने किनारे पर, हिरनों की तरह, वनचर होकर फिरते थे और मानो जंगम वृक्ष हों इस तरह छालों के कपड़ों से शरीरको ढकते थे। क्रय किये हुए अन्न की तरह, गृहस्थाश्रमी के आहार को वे कभी छूते भी न थे। चतुर्थ और छट्ठ वगैरः तपसे से उनकी धातुए सूख गई थीं, अतः शरीर एक दम दुबले होगये थे और खाली पड़ी हुई धाम्मण की उपमा को धारण करते थे। पारणे के दिन भी सड़े हुए और ज़मीन पर पड़े हुए पत्रफलादि को खाकर हृदय में भगवान् का ध्यान करते हुए वहीं रहते थे।

लोगों का प्रभुका आतिथ्य सत्कार करना।

भगवान् ऋषभ स्वामी आर्य अनार्य देशों में मौन रहकर घूमते थे। एक वर्ष तक निराहार रहकर प्रभुने प्रविचार किया कि, जिस तरह दीपक या चिराग़ तेलसेही जलता है और वृक्ष जलसेही सरसब्ज़ या हरेभरे रहते हैं; उसी तरह प्राणियों के शरीर आहार से ही क़ायम रहते हैं, वह आहार भी बयालीस दोषोंसे रहित हो तो साधुको माधुकरी वृत्ति से भिक्षा करके उचित समय पर उसे, खाना चाहिये। गये दिनों की तरह, अगर अब भी मैं

आहार न लेता हुआ अभिग्रह करके रहूँगा, तो मेरा शरीर तो ठहरा रहेगा, परन्तु जिस तरह ये चार हज़ार मुनि भोजन न मिलनेसे पीड़ित होकर भग्न होगये हैं, उसी तरह और मुनि भी भग्न होंगे। ऐसा विचार करके, प्रभु भिक्षा के लिए, सब नगरों मे मण्डन रूप, गजपुर नामक नगर में आये। उस नगर में बाहु-बलिके पुत्र सोमप्रभ राजाके श्रेयांस नामक कुमारने उस समय स्वप्न में देखा, कि मैंने चारों ओर से श्याम रंग हुए सुवर्णगिरी -मेरु पर्वत को, दूधके घड़ेसे अभिषेक कर, उज्ज्वल किया। सु-बुद्धि नामक सेठ ने ऐसा स्वप्न देखा कि सूर्यसे गिये हुए हज़ार किरण श्रेयासकुमारने फिर सूरज में लगा दिये, उनसे सूर्य अतीव प्रकाशमान् हो उठा। सोमयक्षा राजाने स्वाप्न में देखा कि, अनेक शत्रुओंसे चारों ओरसे घिरे हुए किसी राजाने अपने पुत्र श्रेयांसकी सहायतासे विजय-लक्ष्मी प्राप्त की। तीनों शक्सों ने अपने अपने स्वाप्नों की बात आपस में कही, पर उनका फल या ताबीर न जान सकने के कारण अपनेही घरको चले गये। मानो उस स्वप्नका निर्णय प्रकट करने का निश्चयही कर लिया हो, इस तरह प्रभु ने उसी दिन भिक्षा के लिए हस्तिनापुर में प्रवेश किया। एक संवत्सर तक निराहार रहने पर भी ऋषभ की लीला से चले आते हुए प्रभु हर्षके साथ लोगों की दृष्टितले आये।

श्रेयांस को जाति स्मरण।

प्रभु को देखतेही पुरवासी लोगोंने संभ्रम से दौड़कर, विदेश

से आये हुए बन्धु की तरह, उन्हें चारों ओर से घेर लिया, और कहने लगेः—हे प्रभो! आप कृपाकरके हमारे घर पर चलिये; क्योंकि वसन्त ऋतुके समान आप बहुत दिनों बाद दिखाई दिये हैं। किसीने कहा—"हे स्वामिन्! स्नान करने के लिए उत्तम जल, वस्त्र और पीठिका आदि मौजूद हैं। इसलिये आप स्नान कीजिये और प्रसन्न हूजिये" किसीने कहा—"मेरे यहाँ उत्तम चन्दन, कपूर, कस्तूरी और यक्षकर्दम तैयार हैं, उन्हें काम में लाकर मुझे कृतार्थ कीजिये।" किसीने कहा—"हे जगत् रत्न! कृपा कर हमारे रत्नमय अलङ्कारों को धारण करके शरीरको अलकृत कीजिये।" किसीने कहा—"हे स्वामिन्! मेरे घर पधार कर, अपने शरीर में आने वाले रेशमी कपड़े पहनकर उन्हें पवित्र कीजिये।" किसीने कहा—"हे देव! देवाङ्गना समान मेरी स्त्री को आप अपनी सेवामें स्वीकार कीजिये, आपके समागमसे हम धन्य हैं।" किसीने कहा— "हे राजकुमार! खेलके मिससे भी आप पैदल क्यों चलते हैं? मेरे पर्वत जैसे हाथी पर बैठिये।" किसीने कहा—"सूर्यके घोड़ोंके समान मेरे घोडों को ग्रहण कीजिये। आतिथ्य स्वीकार न करके, हमें नालायक—अयोग्य क्यों बनाते हैं?" किसीने कहा—"मेरा जातिवन्त घोड़ोंसे जुता हुआ रथ स्वीकार किजिये। आप मालिक होकर अगर पैदल चलते हैं, तब इस रथका रखना फिजूल है। इसकी क्या जरूरत है।" किसीने कहा—"हे प्रभो! इस पके हुए आमके फलको आप ग्रहण कीजिये। स्नेही जनोंका अपमान करना अनुचित है"

किसीने कहा-“आप पान सुपारी प्रसन्न होकर स्वीकार कीजिये” किसीने कहा-“प्रभो ! हमने क्या अपराध किया है, जो आप हमारी प्रार्थना पर कान भी नहीं देते और कुछ जवाव भी नहीं देते ?” इस प्रकार नगर निवासी उनसे प्रार्थना करते थे, पर वे उन सब चीज़ोंको अकल्प्य समझ, उनमें से किसी को भी स्वीकार न करते थे और चन्द्रमा जिस तरह नक्षत्र नक्षत्र पर फिरता है, उसी तरह प्रभु घर घर घूमते थे। पक्षियों के सवेरेके समय के कोलाहल की तरह नगरनिवासियों का वह कोलाहल अपने घरमे वैठे हुए श्रेयांसके कानों तक पहुंचा। उसने 'यह क्या हैं' इस वातकी खवर लानेके लिये छड़ीदार को भेजा। वह छड़ीदार सारा समाचार जानकर, वापस महलमें आया और हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहने लगा.—

श्रेयांस द्वारा भगवान का पारणा।

राजाओं के जैसे अपने मुकुटों से जमीनको छूकर चरणके पीछे लोटनेवाले इन्द्र दृढ़ भक्तिसे जिनकी सेवा करते हैं; सूर्य जिस तरह पदार्थों को प्रकाशित करता है, उसी तरह जिन्होंने इस लोकमें मात्र-अनुकम्पा—दया के वश होकर, सब को आजीविकाके उपाय रूप कर्म वतलाये हैं---जिन्होंने मनुष्यों पर दया करके उन्हे आजीविका—रोज़ी के उपायोंके लिये तरह तरह के काम वतलाये हैं। जिन्होंने दीक्षा ग्रहण की इच्छा करके, अपनी प्रसादी की तरह, भरत प्रभृति और

तुमको यह पृथ्वी दी है। जिन्हों ने समस्त सावद्य वस्तुओं का परिहार करके, अष्ट कर्म रुपी महापङ्क—गहरी कीचड़को सुखानेके लिये, गरमी के मौसमकी जलती हुई धूपके जैसे तप को स्वीकार किया है, घोर तपश्चर्या करना मंजूर किया है वे ही ऋषभ देव प्रभु निस्सङ्ग, ममता रहित और निराहार अपने पाद सञ्चार से पृथ्वी को पवित्र करते हुए विचरते हैं। वे सूरज की घामसे दुखी नही होते और छायासे सुखी नहीं होते, किन्तु पहाड़ की तरह धूप .और छायाको बराबर समझते हैं। वज्रशरीरी की तरह, उन्हें शीतसे विरक्ति और उष्णता—गरमीसे आसक्ति नहीं होती, उन्हें शरदी बुरी और गरमी अच्छी नहीं लगती, वे सरदी और गरमी को समान समझते हैं ; जहाँ जगह ःमिलती है वहाँ पड़ रहते हैं। ससार रूपी कुञ्जर में केसरी सिहकी तरह वे युगमात्र दृष्टि करते हुए, एक चींटी को भी तकलीफ न हो—इस तरह ज़मीन पर क़दम रखते हैं। प्रत्यक्ष निर्देश करने योग्य, त्रिलोकी के नाथ आपके प्रपितामह हैं। वे भाग्य योग्य से ही यहां आये हैं। जिस तरह ग्वालिये के पीछे गायें दौड़ती हैं; उसी तरह नगरके लोग प्रभुके पीछे दौड़ रहे हैं। ये उन्हींका मधूर कोलाहल है।" जिनीश्वर के नगरमें आने की खबर पाते ही, युवराज प्यादों का उल्लङ्घन कर, तत्काल दौड़ा। युवराज को विना छाते और जूतों के दौड़ते देख, उसकी सभाके लोग भी जूते ओर छाते छोड़कर, छाया की तरह, उसके पीछे दौड़े। उस समय युवराज के कुण्डल हिलते थे, उनके देखने से ऐसा मालूम होता था, गोया वह स्वामी के सामने

फिर बाल-क्रीड़ा करता हुआ सुशोभित है। अपने घरके आँगन में आये हुए प्रभु के चरण कमलों में लौटकर, वह अपने भौंरेके भ्रमको उत्पन्न करनेवाले बालों से उन्हें पोंछने लगा। इसके बाद उसने फिर उठकर जगदीश की तीन प्रदक्षिणाकी। फिर मानो हर्ष से धोताहो, इस तरह चरणोंमें नमस्कार किया। फिर खड़े होकर प्रभु के मुखकमल को इस तरह देखने लगा, जिस तरह चकोर चन्द्रमाको देखते हैं। "ऐसी सूरत मैंने कहीं देखी है" यह विचार करते हुए, उसको विवेक वृक्षका बीज रूप जाति—स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। उससे उसे मालूम हुआ कि पहले जन्म पूर्व विदेह क्षेत्र मे भगवान् वज्रनाभ नामक चक्रवर्ती थे। मैं उनका सारथी था। उस भव या जन्म में स्वामी के वज्रसेन नामक पिता थे, उनके ऐसे ही तीर्थङ्कर चिन्ह थे। वज्रनाभने वज्रसेन तीर्थङ्कर के चरणोंके समीप दीक्षा ली। उस समय मैं ने भी उन्हींके साथ दीक्षाली। उस वक्त वज्र सेन अर्हन्त के मुँहसे मैंने सुना था, कि यह वज्रनाभ भरतखण्डमें पहला तीर्थङ्कर होगा। स्वयं प्रभादिकके भवों में मैंने इनके साथ भ्रमण किया था। ये अब मेरे प्रपितामह लगते हैं। इनको आज मैं भाग्य योग से ही देख सका हूं। आज ये प्रभु साक्षात् मोक्षकी तरह समस्त जगत्का और मेरा कल्याण करने के लिये पधारे हैं,। युवराज इस प्रकार से विचार कर ही रहा था कि इतने में किसीने नवीन ईख-रससे भरे हुए घड़े प्रसन्नता पूर्वक युवराज श्रेयांस को भेंट किये। निर्दोष भिक्षा देनेकी विधि को जानने वाले कुमार ने

कहा—"हे भगवन्! इस कल्पनीय रसको ग्रहण कीजिये।" प्रभुने अंजुलिं जोड़कर, हाथ रूपी बर्तन सामने किया, उसमें ईख-रस के घड़े ओज ओज कर ख़ाली किये गये। भगवानके हस्त-पात्रमें बहुत सा रस समा गया भगवानकी अञ्जलि में जितना रस समाया, उतना हर्ष श्रेयांस के हृदय में नहीं समाया। स्वामी की अञ्जलि में आकाश में जिसकी शिखायें लग रही हैं, ऐसा रस मानो ठहर गया हो, इस तरह स्तम्भित हो गया; क्योंकि तीर्थङ्करों का प्रभाव अचिन्त्य होता है। प्रभु ने उस रससे पारणा किया। और सुर, असुर एवं मनुष्यों के नेत्रों ने उनके दर्शनरूपी अमृत से पारणा किया। उस समय मानो श्रेयांसके कल्याणकी ख्याति करने वाले चारण भाट हों, इस तरह आकाशमे प्रतिनाद से बढ़े हुए दुन्दुभी बाजे ध्वनि करने लगे। मनुष्यों के नेत्रोंके आनन्दाश्रुओं की वृष्टि के साथ आकाशसे देवताओंने रत्नों की वृष्टी की; मानों प्रभु के चरणों से पवित्र हुई पृथ्वी की पूजा के लिये हो इस तरह देवता उस स्थान पर आकाशसे पचरंगे फूलोंकी वर्षा करने लगे; सारे ही कल्प वृक्षों के फूलोंसे निकाला गया हो ऐसे गन्धोदक की वर्षा देवताओं ने की और मानो आकाश को विचित्र मेघमय करते हों, इस तरह देव और मनुष्य उज्ज्वल उज्ज्वल कपड़े फेंकने लगे। वैशाख मासकी तृतीया (तीज) को दिया हुआ वह दान अक्षय हुआ, इसलिये वह पर्व अक्षय तृतिया या आखातीज के नामसे अबतक चला जाता है। जगत्में दान धर्म श्रेयांससे चले और बाक़ी सब व्यवहार और नीति क्रम भगवन्त से चले।

"हे भगवन्! इस कल्पनीय रसको ग्रहण कीजिये।" प्रभुने अञ्जलि जोड़कर, हाथ रूपी बर्तन सामने किया, उसमें ईख-रस के घड़े ओंज ओंज कर खाली किये गये। [पृष्ठ २७२]

Harsinath Press Calcutta

राजा और नगर निवासियों का श्रेयांस से प्रश्न करना।

प्रभुके पारणेसे और उस समय की रत्न वृष्टि से विस्मित हो होकर राजा और नगर निवासी श्रेयांस के महल में आने लगे। कच्छ और महाकच्छ आदि क्षत्रिय तपस्वी प्रभुके पारणे की बातें सुनकर, अत्यन्त प्रसन्न होकर वहाँ आये। राजा और नगर निवासी तथा देशके लोग रोमाञ्चित प्रफुल्लित हो होकर श्रेयाँन्स से इस तरह कहने लगे—"हे कुमार! आप धन्य हो और पुरुषों में शिरोमणि हो; क्योंकि आपका दिया हुआ रस प्रभु ने ले लिया और हम सर्वस्व देते थे, पर प्रभु ने उसे तृणवत् समझकर अस्वीकार कर दिया। प्रभु हम पर प्रसन्न नहीं हुए। ये एक साल तक गाँव, उद्यान, नगर और जंगल में घूमते रहे, तो भी हममें से किसीका भी आतिथ्य ग्रहण नहीं किया। इसलिये हम भक्त होने के अभिमानियों को धिक्कार हैं! हमारे घरमें आराम करना एवं हमारी चीज़ लेना तो दूर की बात है। आज तक वाणी सेभी प्रभुने हमको सभावित नहीं किया; अर्थात् हम से दो दो बातें भी न की। जिन्होंने पहले लखों पूर्वतक हमारा पुत्रकी तरह पालन किया है, वे ही प्रभु मानो हम से परिचय या जान-पहचानही न हो, इस तरह व्यावहार करते हैं।"

श्रेयांसका नगर निवासियों को उत्तर देना।

लोगोंकी बातें सुनकर श्रेयांस ने कहा—"तुम लोग ऐसी बातें

क्यों कर रहे हो ? ये स्वामी अब पहले की तरह परिग्रह धारी राजा नहीं हैं। वे तो अब संसार रूपी भँवर से निकलने के लिए समग्र सावद्य व्यापार को त्यागकर यति हुए हैं। जो भोग भोगने की इच्छा रखते हैं, वेही स्नान, अंगराग, आभूषण—गहने ज़ेवर और कपड़े लेते और काममें लाते हैं। परन्तु प्रभुतो उन सब से विरक्त हैं, उनसे सख्त नफ़रत या घृणा होगई है। अतः इन्हें इन सब की क्या ज़रूरत ? जो काम देव के वशी-भूत होते हैं, वही कन्याओं को स्वीकार करते हैं। परन्तु ये प्रभु तो काम को जीतने वाले हैं। अतः सुन्दरी कामिनी इनके लिए पाषाणवत पत्थरके समान है। जो राज्य भोगकी इच्छा रखते हैं, वेही हाथी, घोड़े, रथ, वाहन आदि लेते हैं, परन्तु प्रभुने तो संयमरूपी साम्राज्य ग्रहण किया है, अतः उन्हें तो ये सब जले हुए कपड़ोंके समान हैं। जो हिंसक होते हैं, वेही सजीव फलादिक ग्रहण करते हैं ; परन्तु ये प्रभु तो समस्त प्राणियोंको अभयदान देने वाले हैं, अतः ये उन्हें क्यों लेने लगे ? ये तो केवल एषणीय, कल्पनीय और प्रासुक अन्न आदिकको ग्रहण करते हैं ; लेकिन तुम मूढ़ लोग इन सब बातोंको नहीं जानते।”

उन्होंने कहा—“हे युवराज ! ये शिल्पकला या कारीगरीके जो काम आजकल होते हैं, ये सब पहले प्रभु ने ही बताये थे—स्वामीने सिखाये-बताये थे, इसीसे सब लोग जानते हैं और आप जो बातें कहते हैं, ये तो स्वामीने बताई नहीं, इसी लिये हम कैसे जान सकते हैं ? आपने ये बात कैसे जानी ? आप इस बातके कहने लायक़ हैं, अतः कृपया बताइये।”

युवराजने कहा—"ग्रन्थ अवलोकन या शास्त्र देखनेसे जिस तरह बुद्धि पैदा होती है, उसी तरह भगवानके दर्शनोंसे जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। जिस तरह सेवक एक गाँवसे दूसरे गाँवको जाता है; उसी तरह स्वर्ग और मृत्युलोकमें बारी बारीसे आठ भवों या जन्मों तक मैं प्रभुके साथ साथ रहा हूँ। इस भवसे तीसरे भवमें यानी अबसे पहले हुए तीसरे जन्ममें, विदेह क्षेत्रमें भगवानके पिता वज्रसेन नामक तीर्थङ्कर थे। उनसे प्रभुने दीक्षा ली प्रभुके बाद मैंने भी दीक्षा ली। उस जन्मकी बातें याद आने से मैं इन सब बातोंको जान गया। गत रात्रिमें मुझे, मेरे पिता और सुबुद्धि सार्थवाह को जो स्वप्न दीखे थे उसका फल मुझे प्रत्यक्षमिल गया। मैंने स्वप्नमें श्याम मेरु पर्वतको दूधसे धोया हुआ देखा था, उसी से आज इन प्रभुको जो तपस्यासे दुबले हो गये हैं, मैंने ईखरससे पारणा कराया और उससे ये शोभने लगे। मेरे पिताने उन्हें दुश्मनोंसे लड़ते हुए देखा था, मेरे पारणेकी सहायतासे उन्होंने परीषह रूपी शत्रुओंका पराभव किया है। सुबुद्धि सार्थवाह या सेठने स्वप्नमें देखा था, कि सूर्यमण्डलसे हज़ारों किरणें गिरीं और मैंने वे फिर लगादीं, इससे दिवाकर खूब सुन्दर मालूम होने लगा। उसका यह अर्थ है, कि सूर्य समान भगवान्‌का सहस्र किरणरूपी केवल ज्ञान भ्रष्ट हो गयाथा उसे मैंने आज पारणे से जोड़ दिया। और उससे भगवान् शोभने लगे; अर्थात् प्रभुको आहारका अंतराय था, आहार बिना शरीर ठहर नहीं

सकता। शरीर विना केवल ज्ञान हो नहीं सकता, अब मैंने प्रभुका पारणा करा दिया—ईखरस पिला दिया, इससे प्रभुके शरीरमें वलआया औरवह कान्तिमान हो गया। अवप्रभुको केवल ज्ञान हो सकेगा, यह सब मेरे द्वारा हुआ इसीसे स्वप्नमें मेरे द्वारा सूर्यकी गिरी हुई सहस्र किरणें फिर सूर्यमें जोड़ी हुई और सूर्य तेजवान देखा गया। खुलासा यह है, स्वप्नमें जो सूर्य सेठको दीखा, वह यह भगवान् हैं। उसकी सहस्र किरणें गिरी हुई देखी गईं ; वह आपका केवल ज्ञानसे भ्रष्ट होना है। मैंने किरणें फिर सूर्यमें जडदी, वह मेरा प्रभुको पारणा करा देना है। सूर्यका तेज जिस तरह स्वप्नमें मेरे किरण जड़ देने पर वढ़ गया उसी तरह पारणा कराने से भगवानका तेज वल वढ़ गया और उनमे केवल ज्ञानका सम्भव है।” युवराजसे ये वाते सुनकर वे सब “वहुत ठीक हैं, वहुत ठीक हैं” कहते हुए खुशीके साथ अपने अपने घर गये।

श्रेयांसके घर पारणा कर जगत्पति वहांसे दूसरी जगहको विहार कर गये, यानी चले गये। क्योंकि छद्मस्थ तीर्थङ्कर एक जगह नहीं ठहरते। भगवान्के पारणेके स्थानको कोई उलाँघे नहीं, इसलिये श्रेयाँसने वहाँ रत्नमय पीठ वनवा दी। मानों साक्षात् भगवान्के चरण-कमल ही हों, इस तरह गाढ़ भक्तिसे विनम्र हो, वह उस रत्नमय पीठकी त्रिकाल, अर्थात् तीनों समय पूजा करने लगा। “यह क्या हैं?” जव लोग इस तरह पूछते थे, तव श्रेयांस यह कहते थे—‘यह आदिकर्त्ताका मण्डल है।’ इसके

बाद प्रभुने जहाँ जहाँ भिक्षा ग्रहण की, वहाँ वहाँ लोगोंने इसी तरह पीठें बनवा दीं। इससे अनुक्रमसे "आदित्य पीठ" इस तरह प्रवृत्त हुआ।

भगवान् का तक्ष शिला गमन।

एक समय, जिस तरह हाथी कुञ्जमें प्रवेश करता है, उस तरह प्रभु सन्ध्या समय, बाहु वलि देशमें, बाहुबलिकी तक्षशिला पुरीके निकट आये और नगरीके बाहर एक बग़ीचेमें कायोत्सर्ग में रहे। बाग़के मालीने यह समाचार बाहुबलिको जा सुनाया। खबर पातेही बाहुबलिने फ़ौरन ही नगर।—रक्षक बुलाये और उन्हें हुक्म दिया कि नगरके मकानात और दूकानोंको ख़ूब अच्छी तरह सजा कर नगरको अलंकृत करो। यह हुक्म निकलते ही नगरके प्रत्येक स्थानमें लटकने वाले बडे बड़े झूमरोंसे राहगीरोंके मुकुटोंको चूमने वाली केलेके खंभोंकी तोरण मालिकायें शोभा देने लगीं। मानों भगवान्के दर्शनोंके लिए देवताओंके विमान आये हों, इस तरह हरेक मार्ग रत्नपात्रसे प्रकाशमान मंचोंसे शोभायमान दीखने लगा। वायुसे हिलती हुई उद्दाम पताकाओं की पंक्तियोंसे वह नगरी हजार भुजाओं वाली होकर नाचती हो ऐसी शोभने लगी। नवीन केशरके जलके छिड़कावसे सारे नगरकी ज़मीन ऐसी दीखने लगी, मानों मगल अगराग किया हो। भगवान्के दर्शनोंकी उत्कण्ठा रूपी चन्द्रमाके दर्शनसे वह नगर कुमुदके खण्डके समान प्रफुल्लित हो उठा, यानी सारा शहर

निद्रा रहित हो गया। सारी रात आँखसे आँख न लगी। नगर निवासी रात भर जागते रहे। मैं सवेरे ही स्वामीके दर्शनोंसे अपनी आत्मा और लोगोंको पवित्र करूँगा,—ऐसे विचार वाले बाहुवलिको वह रात महीनाके वरावर हो गई। इधर रातके प्रभातमे परिणत होते ही, प्रतिमास्थिति समाप्त होते ही, प्रभु वायु की तरह दूसरी जगहको विहार कर गये अर्थात अन्यत्र चले गये।

बाहुबलि का प्रभुके पास वन्दना करने को जाना

सवेरा होते ही वाहुवलिने उस बाग़की ओर जानेकी तैयारी की, जिसमें रातको भगवान्के ठहरनेकी वात सुनी थी। जिस समय वह चलनेको उद्यत हुआ उस समय अनेक सूर्योंके समान वड़े वड़े मुकटधारी मण्डलेश्वरोंने उसे चारों ओरसे घेर लिया। उसके साथ अनेकों क्रियाकुशल, शुक्राचार्य्य प्रभृति की वरावरी करने वाले मूर्त्तिमान अर्थ शास्त्रसदृश मन्त्री थे। गुप्त पखों वाले, गरुड़के समान जगत्को उल्लघन करनेमें वेगवान्, लाखों घोड़ोंसे घिरा हुआ वह वहुतही शोभायमान दीखता था। झरते हुए मदजल की वृष्टिसे मानो झरने वाले पर्वत हों, ऐसे पृथ्वीकी रजको शान्त करने वाले हाथियोंसे वह शुशोभित था। पाताल कन्याओं के जैसी, सूर्यको न देखने वाली वसन्त श्री प्रभृति अन्तः पुरकी रमणियाँ उसके आस पास तैयार खड़ीं थीं। उसके दोनों ओर चमर धारिणी गणिकायें खड़ी थीं। उनसे वह राजहंस सहित

गंगा-जमुनासे सेवित प्रयागराज जैसा दीखता था। उसके सिर पर मनोहर सफेद छत्र फिर रहा था। इसलिये पूर्णमासीके आधी-रात के चन्द्रमासे जिस तरह पर्वत सोहता है, उसीतरह वह सोह रहा था। देवनन्दी—इन्द्रका प्रतिहार जिस तरह इन्द्रको राह दिखाता है; उसी तरह सोनेकी छड़ी वाला प्रतिहार उसके आगे आगे राह दिखाता चलता था। लक्ष्मी-पुत्रोंकी तरह, रत्न जड़ित गहने और ज़ेवरोंसे सजकर शहरके शाहूकार घोड़ों पर चढ़ चढ़कर उसके पीछे पीछे चलानेको तयार खड़े थे। जवान सिंह जिस तरह पर्वतकी शिला पर चढ़कर बैठता है, उसी तरह इन्द्रके सदृश बाहुबलि राजा भद्र जातिके सर्व्वोत्तम गजराज पर सवार हो गया। जिस तरह चूलिकासे मेरुपर्वत शोभता है, उसी तरह मस्तक पर तरंगित कान्ति वाले मुकुटसे वह सुशोभित था। उसके दोनों कानों में जो दो मोतियोंके कुण्डल पडे हुए थे, उनके देखनेसे ऐसा मालूम होता था, मानो उसके मुखकी शोभासे परा जित हुए जम्बू द्वीपके दोनों चन्द्रमा उसकी सेवा करनेके लिये आये हों। लक्ष्मीके मन्दिर स्वरुप हृदय पर उसने बडे बड़े फार मोतियोंका हार पहना था, वह हार उस मन्दिरका क़िला सा जान पडता था। भुजाओं पर उसने सोनेके दो भुजबन्धर पहने थे, उनके देखने से ऐसा जान पडता था, गोया भुजा रूपी वृक्ष नयी लताओंसे घेरकर दृढ़ किये गये हैं। हाथोंके पहुचों या कलाइयों पर उसने मोतियोंके दो कडे पहने थे, वे लावण्य रुपी नदीके तीर पर रहने वाले फेनके जैसे मालूम होते थे।

अपनी कान्तिसे आकाशको पल्लवित करने वाली दो अगूठियाँ उसने पहनी थीं। वे सर्पके फण जैसी शोभा वाले हाथोंकी मणियोंकी तरह सुन्दर मालूम होती थीं। शरीर पर उसने सफ़ेद रंगके महीन कपड़े पहने थे, जो शरीर पर लगाये चन्दनसे अलग न मालूम होते थे। पूर्णिमाका चन्द्रमा जिस तरह चन्द्रिका को धारण करता है; उसी तरह उसने गंगाके तरङ्ग समूहकी स्पर्द्धा करने वाला सुन्दर वस्त्र चारों ओर धारण किया था, विचित्र धातुमय पृथ्वीसे जैसे पर्वत शोभता है; उसी तरह विचित्र वर्णके सुन्दर अन्दरके कपड़ोंसे वह शोभता था। मानों लक्ष्मीको आकर्षण करने वाली क्रीड़ा करनेका तीक्ष्ण शस्त्र हो, इस तरह वह महाबाहु वज्रको अपने हाथमें फेरता था और वन्दि जन जयजय शब्दसे दिशाओंके मुखोंको पूर्ण करते थे। इस प्रकार बाहुबलि राजा उत्सव पूर्व्वक—बड़े ठाट बाट और आन शानसे स्वामीके चरण कमलोंसे पवित्र हुए बाग़के पास आया। इसके बाद आकाशसे जैसे पक्षिराज उतरते हैं; उसी तरह हाथीसे उतर, छत्र प्रभृति त्याग, बाहुबलि बाग़में दाख़िल हुआ। वहाँ उसने चन्द्रविहीन आकाश और सुधारहित अमृत कुण्डकी तरह बागीचा देखा; अर्थात उसने बाग़में प्रभुको न देखा। उसे उनके दर्शनोंकी बड़ी उत्कण्ठा थी। उसने मालियोंसे पूछा—"मेरे नेत्रोंका आनन्द बढ़ाने वाले जिनेश्वर कहाँ हैं!" मालियोंने उत्तर दिया—"रात्रिकी तरह प्रभु भी कुछ आगे चले गये। जब हमें यह बात मालूम हुई कि स्वामी पधार गये। तभी

हम लोग आपकी सेवामें खबर देनेको आना चाहते ही थे, कि इतने में आपही यहाँ पधार गये" मालियोंकी वात सुनते ही तक्षशिलाधीश वाहुवलि हाथोंसे डाढ़ी पकड़, आँखोंमें आँसू डवडवा, दु.खित होकर चिन्तामग्न हो गया। वह मन-ही-मन विचार करने लगा—"अरे! मैंने विचार किया था, कि आज मैं परिजन सहित स्वामीकी पूजा करूँगा—मेरा यह विचार मरुस्थली में बोये हुये वीजकी तरह वृथा हुआ। लोगोंके अनुग्रह की इच्छा से मैंनेवहुत देर करदी। अत. मुझे धिक्कार है! "ऐसे स्वार्थके कारण मेरीमूर्खता ही प्रगट हुई। प्रभुके चरण कमलोंके दर्शनों में विघ्न वाधा उपस्थित करनेवाली इस वैरिन रातको और अधम वुद्धिको धिक्कार है!! इस समय स्वामी मुझे नहीं दीखते, अतः यह प्रभात-प्रभात नहीं, यह यह सूर्य—सूर्य नहीं और ये नेत्र—नेत्र नहीं हैं। हाय! त्रिभुवन पति रातको इस जगह प्रतिमा रूप से रहे और वेहया—वे शर्म—निर्लज्जा वाहुवलि अपने महलमें आनन्द पूर्व्वक सोता रहा।" वाहु वलिको इस तरह चिन्ता सागरमें गोते लगाते देख, उसका प्रधान मन्त्री शोक रूपी शल्य को विशल्य रूप करने वाली वाणी से यों वोला—"हे देव! आपने यहाँ आकर स्वामीके दर्शन नहीं पाये इस लिये शोक क्यों करते हो? रञ्जीदा क्यों होते हो? क्योंकि प्रभु तो निरन्तर आपके हृदयमें वसते हैं। यहाँ जो उनके वज्र अङ्कुश, चक्र कमल, ध्वजा और मत्स्यसे लाञ्छित चरण-चिह्न देखते हैं, इनसे आप यही समझिये कि हम साक्षात् प्रभुको ही देख रहे हैं। मन्त्री की वातें सुनकर, अन्तःपुर और परिवार सहित

सुनन्दानन्दन बाहुबलि ने प्रभु के चरण-चिन्हों की वन्दना की। इन चरण-चिन्हों को कोई उलांघ न सके, इस लिये उसने उनके ऊपर रत्नमय धर्म चक्र स्थापन करा दिया। चौसठ माईल के विस्तार-वाला, बत्तीस मील ऊँचा और हजार आरे वाला वह धर्मचक्र मानो बिल्कुल सूर्य-बिम्ब ही हो—इस तरह सुशोभित होने लगा। त्रिलोकी नाथ के ज़बर्दस्त प्रभावसे, देवताओं से भी न हो सकने योग्य चक्र, बाहुबलिने तत्काल तैयार पाया। इसके बाद उसने सब जगहों से लाये हुए फूलों से उसकी पूजा की। इससे वह फुलों का ही पहाड़ हो-ऐसा दीखने लगा। नन्दीश्वर द्वीपमें जिस तरह इन्द्र अट्ठाई महोत्सव करता है; उसी तरह उत्तम सङ्गीत और नाटक आदि से अट्ठाई महोत्सव किया। शेषमें पूजा करने वाले और रक्षा करनेवाले आदमी वहाँ छोड़ और सदा रहने का हुक्म दे तथा चक्र को नमस्कार कर बाहुबलि राजा अपनी नगरी को गया।

भगवान् को केवल ज्ञान।

इस प्रकार हवा की तरह आज़ादी से रहने वाले, अस्खलित रीतिसे विहार करने वाले, विविध प्रकार के तपों में निष्ठा, रखने वाले जुदे जुदे प्रकारके अभिग्रह करने में उद्युक्त, मौनव्रत धारण करने के कारण यवनाडंब प्रभृति म्लेच्छ देशोंमें रहने वाले, अनार्य प्राणियों को भी दर्शन मात्र से भद्र या आर्य करनेवाले और उत्सर्ग तथा परिषह आदिको सहन करने

वाले प्रभुने [एक हजार वर्ष एक दिनके समान विता दिये। कुछ दिन वाद वे महानगरी अयोध्याके शाखा नगर पुरि मतालमें आये। उसकी उत्तर दिशामें, दूसरे नन्दनवनके जैसा शकट मुख नामक वागीचा था। प्रभुने उसमें प्रवेश किया, अष्टम तप कर, एक वटवृक्षके नीचे प्रतिमारूप से स्थित प्रभु, अप्रमत्त नामक अष्टम गुण स्थानको प्राप्त हुए इसके वाद अपूर्ण करण, यानी शुक्ल-ध्यान के पहले पाये पर आरूढ़ हो, सविचार पृथकत्व वितर्क युक्त शुक्लध्यानके पाये को प्राप्त हुए। इसके वाद अनिवृत्ति गुण स्थान एव सूक्ष्म सपराय—सातवें गुण-स्थान को प्राप्त हो, क्षण भरमें ही क्षीण कषायत्व को प्राप्त हुए। उसी ध्यानसे क्षणमात्र में चूर्ण किये हुए लोभका नाश कर, कतक या निर्मली चूर्ण से जलके समान उपशान्त कषाय हुए। इसके पीछे ऐक्य श्रुत अवि-चार नामके शुक्लध्यान के दूसरे पायेको प्राप्त हो, अन्तिम क्षणमें, पलभर में ही क्षीणमोहक वारहवें गुणस्थान को प्राप्त हुए। फिर पाँच ज्ञानावर्णी चार दर्शनावर्णी और पाँच तरहके अन्तराय कर्मोंका नाश करने से समस्त घाति कर्मोंका नाश किया। इस तरह व्रत लेनेके पीछे, एक हजार वर्ष वीतने पर, फागुनके महीने के कृष्ण पक्षकी एकादशी के दिन, चन्द्रमा उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में आया था, उस समय, प्रातःकाल में, मानों हाथमें ही रखे हों—इस तरह तीन लोकों को दिखाने वाला त्रिकाल सम्बन्धी केवल ज्ञान हुआ। उस समय दिशायें प्रसन्न हुई। सुखदायी हवा चलने लगी और नारकीय जीवों को भी क्षण भरके लिये सुख मिला।

भगवान् के पास इन्द्र का आगमन।

अब मानों स्वामीके केवल ज्ञान उत्सवके लिये प्रेरणा करते हों इस प्रकार समस्त इन्द्रोंके आसन. काँपने लगे। मानों अपने अपने लोक के देवताओं को बुलाकर इकट्ठा करनी चाहती हों, इस तरह देवलोक मे सुन्दर शब्दावाली ध्वनियाँ बजने लगीं। ज्योंही सौधर्मपति ने स्वामी के चरण कमलोंमे जाने का विचार किया, कि त्योंही अहिरावण देवगज रूप होकर उनके पास आ खड़ा हुआ। स्वामीके दर्शन की इच्छा से मानों चलता हुआ मेरु पर्वत हो, इस तरह उस गजवरने अपना शरीर चार लाख कोस या आठ लाख मील के विस्तार का बना लिया। शरीरकी वर्फके समान सफेद कान्ति से वह हाथी ऐसा दिखता था, गोया चारों दिशाओं के चन्दन का लोप करता हो। अपने गण्डस्थलों से झरने वाले अत्यन्त सुगन्धित मदजल से वह स्वर्गकी अङ्गण भूमिको कस्तूरी की तहोंसे अङ्कित करता था मानों दोनों तरफ पङ्खे हों, ऐसे अपने चपल चञ्चल कर्णताल से, कपोलों से झरने वाले मद की गन्ध से अन्धे हुए भौरोंको दूर हटाता था। अपने कुम्भस्थल के तेजसे उसने बाल सूर्यके मण्डल का पराभव किया और अनुक्रम से पुष्ट और गोलाकार सूँडसे वह नागराज का अनुसरण करता था। उसके नेत्र और दाँत मधु की सी कान्तिवाले थे। ताम्बेके पत्तर जैसा उसका तालू था। थम्भेके समान गोल और सुन्दर उसकी गर्दन थी और शरीरके भाग विशाल थे। प्रत्यञ्चा चढ़ाये हुए धनुष के जैसा उसकी पीठका भाग था।

उसका पेट या उदर कृश था और चन्द्र मण्डल के जैसे नख मण्डल से मण्डित था। उसका निःश्वास दीर्घ और सुगन्धि पूर्ण था। उसकी सूँडका अगला भाग लम्बा और चञ्चल था। उसके होंठ, गुह्य इन्द्रिय और पूँछ—ये तीनों बहुत लम्बे लम्बे थे। जिस तरह दोनों ओर रहने वाले सूरज और चन्द्रमा से मेरु पर्वत अङ्कित होता है; उसी तरह दोनों ओर के घण्टों से वह अङ्कित था। कल्प-वृक्षके फूलों से गुँथी हुई उसके दोनों ओर की डोरियाँ थीं। मानों आठ दिशाओं की लक्ष्मीकी विभ्रम भूमि हो, इस तरह सोने के पट्टों से अलङ्कृत किये हुए आठ ललाटों और आठ मुखों से वह सुशोभित था। बड़े भारी पर्वत के शिखरों की तरह, मजबूत, किसी कदर टेढ़े और ऊँचे प्रत्येक मुखमें आठ आठ दाँत थे। प्रत्येक दाँत पर सुस्वादु और निर्मल जलकी एक एक पुष्करिणी थी। जो वर्षधर पर्वतके ऊपर के सरोवर की तरह शोभायमान थीं। प्रत्येक पुष्करिणी में आठ आठ कमल थे। उनके देखने से ऐसा जान पड़ता था, गोया जलदेवी ने जलके बाहर अपने मुख निकाल रखे हों। प्रत्येक कमलमें आठ आठ विशाल पत्ते थे। वे क्रीड़ा करती हुई देवाङ्गनाओं के विश्राम लेने के द्वीपोंकी तरह सुशोभित थे। प्रत्येक पत्ते पर चार चार प्रकार के अभिनय हाव भावसे युक्त जुदे जुदे आठ आठ नाटक शोभते थे। और हरेक नाटक में मानों स्वादिष्ट रसके कल्लोल की सम्पत्ति वाले सोते हों ऐसे बत्तीस बत्तीस पात्र नाटक करने वाले थे। ऐसे उत्तम गजेन्द्र पर अगाड़ी के आसन में परिवार समेत इन्द्र सवार हुआ।

हाथी के कुम्भस्थलों से उसकी नाक ढक गई। परिवार सहित इन्द्र ज्योंही गजपति पर बैठा, त्यों ही सारा सौधर्म लोक हो, इस तरह वह हाथी वहाँसे चला। पालक विमान की तरह अनुक्रम से अपने शरीर को छोटा करता हुआ वह हाथी क्षणभर में प्रभु द्वारा पवित्र किये हुए बाग़में आ पहुँचा। दूसरे अच्युत प्रभृति इन्द्र भी 'मैं पहले पहुँचू, 'मैं पहले पहुँचूं' इस तरह जल्दी जल्दी देवताओं को साथ लेकर वहाँ आन पहुँचे।

समवसरण की रचना।

उस समय वायुकुमार देवताने मान को त्याग कर, समवरुणके लिये, आठ मील पृथ्वी साफ की। मेघ कुमार के देवताओं ने सुगन्धित जलसे ज़मीन पर छिड़काव किया। इससे मानो पृथ्वी, यह समझकर कि प्रभु स्वय पधारेंगे, सुगन्धि पूर्ण आँसुओं से धूप और अर्ध को उड़ाती हुई सी मालूम होती थी। व्यन्तर देवताओंने भक्ति पूर्वक अपनी आत्माके समान ऊँची ऊँची किरण वाले सोने, मानिक, और रत्नों के पत्थर ज़मीन पर विछा दिये। मानों पृथ्वी से ही निकाले हों ऐसे पचरंगे सुगन्धित फूल वहाँ विखेर दिये। चारों दिशाओंमें मानों उनकी आभूषणाभूत कण्ठियाँ हों इस तरह रत्न, माणक और सोने के तोरण बाँधे। वहाँ पर लगाई हुई रत्नमय पुतलियों की देहके प्रतिबिम्ब एक दूसरे पर पड़ते थे। उनके देखने से ऐसा मालूम होता था, गोया सखियाँ परस्पर आलिङ्गन कर रही हों। चिकनी चिकनी इन्द्रनीलमणि

से वनाये हुए मगर के चित्र नाशको प्राप्त हुए कामदेव द्वारा छोड़े हुए अपने चिन्ह रूप मगर के भ्रमको करते थे। भगवान् के केवल ज्ञान कल्याण से उत्पन्न हुई दिशाओं की हँसी हो, इस तरह सफेद सफेद छत्र वहाँ शोभायमान थे। मानों अत्यन्त हर्ष से पृथ्वीने स्वयं नाच करने के लिये अपनी भुजायें ऊँची की हों, इस तरह ध्वजा पताकायें फड़कती थी। तोरणोंके नीचे जो स्वस्तिकादिक अष्ट मङ्गलिकके श्रेष्ठ चिन्ह किये गये थे, वे वलिपद जैसे मालूम होते थे। समवसरण के ऊपरी भागका गढ़ विमान पतियों या वैमानिक देवताओं ने रत्नों का वनाया था। इससे रत्नगिरी की रत्नमय मेखला वहां लाई गई हो, ऐसा ज्ञान पड़ता था। उस गढ़ पर नाना प्रकार की मणियों के कंगूरे वनाये थे। वे अपनी किरणों से आकाश को विचित्र रङ्गोंके कपड़ों वाला वनाते थे। वीचमें ज्योतिस्पति देवताओंने, मानों पिण्डरूप अपने अङ्गकी ज्योति हो, इस तरह का सोनेका दूसरा गढ़ रचा था। उन्होंने उस गढ़पर रत्नमय कंगूरे लगाये थे, वे सुर असुर पतियों के मुँह देखने के दर्पण या आईने से मालूम होते थे। भुवन पतियों ने वाहर की ओर एक चाँदीका तीसरा गढ़ वनाया था, उसके देखने से ऐसा मालूम होता था, गोया वैताढ्य पर्वत भक्तिसे मण्डल रूप हो गया है। उस गढ़ पर जो सोनेके कंगूरे वनाये थे, वे देवताओं की वापड़ियों के गले में सोने के कमलसे मालूम होते थे। वह तीनों गढ़वाली पृथ्वी भुवनपति, ज्योतिस्पति और विमानपति की लक्ष्मी के एक एकगोलाकार कुण्डल से शोभे इस तरह शोभती थी। पताका

ओंके समूह वाले मणिमय तोरण, अपनी किरणों से मानों दूसरी पताकायें बनाते हों, इस तरह दीखते थे। उनमें से प्रत्येक गढ़में चार चार दरवाज़े थे। वे चार प्रकारके धर्म की क्रीड़ा करने को खड़े हों, ऐसे मालूम होते थे। प्रत्येक दरवाज़े पर व्यन्तरों के रखे हुए धूपपात्र या धूपदानियाँ इन्द्रनीलमणि के खम्भों के जैसी धूम्रलता या धूएँ की वेलसी छोड़ती थीं। अर्थात् धूपदानियोंमें रखी हुई धूपसे जो धूआँ उठता था, वह नीलम का खम्भा सा मालूम होता था। उस समवसरणके प्रत्येक द्वारमें, गढ़की तरह, चार चार दरवाज़ोंवाली, सोनेके कमलों सहित वावड़ियाँ वनायी थीं। दूसरे गढ़में, प्रभुके आराम करने के लिए एक देव छन्द वनाया था। भीतरके पहले कोटके द्वार पर, दोनों ओर, सोनेके से वर्ण वाले, दो वैमानिक देवद्वार पालकी ड्यूटी वजाने को खड़े थे। दक्खन द्वारमें, दोनों तरफ, मानो एक दूसरे के प्रतिविम्ब या अक्स हों, इस तरह उज्ज्वल व्यन्तर देवद्वारपाल हुए थे। पच्छमी द्वारपर, संध्या-समय जिस तरह सूर्य और चन्द्रमा आमने-सामने हो जाते हैं, इस तरह लाल रङ्ग वाले ज्योतिस्क देव द्वारपाल वनकर खड़े थे। उत्तर द्वार पर मानो उन्नत मेघ हों, इस तरह काले रङ्गके भुवनपतिदेव दोनों ओर द्वारपाल वने खड़े थे। दूसरे गढ़के चारो द्वारों के दोनों-तरफ अनुक्रमसे अभय, पास, अंकुश ओर मुद्गर धारण करने वाली—श्वेतमणि, शोण मणि, स्वर्णमणि और नीलमणि की जैसी कान्ति वाली, पहले की तरह, चार निकायकी जया, विजया, अजिता और अपराजिता

नामकी दो दो देवियाँ प्रतिहारी के रूपमें खड़ी थीं। अन्तिम बाहर के कोटके चारों दरवाज़ोंपर तुम्बस खाटकी पाटी, मनुष्य मुण्डमाली, और जटाजूट मण्डित—इन नामोंके चार देवता द्वारपाल होकर खड़े थे। समवसरण के बीच में व्यन्तरोंने छै मील ऊँचा एक चैत्य वृक्ष बनाया था। वह रत्नत्रयके उदय का उपदेश देता सा मालूम होता था। उस वृक्षके नीचे अनेक प्रकार के रत्नोंसे एक पीठ बनाई गई थी। उस पीठ पर अप्रतिम मणिमय एक छन्दक बनाया गया था। छन्दकके बीचमें, पूरब दिशाकी ओर, मानों सारी लक्ष्मीका सार हो ऐसा, पादपीठ समेत रत्न-जटित सिंहासन बनाया था और उस के ऊपर तीन लोक के आधिपत्य के चिह्न-स्वरुप तीन छत्र बनाये थे। सिंहासन के दोनों ओर दो यक्ष हाथों में दो उज्ज्वल-उज्ज्वल चँवर लिये खड़े थे, जिनसे ऐसा जान पड़ता था, मानों भक्ति उनके हृदयों में न समाकर बाहर निकली पड़ती है। समवसरण के चारों दरवाज़ों पर अद्भुत कान्ति-समूह वाले धर्म-चक्र सोनेके कमलोंमें रखे थे। और भी जो करने योग्य काम थे, वे सब व्यन्तरों ने किये थे, क्योंकि साधारण समवसरण में वे अधिकारी हैं।

अब प्रातः कालके समय, चारों तरह के, करोडों देवताओं से घिरकर, प्रभु समवसरण में प्रवेश करने को चले। उस समय देवता हजार हज़ार पत्तेवाले सोनेके नौ कमल रचकर अनुक्रमसे प्रभुके आगे रखने लगे। उनमें से दो दो कमलों पर प्रभु पादन्यास करने लगे और देवता उन कमलों को आगे आगे रखने लगे।

जगत्पति ने समवसरण के पूर्वी दरवाज़े से घुस कर चैत्य वृक्ष की प्रदक्षिणा की और इसके बाद तीर्थ को नमस्कार कर, सूर्य जिस तरह पूर्वाचलपर चढता है, उसी तरह जगत्‌का मोहान्धकार नाश करने के लिये, प्रभु पूरब मुखवाले सिंहासन पर चढ़े। तब व्यन्तरोंने दूसरी तीन दिशाओं में, तीन सिंहासनों पर, प्रभुके तीन प्रतिविम्ब बनाये। देवता प्रभुके अँगूठे जैसा रुप बनानेकी भी सामर्थ्य नही रखते, तथापि जो प्रतिविम्ब बनाये, वे प्रभुके भावसे वैसे ही होगये। प्रभुके हरेक मस्तक के फिरने से शरीर की कान्तिके जो मण्डल—भामण्डल प्रकट हुए, उनके सामने सूर्यमण्डल खद्योत—पटवीजना या जुगनू सा मालूम होने लगा। प्रतिशब्दों से चारों दिशाओंको शब्दायमान करती हुई—मेघवत् गम्भीर स्वर वाली दुन्दुभि आकाशमें बजने लगी। प्रभुके पास एक रत्नमय ध्वजा थी, वह मानो अपना एक हाथ ऊँचा करके यह कहती हुई शोभा दे रही थी, कि धर्ममें यह एक ही प्रभु है।

इन्द्र द्वारा भगवान की स्तुति।

अब विमान पतियों की स्त्रियाँ पूरबी द्वार से घुसकर, तीन परिक्रमा दे, तीर्थङ्कर और तीर्थ को नमस्कार कर, पहले गढ़में, साधु साध्वीयों का स्थान छोड़, उनके स्थानके बीच अग्निकोण में खड़ी हो गईं। भुवनपति, ज्योतिष्पति और व्यन्तरों की स्त्रियाँ दक्खन द्वारसे घुस, पहले वालियों की तरह नमस्कार प्रभृति कर नैऋत कोणमें खड़ी हो गईं। भुवन-पति, ज्योतिष्पति और

व्यन्तर देवता पच्छिम दिशाके दरवाजेसे घुस, नमस्कार कर, परिक्रमा दे, वायव्य कोण में बैठ गये। वैमानिक देवता, मनुष्य और मनुष्यों की स्त्रियाँ उत्तर दिशाके द्वारसे घुस पहले आने वालों की तरह नमस्कारादि कर ईशान दिशामें बैठगये। वहाँ पहले आये हुए अल्प ऋद्धिवाले, जो बड़ी ऋद्धि वाले आते उनको नमस्कार करते थे। और आने वाले पहले आये हुओं को नमस्कार करके आगे बढ़ जाते थे प्रभु के समवसरणमें किसी को रोक-टोक नहीं थी; किसी तरह की विकथा नहीं थी। वैरियों मे भी आपसका वैर नहीं था और किसी को किसी का भय न था दूसरे गढमें आकर तिर्यञ्च बैठे और तीसरे गढ़में सब आने वालों के वाहन या सवारियाँ थीं। तीसरे गढ़ के बाहरी हिस्सेमें कितनेही तिर्यञ्च, मनुष्य और देवता आते जाते दिखाई देते थे। इस प्रकार समवसरणकी रचना हो जाने पर, सौधर्म कल्पका इन्द्र हाथ जोड़ नमस्कारकर इस तरह स्तुति करने लगा—"हे स्वामी! कहाँ मैं बुद्धिका दरिद्र और कहाँ आप गुणोंके गिरिराज? तथापि भक्ति से अत्यन्त वाचाल हुआ मैं आपकी स्तुति करता हूं। हे जगत्पति जिस तरह रत्नोंसे रत्नाकर—सागर शोभा पाता है, उसी तरह आप एकही अनन्त ज्ञान दर्शन और वीर्य—आनन्दसे शोभा पाते हैं, हे देव! इस भरतक्षेत्रमें बहुत समयसे नष्ट हुए धर्म-वृक्षको फिर पैदा करनेमें आप बीजके समान हैं। हे प्रभो! आपके महात्म्यकी कुछ भी अवधि नहीं, क्योंकि अपने स्थानमें रहने वाले अनुत्तर विमानके देवताओंके सन्देहको आप यहींसे जानते

हैं और उस सन्देहको दूर भी करते हैं। बड़ी ऋद्धि वाले और कान्तिसे प्रकाशमान देवता जो स्वर्गमें रहते हैं, वह आपकी भक्तिके लेशमात्रका फल है। जिस तरह मूर्खोंको ग्रन्थका अभ्यास क्लेशके लिये होता है; उसी तरह आपकी भक्ति बिना घोर तप भी मनुष्योंको कोरी मिहनतके लिये होता है, अर्थात् आपकी भक्ति बिना घोर तपश्चर्या वृथा कष्ट देने वाली है। आपकी भक्ति ही सर्व्वोपरि है। हे प्रभो! जो आपकी स्तुति करते हैं, जो आपमें श्रद्धा-भक्ति रखते हैं और जो आपसे द्वेष रखते हैं, उन दोनोंको ही आप समदृष्टि या एक नज़रसे देखते हैं, परन्तु उनको शुभ और अशुभ—बुरा और भला फल अलग-अलग मिलता है, इसलिये हमें आश्चर्य होता है। हे नाथ! मुझे स्वर्गकी लक्ष्मीसे भी सन्तोष नहीं है—मेरी तृष्णाकी सीमा नहीं है; अतः मैं विनीत भावसे प्रार्थना करता हूँ, कि आपमें मेरी अक्षय और अपार भक्ति हो।" इस प्रकार स्तुति और नमस्कार कर, इन्द्र स्त्री, मनुष्य, नरदेव और देवताओंके अगले भागमें अञ्जलि जोड़ कर बैठ गया।

मरुदेवा माता का विलाप।

भरत का समाधान।

इधर तो यह हो रहा था, उधर अयोध्या नगरीमें विनयी भरत चक्रवर्त्ती, प्रातः समय, मरुदेवा माताको प्रणाम करनेको गया। अपने पुत्रकी जुदाईके कारण, अविश्रान्त-आँसुओंकी धारा गिरने

से जिसके नेत्र-कमल जाते रहे हैं, ऐसी पितामही—दादीको "यह आपका बड़ा पोता चरणकमलोंमें प्रणाम करता है।" यह कह कर भरतने प्रणाम किया। स्वामिनी मरुदेवाने पहले तो भरतको आशीर्वाद दिया और पीछे हृदयमें शोक न समाया हो, इस तरह वाणीका उद्‌गार बाहर निकाला।—"हे पौत्र भरत! मेरा बेटा ऋषभ मुझे, तुझे, पृथ्वीको पूजाकी और लक्ष्मीको तिनकेकी तरह अकेला छोड़ कर चला गया, तोभी यह मरुदेवा न मरी। कहाँ तो मेरे पुत्रके मस्तक पर चन्द्रमाके आतप कान्ति जैसे छत्रका रहना और कहाँ सारे अंगोंको जलानेवाले सूर्यके तापका लगना। पहले तो वह लीलासे चलने वाले हाथी वगैर. जानवरोंपर सवार होकर फिरता था और आजकल पथिक—राहगीरकी तरह पैदल चलता है! पहले मेरे उस पुत्र पर वारांगनायें चँवर ढोरती थी, और आजकल वह डाँस और मच्छरोंके उपद्रव सहन करता है! पहले वह देवताओंके लाये हुए दिव्य आहारोंका भोजन करता था और आजकल वह बिना भोजन जैसा भिक्षा-भोजन करता है। बड़ी ऋद्धि वाला वह पहले रत्नमय सिंहासन पर बैठता था और आजकल गैंडेकी तरह बिना आसन रहता है। पहले वह पुररक्षक और शरीर-रक्षकोंसे घिरा हुआ नगरमें रहता था और आजकल वह सिंह प्रभृति हिंसक-जानवरोंके निवास स्थान-वनमें रहता है! पहले वह कानोंमें अमृत रसायनरूप दिव्यांगनाओंका गाना सुनता था और आजकल वह उन्मत्त सर्पके कानमें सूईकी तरह फुङ्कारें सुनता है। कहाँ उसकी पहलेकी स्थिति और कहाँ

वर्त्तमान स्थिति! हाय! मेरा पुत्र कितनी तकलीफ़ें उठाता है, कितने कष्ट भोगता है, कि वह स्वयं पद्मखण्ड-समान कोमल होने पर भी वर्षाकालमें जलके उपद्रव सहता है। हेमन्त काल या जाड़ेमें जंगली मालतीके स्तम्बकी तरह हमेशा वर्फ गिरनेके क्लेशको लाचारीसे सहता है और गरमीकी ऋतुमें जंगली हाथीकी तरह सूरजकी अतीव तेज धूपको सहता है! इस तरह मेरा पुत्र वनमें वनवासी होकर, विना आश्रयके साधारण मनुष्योंकी तरह अकेला फिरता हुआ दुःखका पात्र हो रहा है। ऐसे दुःखोंसे व्याकुल पुत्रको मैं अपने सामने ही इस तरह देखती हूँ और ऐसी ऐसी बातें कहकर तुझे भी दुखी करती हूँ।

मरुदेवा माताको इस तरह दुःखोंसे व्याकुल देख, भरतराजा हाथ जोड़, अमृत-तुल्य वाणीसे बोला—“हे देवि! स्थैर्य्यके पर्वत रूप, वज्रके सार रूप और महासत्वजनोंमें शिरोमणि मेरे पिताकी जननी होकर आप इस तरह दुखी क्यों होती हो? पिताजी इस समय संसार-सागरसे पार होनेकी भरपूर चेष्टा कर रहे हैं, उद्योग कर रहे हैं। इसलिये कण्ठमें बँधी हुई शिलाकी तरह उन्होंने अपन लोगोंको त्याग दिया है। वनमें विहार करने वाले पिताजीके सामने, उनके प्रभावसे हिंसक और शिकारी प्राणी भी पत्थरके से हो जाते हैं और उपद्रव कर नही सकते। भूख, प्यास और धूप आदि दुःसह परिषह कर्म रूपी शत्रुओंके नाश करनेमें उल्टे पिताजी के मददगार हैं। अगर आपको मेरी बातो पर यक़ीन न आता हो, मेरी बातें विश्वास योग्य न मालूम होती हो, तो थोड़ेही समय

हाथी आपके हिरन को नुक़सान पहुँचायेगा। हे सर्पवाहन! यहाँ से दूर रहो, देखो यह मेरा वाहन गरुड़ है, यह आपके सर्प-को तकलीफ देगा। अरे भाई! तू मेरी राह रोकने को आड़े क्यों आता है और अपने विमान से मेरे विमान को क्यों लड़ाता है? दूसरा कहता—अरे मैं पीछे रह गया हूँ, और इन्द्र महाराज जल्दी-जल्दी चले जाते हैं, इसलिये परस्पर संघर्षण होने या टक्कर होनेसे नाराज़ मत होओ॰ क्योंकि पर्वदिनों में भिचा-भिची या अड़ाअड़ी होती ही है; यानी पर्वके दिन अकसर भीड़-भाड़ होती ही है। इस तरह उत्सुकता से इन्द्र के पीछे-पीछे जानेवाले सौधर्म देवलोक के देवों का भारी कोलाहल या गुल-शोर होने लगा। उस समय दीर्घध्वजपट वाला वह पालक विमान, समुद्र के मध्य शिखर से उतरती हुई नाव जिस तरह शोभती है उसी तरह, आकाश से उतरता हुआ शोभने लगा। जिस तरह हाथी वृक्षों के बीच में चलता हुआ वृक्षों को नवाता है, उसी तरह मेघ-मण्डल में पंकिल हुए—नम्र हुए स्वर्ग को झुकाता हो इस तरह, नक्षत्रचक्र के बीच में, वह विमान आकाश में चलता-चलता, वायु के वेग से, अनेक द्वीप-समूह को लाँघता हुआ, नन्दीश्वर द्वीप में आ उपस्थित हुआ। जिस तरह विद्वान् पुरुष ग्रन्थ को संक्षिप्त करते हैं; उसी तरह उस द्वीप के दक्खन पूर्व के मध्यभाग में, रतिकर पर्वत के ऊपर, इन्द्रने उस विमान को संक्षिप्त किया। वहाँ से आगे चलकर, कितनेही द्वीप और समुद्रों को लाँघकर, उस विमान

माँगकर गुजर करने वाला पुत्र दुःखोंका पात्र है; परन्तु आप त्रिलोकीके आधिपत्यको भोगने वाले अपने पुत्रकी सम्पत्तिको देखिये।" यह कह कर उन्होंने माताजीको गजेन्द्र पर सवार कराया। इसके बाद मूर्त्तिमान लक्ष्मी हो इस तरह सुवर्ण और माणिकके गहने वाले घोड़े, हाथी, रथ और पैदल लेकर वहाँसे कूच किया। अपने आभूषणोंसे जंगम—चलते हुए तोरणकी रचना करने वाली फौजके साथ चलने वाले महाराज भरतने दूरसे ऊपरका रत्नमय गढ़ देखा। उन्होंने माता मरुदेवासे कहा—"हे देवि! देखो, देवी और देवताओंने प्रभुका समवसरण बनाया है। पिताजीके चरण-कमलोंकी सेवामें आनन्द-मग्न हुए देवोंका जय-जय शब्द सुनाई दे रहा है। हे माता! मानो प्रभुका बन्दी हो, ऐसे गम्भीर और मधुर शब्दसे आकाशमें बजता हुआ दुंदुभीका शब्द आनन्द उत्पन्न कर रहा है। स्वामीके चरण कमलोंकी वन्दना करने वाले देवताओंके विमानोंमें उत्पन्न हु अनेक घुँघरुओंकी आवा-ज आप सुन रहीं है। स्वामीके दर्शनोसे आनन्दित देवताओंका मेघकी गरजनाके समान यह सिंहनाद आकाश में हो रहा है। ग्राम और रागसे पवित्र ये गन्धर्वोंका गाना मानो प्रभुकी वाणीके सेवक हों, इस तरह अपनेको आनन्दित कर रहा है।" जलके प्रवाह से जिस तरह कीच धुल जाती है, उसी तरह भरतकी बातोंसे उत्पन्न हुए आनन्दके आँसुओंसे माता मरुदेवा की आँखोंमें पड़े हुए पटल धुलगये। उनकी गई हुई आँखें लौट आईं—उन्हें नेत्रज्योति फिर प्राप्त होगई। इसलिये उन्होंने अपने पुत्रकी अतिशय सहित ती-

इसके बाद प्रभुने कल्पवृक्षकी तरह उनकी अपनी इच्छासे की हुई प्रार्थनाके अनुरूप, मनुष्योंको सांवत्सरिक दान देना आरम्भ किया, अर्थात् कल्प-वृक्ष जिस तरह मांगने वालेको उसकी प्रार्थनानुसार फल देता है; उसी तरह प्रभुने जिसने जो माँगा उन्होंने उसे वही दिया। [पृष्ठ २४४]

इस अवसर्पिणी कालमें जन्मे हुए लोग रूपी पद्माकर को सूर्य-समान आपके दर्शनोंसे मेरा अन्धकार नाश होकर प्रभात हुआ है। हे नाथ! भव्य जीवोंके मन रूपी जलको निर्मल करने की क्रिया में निर्मली जैसी आपकी वाणी की जय हो रही है। हे करुणा के क्षीरसागर! आपके शासन रूपी महारथमें जो चढ़ते हैं, उनके लिए लोकाग्र—मोक्ष दूर नहीं है। निस्कारण जगत्‌बन्धु! आप साक्षात् देखने मे आते हैं, इस लिये हम इस संसारको मोक्ष से भी अधिक मानते हैं। हे स्वामी! इस संसार में निश्चल नेत्रों से, आपके दर्शन के महानन्द रूपी झरने में हमें मोक्ष-सुखके स्वाद का अनुभव होता है। हे नाथ! रागद्वेष और कषाय प्रभृति शत्रुओं द्वारा रुँधे हुए इस जगत् को अभयदान देने वाले आप रूँधन से छुड़ाते हैं। हे जगदीश! आप तत्व वताते हैं, राह दिखाते हैं, आप ही इस ससार की रक्षा करते हैं, अतः मैं इससे अधिक और क्या माँगूँ? जो अनेक प्रकार के युद्ध और उपद्रवों से एक दूसरे के गाँवों और पृथ्वी को छीन लेने वाले हैं, वे सब राजा परस्पर मित्र होकर आपकी सभामें वैठे हुए हैं। आपकी सभामें आया हुआ यह हाथी अपनी सूँड से केसरी सिंह की सूँड को खींच कर अपने कुम्भस्थलों को वारवार खुजाता है। यह भैंस दूसरी भैंस की तरह, मुहब्बत से, वारम्वार इस हिनहिनाते हुए घोड़े को अपनी जीभ से साफ करती है। लीला से अपनी पूँछ को हिलाता हुआ यह हिरन कान खड़े करके और मुखको नीचा करके अपनी नाक से इस व्याघ्र के मुहको सूँघता

है। यह जवान बिल्ली अपने आगे पीछे बच्चे की तरह फिरने वाले चूहे को आलिङ्गन करती है। यह सर्प अपने शरीरको कुण्ड-लाकर करके इस न्यौले के पास मित्र की तरह बैठा है। हेदेव! ये निरन्तर वैर रखने वाले भी दूसरे प्राणी यहाँ निर्वैर होकर बैठे हैं। इन सब बातों का कारण आपका अतुल्य प्रभाव हैं।"

महीपति भरत इस तरह जगत्पतिको स्तुति करके, अनुक्रमसे पीछे सरक कर, स्वर्गपति इन्द्र के पीछे बैठ गये। तीर्थनाथ के प्रभाव से उस चार कोस के क्षेत्र में करोड़ों प्राणी बिना किसी प्रकार की निर्बाधता या दिक्कतके बैठ गये। उस समय समस्त भाषाओं को स्पर्श करने वाली और पेंतीस अतिशय वाली एव योजन-गामिनी वाणी से इस तरह देशना—उपदेश देना आरम्भ किया।

भगवान् की देशना।

महीपति भरत इस भाँति त्रिलोकी नाथकी स्तुति कर, अनु-क्रम से पीछे हट स्वर्गपति इन्द्रके पीछे बैठ गया। वह मैदान केवल ८ मीलके विस्तार का था, पर तीर्थनाथ के प्रभाव से करो-ड़ों प्राणी उसी मैदानमें बिना किसी प्रकार की सुकड़ा-सुकड़ी और अड़ास के बैठ गये। उस समय समस्त भाषाओं का स्पर्श करने वाली, पेंतीस अतिशयवाली और आठ मील तक पहुँचनेवाली आवाज़से प्रभुने इस प्रकार देशना—उपदेश देना आरम्भ किया—
"आधि—व्याधि, जरा और मृत्यु से व्याकुल यह संसार समस्त

प्राणियों के लिये देदीप्यमान और प्रज्वलित अग्नि के समान है। इसलिये विद्वानोंको उसमें लेशमात्र भी प्रमाद करना उचित नहीं, क्योंकि रातमें उल्लङ्घन करने योग्य मरुदेश—मारवाड़ में अज्ञानी के सिवा और कौन प्रमाद करें? अनेक जीवयोनि रूप भँवरों से आकुल संसार-सागरमें, उत्तम रत्न-समान मनुष्य-जन्म प्राणियों को बड़ी कठिनाई से मिलता है। दोहद या खाद पूरने से जैसे वृक्ष फल-युक्त होता है; उसी तरह परलोक-साधन करने से प्राणियों को मनुष्य-जन्म सार्थक होता है। इस जगत् में दुर्जनों की वाणी जिस तरह सुनने में पहले मधुर और मनोमुग्धकर और शेषमें अतीव भयङ्कर विपत्तियों का कारण होती है, उसी तरह विषय-भोग भी पहले मधुर और परिणाम में भयङ्कर और जगत् को ठगने वाले हैं। विषय पहले बड़े मधुर और मनको मोहने वाले मालूम होते हैं; प्राणी विषयों में बड़ा सुख-आनन्द समझते हैं; पर अन्तमें उन्हें उनके विषम विषमय फल भोगने पड़ते हैं। वे उनसे बुरी तरह ठगे जाते हैं। उनके धोखे में आकर वे अपने मनुष्य-जन्म को वृथा नष्ट करते और शेषमें उन्हें नाना प्रकार की योनियों में जन्म लेकर अनेक प्रकारके घोरातिघोर कष्ट उठाने पड़ते हैं। जिस तरह अधिक उँचाईका अन्त पतन होने या पड़ने में है; उसी तरह संसार के समस्त पदार्थों के संयोग का अन्त वियोगमें है। दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं, अत्यधिक उँचाईका परिणाम पतन है और संयोग का परिणाम वियोग है। जो बहुत ऊँचा चढ़ता है, वह नीचा गिरता है और जिसका संयोग होता है, उसका वि-

योग अन्तमें होता ही है। संयोग और वियोग का जोड़ा है। आज संयोग-सुख है, तो कल वियोगजन्य दुःख अवश्य होगा। मानो परस्पर स्पर्द्धा से हो, इस तरह इस जगत् में प्राणियों के आयुष्य, धन और यौवन—ये सब नाशमान् और जानेके लिए जल्दी करने वाले हैं, अर्थात् प्राणियों की उम्र, दौलत और और जवानी परस्पर होड़ा-होड़ी करके एक दूसरेसे जल्दी चले जाना चाहते हैं। ये तीनों चञ्चल हैं ; अपने साथीके साथ सदा या चिरकाल तक ठहरने वाले नहीं। जिसने जन्म लिया है, उसे जल्दी ही मरना होगा। जो आज धनी है, उसे किसी न किसी दिन निर्धन होना हीं होगा, और जो आज जवान है, उसे कल या परसों बूढ़ा होना ही होगा। मतलब यह कि, धन, यौवन और आयुष्य मनुष्य के साथ सदा या चिरकाल तक टिकने वाले नहीं। जिस तरह मरुदेश या मरुस्थलीमें स्वादिष्ट जल नहीं होता ; उसी तरह ससार की चारों गतियों में सुख का लेश भी नहीं ; अर्थात् संसारमें दुःख ही दुःख हैं, सुखका नाम भी नहीं। क्षेत्र-दोष से दुःख पाने-वाले और परम अधार्मिक होनेके कारण क्लेश भोगने वाले नारकीयों को सुख कहाँ हो सकता है ? शीत, वात, आतप और जल तथा वध, बन्धन और क्षुधा प्रभृतिसे नाना प्रकार के क्लेश भोगने वाले तिर्य्यञ्च प्राणियों को भी क्या सुख हैं ? गर्भवास, व्याधि, दरिद्रता, बुढ़ापा और मृत्यु से होने वाले दुःखों के फेरमें पड़े हुए मनुष्यों को भी सुख कहाँ है ? परस्पर के मत्सर, अमर्ष, कलह एवं च्यवन आदि दुःखों से देवताओं को भी

लेशमात्र सुख नहीं ; तथापि जल जिस तरह नीची ज़मीन की ओर जाता है; उसी तरह प्राणी, अज्ञानवश, बारम्बार इस संसार की ओर जाते हैं। अतएव चेतनावाले भव्य जीवो! दूधसे सर्प को पोषण करने की तरह तुम अपने मनुष्य-जन्म से संसार को पोषण मत करो। हे विवेकी पुरुषो! इस संसार-निवास से पैदा होने वाले अनेकानेक दुःख और क्लेशोंका विचार करके, सब तरह से मोक्ष लाभ की चेष्टा करो। नरक के दुःखों के जैसा गर्भ में रहने का दुःख संसार की तरह मोक्षमें हरगिज नहीं होता। कुम्भीमें से खींचे हुए नारकीय जीवों की पीड़ा जैसी प्रसव-वेदना मोक्षमें कदापि नहीं होती। बाहर और भीतर से लगे हुए तीरोंके तुल्य-पीड़ा की कारण रूप आधि-व्याधि उसमें नहीं होतीं। यमराज की अग्रगामिनी दूती, सब तरहके तेजको चुराने वाली और पराधीनता को पैदा करने वाली वृद्धावस्था भी उसमें नहीं है। और नारकीय तिर्य्यंञ्च, मनुष्य और देवताओं की तरह वारम्वारके भ्रमण का कारण रूप "मरण" भी मोक्षमें नहीं है। वहाँ तो महा आनन्द, अद्वैत और अव्यय सुख, शाश्वत रूप और केवलज्ञानरूप सूर्य से अखण्डित ज्योति है। निरन्तर ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूपी तीन उज्ज्वल रत्नोंका पालन करने वाले पुरुष ही मोक्ष लाभ कर सकते हैं। उनमें से जीवादिक तत्त्वों के संक्षेप से अथवा विस्तार से अवबोध को सम्यक् ज्ञान समझना चाहिये। मति,श्रुति अवधि, मनःपर्याय और केवल, इस तरह अन्वय-सहित भेदोंसे वह ज्ञान पाँच तरह के होते हैं। उनमें से अवग्रह आदिक भेदों

वाला एव वहुग्राही और अवहुग्राही भेदोवाला। तथा जो इन्द्रिय और अनिन्द्रिय से उत्पन्न होता है, उसे "मतिज्ञान" जानना चाहिये। पूर्वअङ्ग, उपांग और प्रकीणंक सूत्रों—ग्रन्थोंसे अनेक प्रकार के विस्तार को प्राप्त हुआ और स्यात् शब्दसे लांछित "श्रुत-ज्ञान" अनेक प्रकारका होता है। देवता और नारकी जीवों को जो भवसम्बन्ध से उत्पन्न होता है, वह "अवधिज्ञान" कहलाता है। यह क्षय उपशम लक्षणों वाला है, और मनुष्य तिर्य्यञ्च के आश्रयसे उसके छ. भेद हैं। मनः पर्य्यायज्ञान ऋजुमती और विपुलमती—इस तरह दो भाँति का हैं। उनमें विपुलमती में विशुद्धि अप्रति-पादत्व से विशेषता है। समस्त पर्य्याय के विषय वाला विश्व लोचन-समान, अनन्त, एक और इन्द्रियों के विषयों से रहित ज्ञान "केवल ज्ञान" कहलाता है।

समकित वर्णन।

शास्त्रोक्त तत्त्वोंमें रुचि— सम्यक् श्रद्धा कहलाती है। वह श्रद्धा समकित स्वभाव और गुरूके उपदेश से प्राप्त होती हैं। इस अनादि अनन्त संसार के भँवरों में पडे हुए जीवोंको ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी वेदनी और अन्तराय.नामके कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति-तीस कोटानुकोटि सागरोपम की है। गोत्र और नामकरण की स्थिति वीस कोटानुकोटि सागरोपम की है। और मोहनीय कर्म की स्थिति सत्तर कोटानुकोटि सागरोपम की है। अनुक्रम से, फलके अनुभव से, वे सब कर्म—पहाड़से निकली हुई नदीमें

लुढ़कता-लुढ़कता पत्थर गोल हो जाता है—उस न्यायकी तरह—स्वयं क्षय हो जाते हैं। इस प्रमाण से क्षय होते हुए कर्म की अनुक्रम से उन्तीस उन्तीस और उनहत्तर कोटानुकोटि सागरोपम की स्थिति क्षय को प्राप्त होती है। और किसी क़दर कम कोटानुकोटि सागरोपमकी स्थिति जब बाक़ी रह जाती है, तब प्राणी यथा प्रवृत्ति-करण से ग्रन्थी देशको प्राप्त होते हैं। राग द्वेषको भेद सके, ऐसे परिणाम को ग्रन्थी कहते हैं। वह लकड़ी की गाँठ की तरह मुश्किल से छेदी जाने योग्य और बहुत ही मज़बूत होती है। हवाके झोके से किनारे पर आई हुई नाव जिस तरह फिर समुद्र में चली जाती है; उसी तरह रागादिक से प्रेरित किये हुए कितने ही जीव ग्रन्थि या गाँठ को छेदे बिना ही ग्रन्थीके पास आकर वापस चले जाते हैं। कितनेही प्राणी राहमें फिसल कर, नदीके जलकी तरह, किसी प्रकारके परिणाम विशेष से, वहाँ ही विराम को प्राप्त होते हैं। कोई कोई प्राणी, जिनका भविष्यमें—आगे चलकर कल्याण होने वाला होता है—भला होने वाला होता है, अपूर्व्व करण से, अपना वीर्य प्रकट करके, लम्बी-चौड़ी राहको तय करने वाले मुसाफिर जिस तरह घाटी को लाँघते हैं; उसी तरह दुर्लङ्घ्य ग्रन्थी—गाँठको तत्काल भेद डालते हैं। कितने ही चार गति वाले प्राणी अनिवृत्तिकरण से अन्तरकरण करके, मिथ्यात्व को विरल कर, अन्तमुहुर्त मात्रमें सम्यक् दर्शन पाते हैं। वे नैसर्गिक—स्वाभाविक सम्यक् श्रद्धान कहलाते हैं। गुरूके उपदेश के अवलम्बन से भव्य प्राणियों को

जो समकित उत्पन्न होता है, वह गुरुके अधिगमसे हुआ समकित कहलाता है।

समकित के औपशमिक सास्वादन, क्षायोपशमिक, वेदक और क्षायिक—ये पाँच प्रकार या भेद हैं। जिसकी कर्म ग्रन्थि मिटी हुई है, ऐसे प्राणी को जो समकित का लाभ, प्रथम अन्तर्मुहूर्त्त में होता है, वह औपशमिक समकित कहलाता है। उसी तरह उपशम श्रेणी के योग से जिसका मोह शान्त हुआ हो ऐसे देही-प्राणी को मोह के उपशम से उत्पन्न हो वह भी औपशमिक समकित कहलाता है। सम्यक् भावका त्याग करके मिथ्यात्व के सन्मुख हुए प्राणी को, अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय होने पर, उत्कर्षसे छः आवली तक और जघन्य से एक समय समकित का परिणाम रहता है, वह सास्वादन समकित कहलाता है। मिथ्यात्व मोहनी का क्षय और उप शम होने से उत्पन्न हुआ—तीसरा क्षयोपशमिक समकित कहलाता है। वह समकित मोहनी के उदय परिणाम वाले प्राणी को होता है।

समकित दर्शन गुणसे रोचक, दीपक और ,कारक—इन नामों से तीन प्रकार का है। उनमें से शास्त्रोक्त तत्वों में—हेतु और उदाहरण के बिना—जो दृढ प्रतीति उत्पन्न होती है वह रोचक समकित। जो दूसरों के समकितको प्रदीप्त करे वह दीपक समकित, और जो संयम और तप आदि को उत्पन्न करता है, वह कारक समकित कहलाता है। वह समकित—शम, संवेग, निर्वेद और अनुकम्पा एवं आस्तिक्य—इन पाँच लक्षणों से अच्छी तरह पह-

चाना जाता है। अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय न हो, उसे शम कहते हैं; अथवा सम्यक् प्रकृति से कषायों के परिणाम के देखने को भी शम कहते हैं। कर्मके परिणाम और संसार की असारता को विचारने वाले पुरुष को जो वैराग्य उत्पन्न होता है, उसे संवेग कहते हैं। संवेग वाले पुरुष को संसारमें रहना जेलखानेके समान है; अर्थात् वह संसार को कारागार समझता है और स्वजनों को बन्धन मानता है। जिसके ऐसे वचार होते हैं, उसे निर्वेद कहते हैं। एकेन्द्रिय आदि प्राणियों को संसार में डूबते जो क्लेश होता है, उसे देखकर दिलका पसीजना, उनके दुःखों से दुखी होना और उनके दुःख दूर करने की यथा साध्य चेष्टा करना—अनुकम्पा है, दूसरे तत्वों को सुनने पर भी, अर्हत तत्वमें प्रतिपत्ति रहना—"आस्तिक्य" कहलाता है। इस तरह सम्यक् दर्शन वर्णन किया है। इसकी क्षणमात्र भी प्राप्ति होने से बुद्धि में जो पहले का अज्ञान होता है, उसका पराभव होकर मतिज्ञान की प्राप्ति होती है। और श्रुत अज्ञानका पराभव होकर श्रुतज्ञान की प्राप्ति होती है और विभंग ज्ञानका नाश होकर अवधि ज्ञान की प्राप्ति होती है।

चारित्र वर्णन।

समस्त सावद्य योगके त्याग करने को "चारित्र" कहते हैं। वह अहिंसा प्रभृति के भेद से पाँच तरह का होता है। अहिंसा सत्य, अचौर्य्य, ब्रह्मचर्य्य, और परिग्रह—ये पांचव्रत पाँच पाँच

भावनाओं से युक्त होने से मोक्ष के कारण होते हैं। प्रमाद के योगसे त्रस और स्थावर जीवोंके प्राण नाश न करनेको "अहिंसा" व्रत कहते हैं। प्रिय, हितकारी और सत्य वचन बोलने को "सुनृत" व्रत या सत्यव्रत कहते हैं। और अहितकारी सत्य वचन भी असत्य के समान हैं। अदत्त वस्तु को ग्रहण न करना, यानी बिना दी हुई चीज न लेना "अस्तेय" व्रत कहलाता है; क्योंकि द्रव्य मनुष्य का बाहरी प्राण है। इसलिये उसको हरण करने वाला—उसे चुराने वाला उसके प्राण हरण करने वाला समझा जाता है। दिव्य और औदारिक शरीर से अब्रह्मचर्य सेवनका—मन, वचन और कायासे, करना, कराना और अनुमोदन करना—इन तीन प्रकारों का त्याग करना "ब्रह्मचर्य" व्रत कहलाता है। उसके अठारह भेद होते हैं। सब पदार्थों के ऊपर से मोह दूर करना "अपरिग्रह" व्रत कहलाता है, क्योंकि मोहसे असत् पदार्थ में भी चित्तका विप्लव होता है। यतिधर्मके व्रती यतीन्द्रोंको,इस तरह सर्वसे चारित्र कहा है और गृहस्थों को देशसे चारित्र कहा है।

समकित मूल पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, और चार शिक्षाव्रत—इस तरह गृहस्थों को बारह व्रत कहे हैं। बुद्धिमान् पुरुषों को लंगड़े, लूले, कोढ़ी और कुणित्व आदि हिंसा के फल देखकर निरपराधी त्रस जीवों की हिंसा संकल्प से छोड़ देनी चाहिये। मिनमिनापन, मुखध्वनि रोग, गूँगापन, और मुखरोग—इनको असत्यका फल समझ कर, कन्या अलीक वगैरः पाँच बड़े बड़े असत्य छोड़ने चाहियें। कन्या, गाय और जमीन के सम्बन्ध में

झूट बोलना, पराई धरोहर हज़म कर जाना, और झूठी गवाही देना—ये पाँच स्थूल असत्य त्याग देने चाहिऐं। दुर्भाग्य, कासिदपना—दूतपना, दासत्व, अङ्गछेदन और दरिद्रता—इनको चोरीके फल समझ कर, स्थूल चोरीका त्याग करना चाहिये। नपुंसकता-नामर्दी और इन्द्रिय छेदनको अब्रह्मचर्यका फल समझ कर, सुबुद्धिमान् पुरुषको अपनी स्त्री में संतोष रखकर पर स्त्री का त्याग करना चाहिये।
असन्तोष, अविश्वास, आरम्भ और दुःख— इन सब को परिग्रह की मूर्च्छा के फल जानकर, परिग्रह का प्रमाण करना चाहिये। दशों दिशाओंमें निर्णय की हुई सीमा का उल्लङ्घन न करना, दिग्विरति नामक पहला गुणव्रत कहलाता है। जिस में शक्ति-पूर्व्वक भोग उपभोग की संख्या की जाती है, उसे भोगोपभोग प्रमाण नामका दूसरा गुणव्रत कहते हैं। आर्त्त, रौद्र—ये दो अपध्यान, पापकर्म का उपदेश, हिंसक अधिकरण का देना तथा प्रमादाचरण—ये चार तरह के अनर्थ दण्ड कहलाते हैं। शरीर आदि अर्थ दण्ड की शत्रुता से रहनेवाला अनर्थदण्ड का त्याग करे, वह तीसरा गुणव्रत कहलाता है। आर्त्त और रौद्र ध्यान का त्याग करके तथा सावद्य कर्म को छोड़कर मुहूर्त्त, यानी दो घड़ी तक समता धारण करना सामायिक व्रत कहलाता है। दिन और रात-सम्बन्धी दिग्व्रत में परिमाण किया हुआ हो, उसे संक्षेप करना देशावकाशिक व्रत कहलाता है। चार पर्वके दिन उपवास आदिक तप प्रभृति करना, कुव्यापार त्यागना; यानी

संसार—सम्बन्धी समस्त व्यापार त्यागना, ब्रह्मचर्य्य पालना और दूसरी स्नानादिक क्रियाओं का त्याग करना—पौषध व्रत कहलाता है। अतिथि-मुनि को चार प्रकार का आहार, पात्र, कपडा, स्थान या उपाश्रय का दान करना,—अतिथिसंविभाग नामक व्रत कहलाता है। मोक्षकी प्राप्ति के लिये मुनियों और श्रावकों को अच्छी तरह से इन तीन रत्नों की उपासना सदा करनी चाहिये।

प्रभु द्वारा की गई चतुर्विध संघकी स्थापना।

गणधरों की स्थापना।

इस प्रकार देशना—उपदेश सुनकर भरतके पुत्र ऋषभसेन ने प्रभुको नमस्कार कर इस प्रकार कहना आरम्भ किया—"हे स्वामी! कषाय रूपी दावानल से दारुण इस संसार रूपी अरण्य में, आपने नवीन मेघ की तरह अद्वितीय तत्वामृत की वर्षाकी है। हे जगदीश! जिस तरह डूबते हुए को नाव मिलजाती है, प्यासों को पानी की प्याउ मिल जाती है, शीत पीडितों के लिये आग मिल जाती है। धूप से तपे हुओं के लिये छाया मिल जाती है, अँधेरे में डूबे हुएको प्रकाश या रोशनी मिल जाती है, दरिद्री को ख़ज़ाना मिलजाता है, विष—पीड़ितों को अमृत मिल जाता है, रोगी को दवा मिल जाती है, शत्रुसे आक्रान्त लोगों के लिये क़िलेका आश्रय मिल जाता है, उसी तरह संसार से भीत हुओंके लिये आप मिल गये हैं, इसलिये हे दयानिधि!

रक्षाकरो! रक्षाकरो! पिता, भाई, भतीजे, एवं अन्य स्वजन—नातेदार, जो इस संसार-भ्रमण के एक हेतु रूप हैं, और इसी से अहितकारी या अनिष्ट करने वाले हो रहे हैं, उनकी क्या ज़रूरत है? हे जगत्शरण्य! हे संसार-सागर से तारनेवाले—पार लगाने वाले! मैंने तो आपका आश्रय ले लिया है, आपकी शरण में आगया हूँ। इसलिये मुझे दीक्षा दीजिये और मुझ पर प्रसन्न होइये। इस प्रकार कहकर ऋषभसेन ने भरत के अन्य पाँचसौ पुत्र और सात सौ पौत्रों के साथ व्रत ग्रहण किया। सुर—असुरों द्वारा की हुई प्रभुके केवल ज्ञान की महिमा देखकर, भरतके पुत्र मरीचि ने भी व्रत ग्रहण किया। भरत के आज्ञा देने से ब्राह्मी ने भी व्रत ग्रहण किया, क्योंकि लघुकर्म करने वाले जीवों को बहुत करके गुरुका उपदेश साक्षी मात्र ही है। बाहुबलि से मुक्त की गई सुन्दरी भी व्रत ग्रहण करने की आकांक्षा रखती थी; पर जब भरत ने निषेध किया—व्रत ग्रहण करने की मनाही की, तब वह पहली श्राविका हुई। भरतने प्रभुके समीप श्रावकपना अंगीकार किया, यानी उसने श्रावक होनेका व्रत अङ्गीकार किया; क्योंकि भोग कर्मोंके भोगे बिना व्रत या चारित्र की प्राप्ति नहीं होती। मनुष्य तिर्यञ्च, और देवताओं की मण्डलियों में से किसी ने व्रत ग्रहण किया, किसीने श्रावकपना अङ्गीकार किया, और किसीने समकित धारण किया। पहले के राजतपस्वियों में से कच्छ और महाकच्छके सिवा और सभीने स्वामीके पास आकर फिर खुशी से दीक्षा ग्रहणकी। ऋषभसेन—पुण्डरीक प्रभृति साधुओं, ब्राह्मी

वगैरः साध्वियों, भरत आदि श्रावकों और सुन्दरी प्रभृति श्राविकाओं से उस समय चार तरह के संघकी व्यवस्था आरम्भ हुई जो धर्मके एक श्रेष्ठ ग्रहके रूप में आजतक चली जाती है। उस समय प्रभुने गणधर नाम कर्मवाले ऋषभसेन आदि चौरासी सद् बुद्धिमान् साधुओं को, जिसमें सारे शास्त्र समाये हुए हैं, ऐसी उत्पात, विगम और ध्रौव्य नामकी त्रिपदी का उपदेश दिया। उन्हों ने उस त्रिपदी के अनुसार अनुक्रम से चतुर्दश पूर्व और द्वादशाङ्गी रची। इसके बाद देवताओं से घिरा हुआ सुरपति-इन्द्र, दिव्यचूर्ण से भरा हुआ एक थाल लेकर, प्रभुके चरणोंके पास आकर खडा हुआ, तब प्रभुने खडे हो कर अनुक्रम से उनके ऊपर चूर्णक्षेप कर—चूर्ण फैंक कर, सूत्र से, अर्थ से, सूत्रार्थ से द्रव्य से, गुण से, पर्य्याय से, और नय से उन को अनुयोगकी अनुज्ञा दी तथा गुणकी अनुमति भी दी। इसके बाद देवता, मनुष्य और उनकी स्त्रियोंने, दुंदुंभि की ध्वनिके साथ, उन पर चारों ओर से वासक्षेप किया। मेघके जलको ग्रहण करने वाले वृक्ष की तरह प्रभु की वाणी को ग्रहण करने वाले सब गणधर हाथ जोडे खड़े रहे। तब प्रभुने पहले की तरह पूर्वाभिमुख सिंहासन पर बैठ कर, फिर शिक्षापूर्ण धर्म-देशना या धर्मोपदेश दिया। उस समय प्रभु रूपी समुद्र में से उत्पन्न हुई देशना रुपी उद्दामवेलाकी मर्य्यादा के जैसी पहली पौरुषी पूरी हुई।

वलिउत्क्षेप।

उस समय अखण्ड, तुष-रहित और उज्वल शाल से वनाया हुआ चार प्रस्थ जितना वलि थाल में रखकर, समवसरणके पूर्व द्वार से, अन्दर लाया गया ; अर्थात् उस समय विना टूटे हुए साफ और सफेद चाँवलों की चार प्रस्थ प्रमाण वलि थाल में रख कर, समवसरण के पूर्व दरवाज़े से भीतर लाई गई। देवताओंने उसमे' सुगन्धी डालकर उसे दूनी सुगन्धित कर दिया था, प्रधान पुरुष उसे उठाकर लाये थे और भरतेश्वरने उसे वनवाया था। उसके आगे आगे वजने वाली दु'दुभि से दशों दिशाएं गूँज रही थीं। उसके मंगल गीत गाती गाती स्त्रियों चल रही थीं। मानो प्रभुके प्रभाव से उत्पन्न हुई पुण्यराशि हो, इस तरह वह पौर लोगों से चारों ओर से घिर रहा था। मानों वोने के लिए कल्याण रूपी धान्यका वीजहो, इस तरह वह वलि प्रभु की प्रदक्षिणा कराकर उछाल दिया गया। जिस तरह मेघ के जलको चातक—पपहिया ग्रहण करता है, उसी तरह आकाश से गिरनेवाले उस वलि के आधे भाग को आकाश में ही देवताओं ने लपक लिया। जो भाग पृथ्वी पर गिरा, उसका आधा भरत राजाने लेलिया और जो वाक़ी रहा उसे राजाके गोती भाइयोंने आपस में वाँट लिया। उस वलिका ऐसा 'प्रभाव है, कि उस से पुराने रोग नष्ट हो जाते हैं और छै महीने तक नये रोग पैदा नहीं होते। इसके वाद उत्तर के दरवाज़ेकी राहसे प्रभु वाहर निकले। जिस तरह पद्म खण्ड के फिरने से भौंरा फिरने

लगता है, उसी तरह सब इन्द्र प्रभुके पीछे—पीछे चलने लगे। वहाँ से चलकर प्रभु सोने के कोट के बीच में, ईशान कोन के देवछन्दोमें विश्राम लेने या आराम करने को बैठे। उस समय गणधरों में प्रधान ऋषभसेन ने भगवान् के पाद पीठ पर बैठकर धर्म-देशना या धर्मोपदेश देना आराम किया; क्योंकि स्वामी के खेद में विनोद, शिष्योंका गुणदीपन और दोनों ओर से प्रतीति ये गणधर की देशनाके गुण हैं। ज्योंही गणधर ने देशना समाप्त की, कि सब लोग प्रभुको प्रणाम कर करके अपने अपने घरों को गये।

इस प्रकार तीर्थ पैदा होते ही गोमुख नामका एक यक्ष प्रभुके पास रहनेवाला अधिष्ठायक हुआ। उसके दाहिनी तरफ के दोनों हाथों में से एक वरदान चिह्नवाला था और एकमें उत्तम अक्षमाला सुशोभित थी। उसके बायीं तरफ के दोनों हाथों में बिजौरा और पाश थे। उसके शरीरका रंग सोनेका सा था और हाथी उसका वाहन था। ठीक इसी तरह प्रभुके तीर्थ में उनके पास रहनेवाली एक प्रतिचक्रा—यक्षेश्वरी नामकी शासनदेवी हुई। उसकी कान्ति सुवर्णके जैसी थी और गरुड़ इसका वाहन था, उसकी दाहिनी ओर की भुजाओं में वरप्रदचिह्न, बाण, चक्र, और पाश थे और बायीं ओर की भुजाओं में धनुष, वज्र, चक्र और अङ्कुश थे।

यक्ष और यक्षिणी की स्थापना।
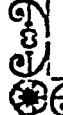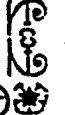
इसके बाद नक्षत्रों—सितारों से घिरे हुए चन्द्रमाकी तरह

महर्षियों से घिरे हुए प्रभु वहाँ से अन्यत्र विहार कर गये; अर्थात् किसी दूसरी जगह चले गये। उस समय जब प्रभु राह में चलते थे, भक्ति से वृक्ष नमते थे—झुकते थे, काँटे नीचा मुख करते थे और पक्षी परिक्रमा देते थे। विहार करने वाले प्रभुको ऋतु, इन्द्रियार्थ और वायु अनुकूल होते थे। उनके पास कम-से कम एक कोटि देव रहते थे। मानो भवान्तर-जन्मान्तर में उत्पन्न हुए कर्मों को नाश करते देख, डर गये हों, इस तरह जगदीशके बाल, डाढ़ी, नाखुन नहीं बढ़ते थे। प्रभु जहाँ जाते थे, वहाँ वैर, महा-मरी, मरी, अकाल-दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, स्वचक्र और पर-चक्र से होनेवाला भय-ये नहीं उत्पन्न होते थे। इस प्रकार जगत् को विस्मित करने वाले अतिशयों से युक्त; संसार में भ्रमण करनेवाले जीवों पर अनुग्रह करने की बुद्धिवाले नाभेय—नाभि-नन्दन भगवान् पृथ्वी पर वायुकी तरह वेरोक टोकके—वेखटके हो कर विहार करने लगे।
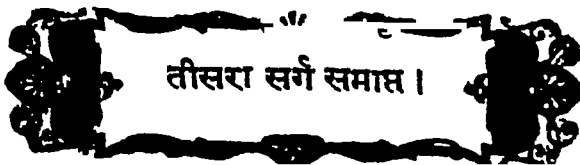
तीसरा सर्ग समाप्त।

अब इधर, अतिथि की तरह, चक्र के लिये उत्कण्ठित हुए भरत राजा विनिता नगरीके मध्य मार्ग से होकर आयुधागार में आये, अर्थात् राजा शहर के बीच में होकर अपने अस्त्रागार या सिलहखाने में आये। वहाँ पहुँच कर चक्रको देखते ही राजाने उसे प्रणाम किया ; क्योंकि क्षत्रिय लोग अस्त्रको प्रत्यक्ष अधिदेव मानते हैं। भरत ने मोरछत्र लेकर चक्रको पोंछा, यद्यपि ऐसे सुन्दर और अनुपम चक्ररत्नके ऊपर धूल नहीं जमती, तथापि भक्तोंका कर्त्तव्य है, फ़र्ज़ है, कि अपनी ड्यूटी पूरी करें। इसके बाद पूर्व-समुद्र जिस तरह उदय होते हुए सूर्यको स्नान कराता है, उसी तरह महाराज ने पवित्र जलसे चक्रको स्नान कराया। मुख्य गजपति—गजराजके पिछले भागकी तरह,उसके ऊपर गोशीर्ष चन्दन का "पूज्य" सूचक तिलक किया। इसके पीछे साक्षात् जय लक्ष्मी की तरह पुष्प, गन्ध, वासचूर्ण, वस्त्र और आभूषणों से उसकी पूजाकी, उसके आगे रूपे के चाँवलों से अष्ट मंगल रचा या मांडा। और उन आठ जुदे-जुदे मंगलों से आठ दिशाओं की लक्ष्मी घेरली। उसके पास पचरंगे फूलोंका उपहार रखकर पृथ्वी विचित्र रंग की बनादी। और शत्रुओं के यशकी तरह प्रयत्न करके चन्दन

कपूर मय उत्तम धूप जलाई। इसके बाद चक्रधारी महाराज भरतने चक्रकी तीन प्रदक्षिणा की, और गुरु की तरह अवग्रह से सात आठ कदम पीछे हट गये। जिस तरह अपने तईं कोई स्नेही—मुहब्बत से चाहने वाला नमस्कार करता है, उस तरह महाराज ने बायाँ घुटना नीचे दबाया, सुकेड़ कर और दाहने से पृथ्वी पर टिक कर चक्र को नमस्कार किया। शेषमें मूर्त्तिमान हर्ष ही हो, इस तरह पृथ्वीपतिने वहाँ ठहरकर चक्रका अष्टान्हिका उत्सव किया। उनके अलावः शहरके धनीमानी लोगोंने भी चक्र की पूजा का उत्सव किया ; क्योंकि पूजित या माननीय लोग जिसकी पूजा करते हैं, उसे दूसरा कौन नहीं पूजता?

भरतद्वारा कीगई चक्र की पूजा।

इसके बाद, उस चक्रके दिग्विजय रूप उपयोग को ग्रहण करने की इच्छा वाले भरत महाराज ने मंगल स्नानके लिए स्नानागार या स्नान-घरमें प्रवेश किया। गहने कपड़े उतार कर और स्नान के समय कपड़े पहन कर, महाराज पूरबकी ओर मुँह करके स्नान सिंहासन पर बैठे। ठीक इसी समय, मर्दन करने योग्य और न करने योग्य—मालिश करने लायक और न करने लायक स्थानोंको जाननेवाले, मर्दनकला निपुण संवाहक पुरुषोंने, देववृक्ष के पुष्प-मकरन्द के जैसी सुगन्धी वाला सहस्रपाक प्रमुख तैल महाराजके लगाया। मांस, हड्डी, चमड़ा और रोमोंको सुख देने वाली—चार प्रकारकी संवाहनासे और मृदुमध्य और दृढ़—तीन प्रकारके

हस्तलाघव से राजाको सब तरहसे संवाहन किया। इसके पीछे,आ-दर्श की तरह, अम्लाव कान्तिके पात्ररूप उस राजा के दिव्य चूर्णका उबटन मला। उस समय ऊँची डण्डीवाले नये कमलकी बावडी की तरह शोभायमान् किननी ही स्त्रियाँ सोनेके जल—कलश लेकर खड़ी थीं। कितनी ही स्त्रियां मानो जल, धन रूप होकर कलशको आधार मय हुआ हो इस तरह दिखाती हुई चाँदीके कलश लेकर खड़ी थीं कितनी ही स्त्रियाँ अपने सुन्दर हाथोमें लीलामय सुन्दर नील कमल की भ्रान्ति करने वाले इन्द्रनीलमणि के घड़े लिये हुए थी, और कितनी ही सुभ्रु बालाओं—कितनी ही सुन्दरी पोडशी रमणियोंने अपने नख—रत्नकी कान्ति रूपी जलसे भी अधिक शोभावाले दिव्य रत्नमय घड़े ले रखे थे। जिस तरह देवता जिनेन्द्र भगवान् को स्नान कराते हैं, उसी तरह इन बाला-ओं ने अनुक्रम से सुगन्धित और पवित्र जल धाराओं से धरणी पति को स्नान कराया। इसके बाद राजाने दिव्य विलेपन लग-वाया और दिशाओंके आभाप-जैसे उज्ज्वल वस्त्र पहने। फिर मानो यश रूपी नवीन अङ्कुर हो, ऐसा मंगल मय चन्दन का तिलक उसने ललाट पर लगाया। जिस तरह आकाश मार्ग बड़े बडे तारो के समूह को धारण करता है, उसी तरह यशपुञ्जके समान उ-ज्ज्वल मोतियो के अलंकार—गहने पहने। जिस तरह कलशसे महल शोभा देता है, उसी तरह अपनी किरणोंसे सूर्य को लजाने वाले मुकुट से वह सुशोभित हुआ। वारांगनाओं के कर कमलों से बारम्बार उठने वाले कानों के कर्णफूल जैसे दो चँवरोंसे वह

शोभित होने लगा। जिस तरह लक्ष्मी के घररूप कमलों को धारण करने वाले पद्म—सरोवर या कमलमय सरोवर से हिमालय पर्वत शोभायमान लगता है; उसी तरह सोनेके कलश धारण करने वाले सफेद छत्रसे वह शोभने लगा। मानो सदा पास रहने वाले प्रतिहारी—अर्दली हों, इस तरह सोलह हजार यक्ष भक्त होकर उसे घेर कर खड़े हो गये। पीछे इन्द्र जिस तरह ऐरावत पर चढ़ता है; उसी तरह ऊँचे कुम्भ स्थल के शिखर से दिशामुख को ढकने वाले रत्नकुञ्जर पर वह सवार हुआ। तब उत्कट मद की धाराओंसे मानों दूसरा मेघ हो, उस तरह उस जातिवान हाथीने बड़े ज़ोर से गर्जना की, मानो आकाश को पल्लवित करता हो, इस तरह हाथ ऊँचे करके वन्दीगण एक साथ "जय जय" शब्द करने लगे। जिस तरह वाचाल गवैया दूसरी गाने वालियों से गाना कराता है, उस तरह ऊँचा नाद करने वाला नगाड़ा दिशाओं से नाद कराने लगा, और सब सैनिकों को बुलाने में दूत जैसे अन्य श्रेष्ठ मंगल मय बाजे भी बजने लगे। मानो धातु समेत हो, ऐसे सिन्दूर को धारण करने वाले हाथियों-से, अनेक रूपको धारण करने वाले सूरज के घोड़ोका धोखा करने वाले अनेक घोड़ोंसे और अपने मनोरथ जैसे विशाल रथोंसे और मानो वशीभूत किये हुए सिंह हों—ऐसे पराक्रमी पैदलों से अलंकृत होकर महाराजा भरतेश्वर मानो अपनी सेना के चलनेसे उड़ी हुई धूल से दिशाओं को वस्त्र पहनाते हुए पूरब दिशाकी तरफ चलदिये।

भरतचक्री की दिग्विजय के लिये तैयारी।

उस समय आकाश मे फिरते हुए सूर्य बिम्ब की तरह, हज़ार यक्षोंसे अधिष्ठित ,चक्र रत्न सेना के आगे चला। दण्डरत्न को धारण करने वाला सुषेण नामक सेनापतिरत्न अश्वरत्न के ऊपर चढ़कर चक्रकी तरह आगे आगे चला। मानो सारी शान्ति कराने वाली विधियों में देहधारी शान्ति मन्त्र हो, इस तरह पुरोहितरत्न राजाके साथ चला। जङ्गम अन्तशाला-जैसा, फौजके लिए हर मुकाम पर दिव्य भोजन कराने में समर्थ गृहपतिरत्न, विश्वकर्मा की तरह, शीघ्रही पड़ाव आदि करने में समर्थ, वर्द्धकी रत्न और चक्रवर्ती के सब स्कन्धावारों पड़ावों के प्रमाण और विस्तार की शक्ति वाला होने में अपूर्व चर्मरत्न और छत्ररत्न महाराजा के साथ चले। अपनी कान्ति से सूरज और चन्द्रमा की तरह अँधेरे को नाश कर सकने वाले मणि और कांकिणी नामक दोरत्न भी चलने लगे और सुर असुरोंके सारसे बनाया गया हो, ऐसा प्रकाशमान् खड्गरत्न भी नरपति के साथ चलने लगा।

गंगा तटपर पड़ाव।

जिस समय चक्रवर्ती भरतेश्वर प्रतिहार की तरह चक्रका अनुसरण करते हुए राहमें चले, उस समय ज्योतिषियोंकी तरह अनुकुल हवा और शकुनों ने सब तरह से उनको दिग्विजय की सूचना दी। किसान जिस तरह ऊँची नीची ज़मीन को हलसे

हमवार—चौरस करते हैं, उसी तरह सेनाके आगे आगे चलने वाला सुषेण सेनापति दण्डरत्न से विषम या नाबराबर रास्तों को समान करता चलता था। सेनाके चलने से उड़ी हुई धूलिके कारण दुर्दिन बना हुआ आकाश रथ और हाथियों के ऊपर की पताका रूप बगलों से शोभित हो रहा था। चक्रवर्त्ती की सेना जिसका अन्त दिखाई नहीं देता था, अस्खलित गतिवाली गङ्गा दूसरी गङ्गा नदी सी मालुम होती थी। दिग्‌विजय उत्सव के लिये रथ चित्कारों से, घोड़े हिनहिनाने से और हाथी चिङ्घाड़ोंसे परस्पर शीघ्रता करते थे। सेनाके चलने से धूल उड़ती थी, तो भी सवारों के भाले उसके भीतर से चमकते थे, इससे वे ढकी हुई सूर्य की किरणों की हँसी करते हों ऐसा मालूम होता था। सामानिक देवों से घिरे हुए इन्द्रकी तरह मुकुटधारी भक्ति भाव-पूर्ण राजाओंसे घिरा हुआ राजकुञ्जर भरत बीचमें सुशोभित था। पहले दिन चक्र एक योजन या चारकोस चलकर खड़ा होगया। उस दिनसे उस प्रयाण के अनुमान से ही योजन का माप आरम्भ हुआ। हमेशा एक एक योजन के मान से प्रयाण करते हुए चार चार कोस रोज चलते हुए और पडाव करते हुए महाराजा भरत कितने ही दिनोंमे गङ्गा नदीके दक्षिणी किनारे पर आ पहुँचे। महाराजा भरतने, गङ्गा नदीकी विशाल भूमिको भी, अपनी सेनाके जुदे जुदे पड़ावों से संकुचित करके, विश्राम किया। उस समय गङ्गाके किनारे की जमीन पर, हाथियोंके झरते हुए मदसे, वर्षा काल की तरह कीचड़ होगई। जिस तरह मेघ समुद्र से जल

ग्रहण करते हैं, उसी तरह उत्तमोत्तम गजराज गङ्गा के निर्मल प्रवाह से इच्छानुसार जल ग्रहण करने लगे। अत्यन्त चपलतासे बारम्बार कूदने वाले घोड़े गङ्गा किनारे पर तरंगों का भ्रम उत्पन्न करने लगे और बड़ी मिहनत से गङ्गा के भीतर घुसे हुए हाथी, घोड़े, भैंसे, और साड ऐसा भ्रम उत्पन्न करने लगे मानों उस उत्तम नदी में नये नये प्रकारके मगर मच्छ प्रभृति जल जीव हों। अपने किनारे पर डेरा डालने वाले राजाके अनुकूल हो, इस तरह गङ्गा नदी अपनी उछलने वाली लहरों की बूंदो या छीटों से राजा की फौज की थकान को जल्दी जल्दी दूर करने लगी। महाराज की जबर्दस्त फौज या बड़ी भारी सेना से सेवित हुई गङ्गा नदी शत्रुओंकी कीर्ति की तरह कृश होने लगी अर्थात् महाराज की सेना इतनी बड़ी थी कि उसके गङ्गाके किनारे ठहरने और उसका जल काममें लाने से गङ्गा क्षीणकाय होने लगी—उसका जल कम होने लगा। भागीरथी के तीर पर उगे हुए देवदारु के वृक्ष सेना के गजपतियों के लिये प्रयत्नसिद्ध बन्धनस्थान होगये, यानी गङ्गा तट पर लगे हुए देवदारु के वृक्ष, बिना प्रयत्न के, हाथियों के बांधने के खूटों का काम देने लगे।

हाथियोंके महावत हाथियोंके लिए पीपल, सल्लकी, कर्णिकार और गूलर के पत्ते कुल्हाडियों से काटते थे। पंक्तिबद्ध कतारों में खड़े हुए हज़ारों घोडे अपने ऊँचे ऊँचे कर्णपल्लवों से तोरण से बनाते हुए शोभायमान थे; अर्थात् हज़ारों घोड़े जो कतार बांधे खड़े थे, उनके ऊँचे ऊँचे कानों के देखने से तोरणों का धोखा होता था।

अश्वपाल या घोड़ों की खबरगिरी करने वाले सईस, बन्धुओं की तरह, मोंठ,मूँग, और चने वगैर, लेकर बड़ी तेजी से घोड़ोंके सामने रखते थे। महाराजकी छावनीमें विनिता नगरी की तरह क्षण भर में ही, चौक, तिराहे और दूकानों की पंक्तियाँ लग गई। गुप्त, बड़े बड़े और स्थूल तम्बुओं में सुखसे रहने वाले सेनाके लोग अपने पहलेके महलों की भी याद न करते थे। खेजड़ी, बेर और बबूलके काँटे दार वृक्षों को खाने वाले ऊँट सेनाके कण्टक शोधन का कमा करते से जान पड़ते थे। स्वामी के सामने सेवकों की तरह, खच्चर, जाह्नवी के रेतीले किनारे पर, अपनी चाल चलायमान करते,हुए लोटते थे। कोई लकड़ी लाता था, कोई नदी का जल लाता था, कोई दूब की भारी लाता था, कोई साग सब्जी और फल प्रभृति लाता था, कोई चूल्हा खोदता था, कोई शाल खाँडता था,कोई आग जलाता था, कोई भात राँधता था, कोई घरकी तरह एकान्त में निर्मल जल से स्नान करता था, कोई स्नान करके सुगन्धित धूपसे शरीर को धूपित करता था। कोई पहले पैदल प्यादों को खिलाकर, पीछे स्वयं इच्छा मत भोजन करता था। कोई स्त्रियों सहित अपने अङ्ग चन्दनादिका विलेपन करता था। उस चक्रवर्त्ती राजाकी छावनी में सारे जरूरी सामान लीलासे अनायासही मिल सकते थे, अतः कोई भी आदमी अपने तई कटक में आया हुआ न समझता था, अर्थात् वहाँ जरूरियातकी सभी चीज़ें बड़ी ही आसानी से मिल जाती थीं। अतः घरकी तरह ही आराम था,' इससे कोई यह न समझता था कि, हम घर छोड़ कर सेनाके साथ आये हैं।

मागधतीर्थ पर भरतचक्री का आना।

वहाँ एक दिन रात बिताकर—२४ घण्टे ठहर कर—सवेरे ही कूच किया गया। उस दिन भी एक योजन चार कोस चलने वाले चक्र के पीछे चक्रवर्त्ती भी उतनाही चले। इस तरह सदा चार कोस रोज चलने वाले चक्रवर्ती महाराज मागध तीर्थ में आ पहुँचे। वहाँ पूर्व समुद्र के किनारे महाराज ने ३६ कोसकी चौड़ाई और ४८ की लम्बाई में सेनाका पडाव किया, यानी वह सेना १,७२८ कोस या ३४५६ वर्गमील भूमिमें ठहरी। वर्द्धकिरत्न ने वहाँ सारी सेना के लिये आवास—स्थान बनाये। और धर्म रुपी हाथी की शालारूप पौपधशाला भी बनाई। जिस तरह सिंह पर्वत से उतरता है, उसी तरह महाराजा भरत उस पौषध शालामें अनुष्ठान करने की इच्छा से हाथी से उतरे। संयम रूपी साम्राज्य लक्ष्मी के सिंहासन—जैसा दूबका नूतन संथारा भी चक्रवर्त्ती ने वहाँ बिछाया। हृदय में मागध तीर्थ कुमार देवको धारण करके, अर्थसिद्धि का आदि द्वार रूप अष्टमभक्त, यानी अष्टमका तप किया। पीछे निर्मल वस्त्र पहन, फूलों की माला और विलेपन को त्याग कर, शस्त्र को छोडकर, पुण्यको पोषण करने के लिये, औषध के समान पौषधव्रत ग्रहण किया। अव्यय पद में जिस तरह सिद्धि निवास करती है, उसी तरह उस दूबके संथारे पर पौषधव्रती महाराज ने जागते हुए पर क्रिया रहित हो कर निवास किया। शरद् ऋतु के मेघोंमें जिस तरह सूर्य निकलता

है, उसी तरह या वैसी ही कान्तिके साथ महाराजा पौषधागार में से निकले। पीछे सर्व अर्थ को प्राप्त हुए राजाने स्नान करके बलिविधान किया, क्योंकि यथार्थ विधि को जानने वाले पुरुष विधि को नहीं भूलते।

मागध तीर्थ के अधिपति देवको साधन करने का यत्न।

इसके बाद पवन के जैसे वेग वाले और सिंहके समान धैर्य धारी घोड़ोंके रथमें उत्तम रथी भरतराय सवार हुए। मानों चलता हुआ महल हो, इस तरह उस रथके उपर ऊँची पताका वाला ध्वजस्तम्भ था। शस्त्रागार की तरह अनेक श्रेणियों से वह विभूषित था और मानो चारों दिशाओं की विजय लक्ष्मी के बुलाने के लिये रखी हों, ऐसी टन टन करने वाली चार घन्टियाँ उस रथके साथ बँधी हुई थीं। शीघ्र ही इन्द्र के सारथी मातलि की तरह राजा के भावको समझने वाले सारथी ने रास हाथोंमें लेकर घोड़े हाँके। महा हस्ती रूपी गिरिवाला, बड़े बड़े शकट रूपी मकर समुह वाला, चपल अश्व रूपी कल्लोल वाला, विचित्र शस्त्र रूपी भयङ्कर सर्पों वाला, पृथ्वी की उछलती हुई रज रूपी बेला वाला और रथों के निर्घोष रूपी गरजना वाला—दूसरे समुद्र के जैसा वह राजा समुद्र के किनारे पर आया। (यहाँ रूपक बाँधा है, महाराजा भरत की तुलना सुमुद्रसे की है, समुद्र में पर्वत होते हैं, महाराज के पास पर्वत समान हाथी थे, समुद्र में बड़े

बड़े ग्राह और मगर मच्छ होते हैं, राजाके पास मगर मच्छ जैसे शकट या गाडे थे, समुद्रमें कल्लोलें होती हैं, राजा के पास कल्लोलों के बजाय चपल घोडे थे, समुद्र में सर्प रहते हैं, उनके बजाय राजाके यहाँ विचित्र विचित्र अस्त्र शस्त्र थे। समुद्र में किनारा होता है, राजाकी सेनाके चलने से जो धूल उड़ती थी, वही वेला या किनारा था, समुद्र गर्जना करता है, महाराजा के रथ गर्जना करते थे—अत: महाराजा दूसरे समुद्र के समान थे, फिर मच्छों की आवाज़ों से जिसकी गर्जना बढ़ गई है, ऐसे समुद्रमें रथकी धुरी तक रथको प्रविष्ट किया। पीछे एक हाथ धनुषके मध्य भाग में रख, एक हाथ प्रत्यञ्चा के अन्त में रख, प्रत्यञ्चा को चढ़ाकर पञ्चमीके चन्द्रमाके आकार धनुष को बनाया, और अपने हाथसे धनुषकी प्रत्यञ्चा खींचकर, मानों धनुर्वेद का आदि ओंकार हो—इस तरह ऊँची आवाजसे टंकार किया। पीछे पाताल द्वार में से निकलते हुए नागके ज़ैसा अपने नामसे अङ्कित हुआ एक बाण तरकस में से निकाला। सिंहके कर्ण जैसी मुट्ठी से, पङ्खके अगले भागसे उसे पकड़ कर, शत्रुओं में वज्रदण्डके समान उस बाण को प्रत्यञ्चाके साथ जोड़ दिया! सोने के कर्णफूल रूप पद्म नाल की तुलना करने वाला वह सुवर्ण मय बाण चक्रवर्त्तीने कानों तक खींचा। महाराज के नख रत्नोंसे प्रसार पाती हुई किरणों से वह बाण मानों अपने सहोदरों से घिरा हो इस तरह शोभायमान था। खींचे हुए धनुष के अन्तिम भागमें लगा हुआ वह प्रदीप्त बाण, मौत के खुले हुए मुँह के भीतर चञ्चल जीभकी लीला को धारण करता था

यानी ऐसा जान पड़ता था गोया मौत मुँह खोलकर अपनी चञ्चल जीभ लपलपा रही हो। उस धनुषके घेरे में से दीखने वाले लोक-पाल महाराज भरत, मण्डलमें रहने वाले सूर्य की तरह, महा भय-ङ्कर मालूम होते थे। 'उस समय यह राजा मुझे स्थान से चलाय मान करेगा; अथवा मेरा निग्रह करेगा' ऐसा समझ कर लवण स-समुद्र क्षुभित होने लगा। फिर पृथ्वी पतिने बाहर, बीचमें, मुख में और पंख पर नाग कुमार, असुर कुमार और सुवर्ण कुमारादिक देवताओं से अधिष्ठित किये हुए दूतकी तरह आज्ञाकारी और शिक्षाअक्षर से भयङ्कर उस बाण को मागध तीर्थके अधिपति पर छोड़ा। उत्कट पङ्खोंके सन सनाहट से साकाशको गुञ्जाता हुआ वह बाण तत्काल गरूड़ के जैसे वेगसे चला। मेघसे जिस तरह बिजली, आकाश से जिस तरह उल्काग्नि, अग्नि से जिस तरह ति-नक, तपस्वीसे जिस तरह तेजोलेश्या, सूर्यकान्त मणि से जिस तरह अग्नि और इन्द्र की भुजासे छुटकर जिस तरह वज्र शोभा पाता। उसी तरह राजाके धनुषसे निकला हुआ वह बाण शोभा पाने लगा, क्षण भरमें बारह योजन—४८ कोस उलाँघ कर वह बाण, हृदयके भीतर शल्य के समान, मागधपति की सभा में जा गिरा। जिस तरह लाठी या दण्डे की चोट लगने से सर्प क्रुद्ध होता है, उसी तरह बाण के गिरने से मागधपति क्रुद्ध हुआ। भयङ्कर धनुष की तरह उसकी दोनों भौंऐं चढ़कर गोल होगईं, जलती हुई आग की समान उसके नेत्र लाल होगये। धोंकनी की तरह उसकी नाक फूलने लगी, ओर तक्षक सर्पका छोटा भाई हो, इस तरह वह

अधर दल-होठोंको फड़काने लगा। आकाश में धूमकेतुके समान ललाटमें रेखाओं को चढा, वाज़ीगर जिस तरह साँप को पकड़ता है, उसी तरह अपने दाहिने हाथसे आयुध को ग्रहण कर, बायें हाथ से, शत्रुके गाल की तरह, आसन पर ताड़न कर, विषज्वाला जैसी वाणी से वह वोला।

मागधतीर्थपति का कोप।

अप्रर्थित वस्तु की प्रार्थना करने वाले अविचारी विवेक शून्य और अपने तईं वीर मानने वाले किस कुबुद्धि पुरुप ने मेरी सभामें यह वाण फैंका है? ऐसा कौन पुरुप है, जो ऐरावत हाथी के दाँत तोड़ कर अपने कानों का गहना वनाना चाहता है? ऐसा कौन पुरुप है जो, गरुड के पङ्खों का मुकुट वनाना चाहता है? शेप नाग के मस्तकके ऊपर की मणिमाला को ग्रहण करने की कौन आशा करता है? कौन पुरुप है, जो सूर्यके घोड़ों को हरने की इच्छा करता है? ऐसे पुरुप के प्राणो को मैं उसी तरह हरण करता हूँ, जिस तरह गरुड़ सर्पके प्राणोंको हरण करता है।" यह कहता हुआ मागध पति वडे ज़ोर से उठकर खडा हो गया और विलमें से सर्प की तरह म्यानसे तलवार खींची और आकाश में धूमकेतु का भ्रम करने वाली तलवार को कपाने लगा। समुद्र वेलाके समान उसका सारा दुर्वार परिवार भी एक दम :कोपटोप सहित तत्काल खड़ा होगया। कोई अपने खड्गों से आकाशको मानो कृष्ण विद्युतमय करते हों, इस 'तरह करने लगे। कोई

अपने उज्ज्वल वसुनन्द नामक आयुध से मानों अनेक चन्द्र वाला हो—इस तरह करने लगा। कोई मृत्युकी दन्त—पंक्तिसे बनाए गये हों ऐसे अपने तीक्ष्ण भालोंको चागे और उछालने लगे। कोई अग्निकी जीभ जैसी फरसियों को फेरने लगे, कोई राहुके समान भयङ्कर पर्यन्त भाग वाले मुद्गर फेरने लगे। कोई वज्रकी उत्कट धार जैसे त्रिशूल को ग्रहण करने लगे; [और कोई यमराज के दण्ड जैसे प्रचण्ड दण्ड को ऊँचा करने लगे। कितने ही शत्रुको विस्फोट करने में कारण रूप अपने भुज दण्डों को अस्फोटन करने लगे। कितने ही मेघनाद जैसे उर्जित सिंहनाद करने लगे; कितने ही 'मारो, मारो' इस तरह कहने लगे, कितने ही 'पकड़ो, पकड़ो' इस तरह कहने लगे। कितने ही 'खड़े रहो, खड़े रहो' और कितने ही 'चलो चलो' इस तरह कहने लगे। मागध पतिका सारा परिवार इस तरह विचित्र कोपकी चेष्टा करने लगा। इसके वाद प्रधान—मन्त्रीने आकर बाण को अच्छी तरह देखा। इतने में उसे उसके ऊपर मानो दिव्य मन्त्राक्षर हों ऐसे उदार और वडे सारवाले नीचे के मुताविक अक्षर दीखे:—

"साक्षात् सुर असुर और नरों के ईश्वर ऋषभ स्वामी के पुत्र भरत चक्रवर्ती तुम्हे ऐसा आदेश करते हैं, कि यदि राज्य और जीवन की कामना हो तो हमें अपना सर्वस्व देकर हमारी सेवकाई करो॥"

इसका खुलासा यह है कि, उस तीर पर यह लिखा हुआ था

कि देवता, राक्षस और मनुष्यों के साक्षात् ईश्वर ऋषभ भगवान है। उन्हीं के पुत्र महाराज भरत चक्रवर्त्ती आपको यह हुक्म देते हैं, कि अगर आप अपने राज्य और जानमाल की ख़ैरियत चाहते हो, तो अपना सर्वस्व हमारी भेंट करके हमारी टहल बन्दगी करो। अगर आप इस आज्ञा को न मानोगे—हुक्म अदूली करोगे, तो आपका राज्य छीन लिया जायगा और आपका जीवन समाप्त कर दिया जायगा।

मागधतीर्थपतिका सेवक होना।

ऐसे अक्षरों को देखकर मंत्री ने अवधिज्ञान से सारा मामला समझ लिया और वह बाण सबको दिखाया और ऊँची आवाज़ से बोला—"अरे समस्त राजा लोगों! साहस करने वाले, मतलब की बात न समझने वाले, अपने मालिक का अनभल कराने वाले, और फिर अपनी जाती को स्वामिभक्त माननेवाले आप लोगों को धिक्कार है। इस भरत क्षेत्रमें पहले तीर्थङ्कर, श्री ऋषभ स्वामीके पुत्र महाज भरत पहले चक्रवर्त्ती हुए हैं। वे अपन लोगों से दण्ड माँगते हैं और इन्द्रके समान प्रचण्ड शासन वाले वे हम सबको अपनी आज्ञा या अधीनता में रखना चाहते हैं। कदाचित समुद्र सोखा जा सके, मेरु पर्वत उखड़ जाय, यमराज मारा जाय, पृथ्वी उलट जाय, वज्र पीसा जाय, और वड़वाग्नि बुझ जाय, पर पृथ्वी पर चक्रवर्ती की पराजय हो नहीं सकती, चक्रवर्ती को कोई जीत नहीं सकता, चक्रवर्ती अजेय है

अतएव हे बुद्धिमान राजा। इन ओछी बुद्धिवालों को मनाकर, और दण्ड तैयार करके, चक्रवर्ती को प्रणाम करनेके लिये कूच बोलदे। गन्धहस्ती को सूँघकर जिस तरह दूसरे हाथी शान्त हो जाते हैं—कान पूँछ नहीं हिलाते—उत्पात नहीं करते; उसी तरह मन्त्री की बातें सुनकर और बाण पर लिखे अक्षर देखकर मगधाधिपति शान्त हो गया—उसका क्रोध हवा हो गया। शेष में, वह बाण और भेंट को लेकर भरत चक्रवर्ती के पास आया और प्रणाम करके इस भाँति कहने लगाः—"पृथ्वीनाथ! कुमुद-खण्डको पूर्णमासी के चन्द्रमा की तरह, भाग्य योगसे मुझे आप के दर्शनमिले हैं। भगवान् ऋषभ स्वामी जिस तरह पहले तीर्थङ्कर होकर विजयी हुए हैं, उसी तरह आप भी पहले चक्रवर्ती होकर विजयी हों, जिस तरह ऐरावत हाथी का कोई प्रतिहस्ती नहीं, वायुके समान कोई बलवान नहीं और आकाश से बढ़कर कोई मानवाला नहीं, उसी तरह आप की बराबरी करने वाला भी कोई नहीं हो सकता। कान तक खींचे हुए आपके धनुष में से निकले हुए बाण को, इन्द्र-वज्रकी तरह, कौन सह सकता है? मुझ प्रमादी पर कृपा करके, आपने कर्त्तव्य जनाने के लिये, छड़ीदार की तरह, यह बाण फैंका, इसलिये हे नृपशिरोमणि! आज से मैं आप की आज्ञा को शिरोमणि की तरह, मस्तक पर धारण करूँगा। हे स्वामिन! मैं आपके आरोपित किये—स्थापित किये जयस्तम्भ की तरह, निष्कपट भक्ति से, इस मागधतीर्थ में रहूँगा। यह राज्य, यह सब परिवार, स्वयं मैं और अन्य

सब आपका ही है, अपने सेवक की तरह मुझे आज्ञा कीजिये।

इस तरह कहकर उसने वह वाण, मागध तीर्थ का जल, मुकट और दोनों कुण्डल अर्पण किये। भरतरायने उन सब चीज़ों को स्वीकार करके उसका सत्कार किया, क्योंकि महात्मा लोग सेवाके लिए नम्र हुए मनुष्यों पर कृपा ही करते हैं।—अर्थात् बड़े लोगों की शरणमें जो कोई नम्र हो कर, उनकी सेवकाई के लिये, आता है, उस पर वे दया किया करते हैं। इसके वाद इन्द्र जिस तरह अमरावती में जाता है, उसी तरह चक्रवर्ती रथ को वापस लौटाकर, उसी राह से छावनी में आये। रथ से उतर, स्नानकर, परिवार समेत उन्होंने अठ्ठम का पारणा किया। पीछे, आये हुए मागधाधीशका भी चक्रकी तरह, चक्रवर्तीने वहाँ वडी ऋद्धिके साथ अष्टान्हिक, उत्सव किया। मानो सूर्यके रथ में से ही निकल कर आया हो, इस तरह तेज से भी तीक्ष्ण चक्र अष्टाह्निका उत्सव के पीछे आकाश में चला और दक्खन दिशा में वरदाम तीर्थ की ओर रुख किया। प्रादि उपसर्ग जिस तरह धातु के पीछे जाते है। उसी तरह चक्रवर्ती भी उसके पीछे पीछे चलने लगे।

भरत चक्रि का वरदाम तीर्थ की ओर प्रयाण।

वरदाम पति का कोप और अधिन होना।

सदा योजन मात्रप्रयाण से चलते हुए—नित्य चार कोस

की मञ्ज़िल तय करते हुए ; अनुक्रम से जैसे राजहंस मान-सरोवर पहुँच जाता है; उसी तरह चक्रवर्ती दक्खन-समुद्रके नज़दीक आ पहुँचे। इलायची, लौंग, चिरौंजी और कंकोल के वृक्षों की जहाँ वहुतायत या इफ़रात है, उसी दक्षिण-सागरके निकट चक्रवर्ती ने अपनी सेना का निवास कराया, महाराजकी आज्ञा से, पहले ही की तरह, वर्द्धकिरत्नने-सैन्यके निवास-गृह और पौषधशालाकी वहाँ रचनाकी। उस वरदान तीर्थ के देवता को हृदय में धारण करके, महाराज ने अट्ठमका तप किया और पौषधशाला में पौषधव्रत ग्रहण किया। पौषध पूर्ण होने पर, पौषध घर में से निकल कर, धनुर्द्धारियों में अग्रसर, महाराजने कालपृष्ट रूप दण्ड ग्रहण किया और फिर सारे ही सोने से वनेहुए और करोड़ों रत्नों से जड़े हुए, जयलक्ष्मी के निवास-गृह उस रथ में सवार हुए। अनु—कूल पवन से चपल—हिलती हुई ध्वजा-पताकाओं से आकाश मण्डल को भूषित करता हुआ वह रथ, नाव की तरह समुद्र में जाने लगा। रथको उसकी नाभि या धूरी तक समुद्र में ले जाकर, आगे वैठे हुए सारथि ने घोड़े रोके। रोकने से रथ खड़ा हुआ; फिर आचार्य जिस तरह शिष्य या चेले को नमाते हैं, उसी तरह पृथ्वीपति ने धनुष को नमा कर प्रत्यंचा चढ़ाई, और संग्रामरूपी नाटक के आरम्भ में नान्दी जैसा, और कालके आव्हान में मंत्र—जैसा टंकार किया। फिर ललाट पर किए हुए तिलक की शोभा को चुरानेवाला वाण तरकश से निकाल कर धनुष पर चढ़ाया। चक्ररूप किये हुए धनुष के मध्य भाग में धुरे का भ्रम

करने वाले उस बाण को महाराज ने कान तक खींचा। कान तक आया हुआ बाण—"मैं क्या करूँ ?" इस तरह प्रार्थना करता हुआ सा दिखाई देता था। चक्रवर्ती ने उसे वरदामपति की ओर छोड़ा। आकाश में प्रकाश करने वाले उस बाण को पर्वत, वज्र, सर्पने गरुड़ और समुद्र दूसरा बड़वानल समझकर भय से भीत हो गये, अर्थात् पर्वतों ने उसे वज्र समझा, सर्पों ने उसे गरुड़ समझा और समुद्र ने दूसरा बड़वानल समझा और इस कारण डर गये। बारह योजन या छियानवे मील उलांघ कर, वह बाण, उल्कापतन की तरह, वरदामपति की सभा में गिरा। शत्रुके भेजे हुए घात करने वाले मनुष्य की तरह, उस बाणको गिरा हुआ देख, वरदामपति कुपित हुआ और तूफ़ानी समुद्रकी तरह, वह उद्भ्रान्त भ्रकुटियों में बल डालकर, उत्कठ वाणी से नीचे लिखे अनुसार बोलाः—

"पाँव से छूकर आज इस केशरी सिंहको किसने जगाया ? आज मृत्युने किस का पन्ना खोला ? कोढ़ीकी तरह अपने जीवन में आज किसे वैराग्य हुआ कि जिसने अपने साहस से मेरी सभा में यह बाण फेंका ? इस बाण के फैंकनेवाले को इस बाण से ही मारूँगा।" यह कहकर, और क्रोध में भरकर उसने वह बाण उठाया। मागधपति की तरह, वरदामपतिने भी बाण के ऊपर पूर्वोक्त अक्षर देखे। जिस तरह नागदमनी औषधियों से नाग शान्त होता है, उसी तरह उन अक्षरों को पढ़कर वह तत्काल शान्त हो गया, और कहने लगाः—"अहो ! मैंडक जिस तरह

काले साँपको थप्पड़ मारनेको तैयार हो, मैढ़ा जिस तरह अपने सींगों से हाथी को मारने की इच्छा करे और हाथी अपने दाँतोंसे पर्वत को ढाहने की चेष्टा करें, ठीक उसी तरह मन्दवुद्धि से मैं ने भी भरत चक्रवर्ती से युद्ध करने की इच्छा की !" ख़ैर, अभी तक कुछ भी नहीं विगड़ा, यह निश्चय करके उसने अपने नौकरों को भेंटका सामान जुटाने की आज्ञा दी। फिर वाण और अपूर्व्व भेंटों को लेकर, वह उसी तरह चक्रवर्ती के पास जानेको तैयार, हुआ, जिस तरह इन्द्र वृषभध्वज के पास जाता है चक्रवर्ती के पास पहुँचकर और नमस्कार करके वह यों वोलाः—हे पृथ्वी के इन्द्र ! इनकी तरह, आपके वाण द्वारा वुलाये जाने पर मैं आज यहाँ हाज़िर हुआ हूँ। आपके स्वयं पधारने पर भी, मैं सामने नहीं आया, मेरी मूर्खता के इस दोष को आप क्षमाकरें ! क्योंकि अज्ञता दोषको आच्छादन करती है. अर्थात् मूर्खता दोष को ढकती है। हे स्वामिन ! थका हुआ आदमी जिस तरह आश्रयस्थल-रहने का स्थान पाता है और प्यासोंको जिस तरह जलपूर्ण सरो-वर मिलता है ; उसी तरह मुझ स्वामी रहित को आज आपके समान स्वामी मिला है। हे पृथ्वीनाथ ! समुद्र में जिस तरह वेलंधर पर्वत होते हैं, उसी तरह आज से मैं आपका नियता किया हुआ, आपकी मर्य्यादा में रहूँगा।' यह कहकर भक्तिभावसे पूर्ण वरदामपति ने पहले की धरोहर रक्खी हो, इस तरह वह वाण वापस सौंपा। सूर्यकी कान्ति से गुथे हुए के जैसा और अपनी कान्ति से दिशाओं को प्रकाशित करने वाला एक रत्नमय

कटिसूत्र या कमर में पहनने की कर्द्धनी तथा यश के समूह—जैसी बहुत दिनों की सञ्चित की हुई मोतियों की राशि उसने महाराज भरतको भेंट की इनके सिवा अपनी उज्ज्वल कान्ति से प्रकाश-मान रत्नाकर-सागर के सर्व्वस्व जैसा रत्नों का ढेर भी महाराज को अर्पण किया। ये सब स्वीकार करके महाराज ने वरदामपति को अनुग्रहीत किया और उसे वहाँ अपने कीर्त्तिकर की तरह मुक़र्रर किया। इसके बाद वरदामपतिको कृपापूर्व्वक बुलाकर विदा किया और विजयी महाराज स्वय अपने कटक में पधारे।

रथ में से उतर कर राजचन्द्रने परिजनोंके साथ अष्टम भक्त का पारणा किया और इसके बाद वरदाम पतिका अष्टान्हिक उत्सव किया। महात्मा लोग आत्मीय जनों को लोक में महत्व प्रदान करने के लिये मान देते हैं।

प्रभास तीर्थ की ओर प्रयाण।

प्रभास पति का अधिन होना।

इसके पीछे, पराक्रममें मानो दूसरा इन्द्र हो, इस तरह चक्र-वर्त्ती चक्रके पीछे-पीछे, पश्चिम दिशामें प्रभास तीर्थकी ओर चले। सेनाके चलने से उड़ी हुई धूल से पृथ्वी और आकाश के बीचले भाग को भरते हुए, कितने ही दिनों में वे, पश्चिम समुद्रके ऊपर आ पहुँचे। सुपारी, ताम्बूली और नारियलके वन से व्याप्त पश्चिम स-मुद्रके किनारे पर उन्होंने अपनी सेनाका पड़ाव किया। वहाँ प्रभा-सपतिके उद्देश से अष्टमभक्त व्रत किया और पहलेकी तरह पौषध

शालामें पौषध लेकर बैठे। पौषधके अन्तमें मानो दूसरे वरुण हों, इस तरह चक्रवर्तीने रथमें बैठ कर सागरमें प्रवेश किया। रथको पहियेकी धूरी तक पानी में ले जाकर उन्होंने अपने धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाई, इसके बाद, जय-लक्ष्मी की क्रीड़ा करनेकी वीणारूप धनुर्यष्टिकी तंत्री-जैसी प्रत्यचाको आपने हाथ से शब्दायमान् कर, टंकार देकर, मानो समुद्रको छड़ी—दण्ड देना हो, समुद्रको वेत्राघातकी सज़ा देनी हो,समुद्रके बेत लगवाने हों इस तरह तरकशमें से तीर निकाल कर, आसन पर अतिथि को बैठानेकी तरह उसे धनुष-आसन पर बिठाया। सूर्यबिम्बमें से खींची हुई किरण के जैसे उस बाणको उन्होंने प्रभास देवकी ओर चलाया। वायु-वेग से, बारह योजन—छियानवे मील समुद्रको पार करके,आकाश में चाँदना करता हुआ वह तीर प्रभासपतिके सभास्थानमें जा पड़ा। बाणको देखते ही प्रभासेश्वर कुपित हुए; परन्तु उस पर लिखे हुए अक्षर देखकर, अन्य रसको प्रकट करने वाले नटकी तरह, तत्काल शान्त हो गया। फिर बाण और भेंटकी दूसरी चीज़ें लेकर प्रभासपति चक्रवर्त्तीके पास आये और इस प्रकार कहने लगे:—
"हे देव! आप स्वामीके द्वारा प्रकाशित हुआ, मैं आज ही सच्चा प्रभास हुआ हूँ। क्योंकि कमल सूरजकी किरणों से ही कमल—पानीको सुशोभित करने वाला होता है। हे प्रभो! मैं पश्चिममें सामन्त राजाकी तरह रह कर, सदा, पृथ्वीके शासक आपकी आज्ञा पालन करूँगा यह कह कर महाराजका फेंका हुआ बाण, युद्धमें फेंके हुए बाणको उठाकर लाने वाले सेवककी तरह भरते-

श्वरको अर्पण किया उनके साथही अपने मूर्तिमान तेज-जैसे कड़े कौंधनी, मुकुट, हार तथा अन्यान्य द्रव्य चक्रवर्ती को भेट किये। उसे आश्वासन देने के लिए—राजी करने के लिए—उसकी दिलशिकनीका ख़याल करके महाराजने भेटके समस्त द्रव्य ले लिये। क्योंकि भेट लेना स्वामीकी कृपा का पहला चिह्न है। क्यारीमें जिस तरह वृक्षको स्थापन करते हैं, उसी तरह उसे वहाँ स्थापन करके—मुकर्रर करके शत्रुनाशन महाराज अपने कटकमे पधारे। कल्पवृक्षके समान गृहिरत्न द्वारा लाये गये दिव्य भोजनोंसे उन्होंने अष्टमभक्त का पारणा किया और प्रभासदेवका अष्टान्हिका उत्सव किया; क्योंकि पहली बार तो सामन्त जैसे राजाकीभी सत्कृति करनी उचित है।

सिन्धु देवि प्रभृति को साधना।

जिस तरह दीपकके पीछे पीछे प्रकाश चलता है, उसी तरह चक्रके पीछे पीछे चलने वाले चक्रवर्त्ती महाराज, समुद्रके दक्खन किनारेके नज़दीक, सिन्धनदीके किनारे पर आ पहुँचे। उसके किनारे किनारे पूर्वाभिमुख चलकर सिन्धुदेवी के सदनके समीप उन्होंने पड़ाव डाला। वहाँ अपने मनमें सिन्धुदेवी का स्मरण कर उन्होंने अष्टमतप किया। इससे, वायुसे ताड़ित लहरोंकी तरह सिन्धुदेवी का आसन चलायमान हुआ। अवधिज्ञान से चक्रवर्त्ती को आये हुए समझ, उत्तमोत्तम दिव्य वस्तुएँ भेट में देने के लिये लेकर, उनके सम्मानार्थ वह

उनके सामने आई। देवीने आकाशमें ठहरकर "जय जय" कहते हुए आशीर्वाद पूर्वक कहा—"हे चक्रवर्त्ती! मैं यहाँ आपकी टहलुवी होकर रहती हूँ आप आज्ञा दें वही काम करूँ।" यह कहकर लक्ष्मी-देवी के सर्वस्व और निधानकी सन्तति जैसे रत्नोंसे भरे हुए १००८ कुम्भ या घड़े, कीर्त्ति और जय लक्ष्मीके एक साथ बैठनेको बने हों ऐसे रत्नमय दो भद्रासन, शेष नागके मस्तक पर रहने वाली मणियोंसे बने हों ऐसे प्रदीप्त रत्नमय बाहुरक्षक—बाजूबन्द, बीच में सूर्यबिम्बकी कान्ति रक्खी हो ऐसे कड़े, और मुट्ठीमें समा जाने वाले सुकोमल—नर्मानर्म दिव्यवस्त्र उसने चक्रवर्त्तीको भेंट किये। सिन्धुराजकी तरह उन्होंने वे सब चीजें स्वीकार कर लीं। और मधुर आलाप—मीठी मीठी बातोंसे देवीको प्रसन्न करके उन्होंने उसे विदा किया। पीछे पूर्णमासीके चन्द्रमा जैसे सुवर्णके-पात्रमें अष्टमभक्त का पारणा किया और देवीका अष्टान्हिका उत्सव करके चक्रकी बताई हुई राहसे आगे चले।

उत्तर—पूर्व दिशाके मध्य ईशानकोण—की तरफ चलते हुए, अनुक्रमसे दोनों भरतार्द्धके बीचों-बीचमें सीमा रूप से स्थित, वैताढ्य पर्वतके पास आये। उस पर्वतके दक्खन भागके ऊपर मानो कोई लम्बा चौड़ा द्वीप हो, ऐसा पड़ाव महाराजने डाला। वहीं ठहरकर महाराजने अष्टम तप किया, इतनेमें ही वैताढ्यादि कुमार का आसन काँपा। उसने अवधि ज्ञानसे जान लिया कि, भरत- क्षेत्रमें यह पहला चक्रवर्त्ती हुआ है। इसके बाद उसने चक्र-वर्त्तीके पास आकर, आकाशमें ही ठहर कर कहा—"हे

प्रभो! आपको जय हो! मैं आपका सेवक हूँ। मुझे जो आज्ञा देनी हो सो दीजिये। मैं आपकी आज्ञापालन या हुक्म की तामील करने के लिए तैयार हूँ।' यह कहकर बड़ा भारी खजाना खोल दिया हो, इस तरह मूल्यवान—कीमती कीमती रत्न, रत्न और जवाहिरों के गहने-जेवर दिव्य वस्त्र—सुन्दर सुन्दर कपड़े और प्रताप सम्पत्तिका क्रीड़ा स्थान जैसा भद्रासन उसने महाराज को भेंट किया। पृथ्वीपतिने उसकी दी हुई सारी चीजें लेली, क्योंकि निर्लोभ स्वामी भी सेवकों पर अनुग्रह करने के लिये उनकी भेंट स्वीकार कर लेते हैं। इसके बाद महाराज ने उसे इज्जतके साथ बुलाकर, गौरवके साथ विदा किया। महा पुरुष अपने आश्रय में रहे हुए साधारण पुरुषों की भी अवज्ञा नहीं करते। अष्टम भक्त का पारणा करके, वहीं वैताल देव का अष्टान्हिका उत्सव किया।

वहाँ से चक्ररत्न तमिस्रा गुहा की तरफ चला। राजा भी पदन्वेषी या खोजों के पीछे पीछे चलनेवाले की तरह चक्रके पीछे पीछे चले। अनुक्रम से, तमिस्रा के निकट, मानो विद्याधरों के नगर वैताढ्य पर्वत से नीचे उतरते हों इस तरह अपनी सेनाका पड़ाव कराया। उस गुफा के स्वामी कृतमालदेवको मन में याद करके, उन्होंने अष्टम तप किया। इस से देवका आसन चलाय मान हुआ। अवधिज्ञान से चक्रवर्ति को आया हुआ समझ, बहुत दिनोंके बाद आये हुए गुरु की तरह, चक्रवर्ती रूपी अतिथि की पूजा-अर्चना करनेके लिये वह वहाँ आया और कहने लगा—

" हे स्वामिन्! इस तमिस्रा गुफाके द्वार में, मैं आपके द्वारपाल की तरह रहता हूँ। यह कह कर उसने भूपति की सेवा अंगीकार की। स्त्री रत्न के लायक़ अनुत्तम सर्वश्रेष्ठ चौदह तिलक और दिव्य आभरण समूह उसने महाराज के भेंट किये। उसके साथ ही, मानो महाराज के लिएही पहले से रख छोड़ी हों ऐसी, उनके योग्य मालाएँ और दिव्य वस्त्र भी अर्पण किये। चक्रवर्ती ने उन सब को स्वीकार कर लिया, क्योंकि कृतार्थ हुए राजा भी दिग्विजय की लक्ष्मी के चिह्नरूप ऐसे दिशादण्ड को नहीं छोड़ते। अध्ययन के बाद उपाध्याय जिस तरह शिष्यको आज्ञा देता है—सबक़ पढ़लेने बाद उस्ताद जिस तरह शागिर्द को छुट्टी देता है; उसी तरह भरतेश्वर ने उस से अच्छी-अच्छी मीठी-मीठी बातें करके उसे विदा किया। इसके बाद मानो अलग किये हुए अपने अंश हों और ज़मीन पर पात्र रखकर सदा साथ जीमने वाले राज कुमारों के साथ उन्होंने पारणा किया। फिर कृतमालदेव का अष्टाह्निका उत्सव किया। नम्रता से वश किये हुए स्वामी सेवक के लिये क्या नहीं करते?

दक्षिण सिंधु निष्कूट साधने के लिये सेनानी को भेजना।

दूसरे दिन, इन्द्र जिस तरह नैगमेषी देवता को आज्ञा देता है; उसी तरह महाराज ने सुषेण सेनापति को बुलाकर आज्ञा दी—'तुम चर्मरत्न से सिन्धु नदी को पार करके, सिन्धु, समुद्र और

वैताढ्य पर्वत के बीच में रहने वाले दक्षिणसिन्धु निष्कूट को साधो और बदरी वन की तरह वहाँ रहने वाले मलेच्छों को आयुध वृष्टि से ताड़नकर, चर्मरत्नके सर्वस्व फलको प्राप्त करो, अर्थात् म्लेच्छों को अपने अधीन करो। वहीं पैदा हुएके समान, जल स्थल के ऊँचे नीचे सब मार्गों और किलों तथा दुर्गम स्थानों में जाने को राहों के जाननेवाले, म्लेच्छ-भाषा में निपुण, पराक्रम में सिंह, तेज में सूर्य, बुद्धि और गुण में बृहस्पति के समान, सब लक्षणों में पूर्ण सुषेण सेनापतिने चक्रवर्ती की आज्ञा को शिरोधार्य्य की। फौरन ही स्वामी को प्रणाम कर वह अपने डेरे में आया। अपने प्रतिबिम्ब-समान सामन्त राजाओं को कूच के लिये तैयार होने की आज्ञा दी फिर स्वयं स्नानकर, बलिदे, पर्वतसमान ऊंचे गजरत्न पर सवार हुआ; उस समय उसने क़ीमती कीमती थोड़से जेवर भी पहन लिये। कवच पहना, प्रायश्चित्त और कौतुक मङ्गल किया। कंठ में जयलक्ष्मी को आलिंगन करने के लिये अपनी भुजलता डाली हो, इस तरह दिव्य हार पहना। प्रधान हाथी की तरह वह पद से सुशोभित था। मूर्त्तिमान शक्ति की तरह एक छुरी उसकी कमर में रक्खी हुई थी। पीठ पर सरल आकृतिवाले सोने के दो तरकश थे, जो पीठ पीछे भी युद्ध करने के लिये दो वैक्रिय हाथ-जैसे दीखते थे। गणनायक, दण्डनायक, सेठ, सार्थवह, सन्धिपाल और नौकर-चाकरों से वह युवराज की तरह घिरा हुआ था। मानो आसन ही के साथ पैदा हुआ हो, इस तरह उसका अग्रासन

निश्चल था। सफेद छत्र और चँवर से सुशोभित देवतुल्य उस सेनापति ने अपने पाँवके अँगूठे से हाथी को चलाया। चक्रवर्ती की आधी सेनाके साथ वह सिन्धु नदीके किनारे पर पहुँचा। सेनाके चलने से उड़नेवाली धूल से मानो पुल बाँधता हो, ऐसी स्थिति उसने करदी। जो बारह योजन—छियानवे मील तक बढ़ सकता था, जिस पर सवेरा का बोया हुआ अनाज सन्ध्या समय उग सकता था, जो नदी, द्रह तथा समुद्रके पार उतार सकता था, उस चर्मरत्न को सेनापति ने अपने हाथ से छूआ। स्वाभाविक प्रभाव से उसके दोनों सिरे किनारे तक बढ़कर चले गये। तब सेनापति ने उसे तेल की तरह पान पर डाला। उस चर्म रत्न के ऊपर होकर: वह पैदल सेना सहित नदीके परले किनारे पर जा उतरा।

दक्षिण सिंधु निष्कूट की साधना।

सिन्धके समस्त दक्षिण निष्कूट को साधने की इच्छा से वह प्रलय काल के समुद्र की तरह फैल गया। धनुष के निर्घोष शब्द से, दारुण और युद्ध में कौतुक वाले उस सेनापति ने सिंह की तरह, सिहल लोगो को लीलामात्र से पराजित कर दिया। वर्बर लोगों को मोल ख़रीदे हुए किङ्करों—क्रीत दासों या गुलामों की तरह अपने अधीन किया और टंकणोंको घोडों के समान राज चिह्न से उसने अङ्कित किया। रत्न और माणिकों से भरे हुए जलहीन रत्नाकर सागर जेसे यवन द्वीपको उस नर केशरीने लीला

मात्र से जीत लिया उसने कालमुख जातिके म्लेच्छों को जीत लिया इससे वे भोजन न करने पर भी मुँहमें पाँच ऊंगलियाँ डालने लगे। उसके फैलने से जोनक नामके म्लेच्छ लोग वायुसे वृक्षके पल्लवों की तरह पराड्मुख होगये। बाज़ीगर या सपेरा जिस तरह सब तरह के साँपों को जीत लेता है, उसी तरह उसने वैताढ्य पर्वत के पास रहने वाली सब जातियाँ उसने जीत लीं। अपने प्रौढ़ प्रताप को वेरोक टोक फैलाने वाले उस सेनापति ने वहाँसे आगे चलकर, जिस तरह सूर्य सारे आकाश को आक्रान्त कर लेता है, उसी तरह उसने कच्छ देश की सारी पृथ्वी आक्रान्त करली। जिस तरह सिंह सारे वनको दबा लेता है; उसी तरह उसने सारे निष्कूट को दबा कर, कच्छ देश की समतल भूमिनें आनन्दसे डेरा डाला। जिस तरह स्त्रियाँ पतिके पास आती हैं, उसी तरह म्लेच्छ देशके राजा लोग भक्ति से भेंट ले लेकर, सेनापति के पास आने लगे। किसी ने सुवर्ण गिरिके शिखर या मेरूपर्वत की चोटी जितना सुवर्ण और रत्नराशि दी। किसीने चलते फिरते विन्ध्याचल जैसे हाथी दिये। किसीने सूरज के घोडोको उल्लघन करने वाले—चाल और तेजीमें परास्त करने वाले घोड़े दिये और किसीने अञ्जन से रचे हुए देवरथ जैसे रथ दिये। इनके सिवा, और भी सार रुप पदार्थ उन्हों ने दिये। क्योंकि पहाड़ों में से नदियों द्वारा खींचे हुए रत्न भी अनुक्रम से शेषमें, रत्नाकर मे ही आते हैं। इस तरह भेटें देकर उन्होंने सेनापति स कहा—"आज से हम लोग तुम्हारी आज्ञा पालन करने वाले—गुलाम—

होकर, आपके नौकरों की तरह, अपने अपने देशोंमें रहेंगे।" सेनापति ने उनका यथोचित सत्कार करके उन्हें विदा किया और आप पहले की तरह सुखसे सिन्धु नदीके पार वापस आगया। मानो कीर्त्ति रूपी वल्लिका दोहद हो इस तरह म्लेच्छों के पास से लाया हुआ सारा दण्ड उसने चक्रवर्त्ती के सामने रख दिया। कृतार्थ चक्रवर्त्तीने उसे अनुग्रह पूर्वक सत्कार करके विदा किया। वह भी खुशी खुशी अपने डेरे पर आया।

तमिस्रा गुफा को खोलना।

यहाँ भी भरतराज अयोध्याकी तरह सुख से रहते थे; क्योंकि सिंह जहाँ जाता है वहीं उसका स्थान हो जाता है। एक रोज़ महाराजने सेनापतिको बुलाकर आदेश किया—तमिस्रा गुफाके द्वार खोलो। नरपतिको उस आज्ञाको मालाकी तरह सिर पर चढ़ाकर सेनापति शीघ्रही गुफाद्वारके पास आ रहा। तमिस्राके अधिष्ठायक देव कृतमालको मनमें याद करके उसने अष्टम तप किया; क्योंकि सारी सिद्धियाँ तपोमूल हैं; यानो सिद्धियों की जड तप है। इसके बाद सेनापति स्नान कर श्वेतवस्त्ररूपी पंख को धारण कर, जिस तरह सरोवरमें से हंस निकलता है उस तरह स्नान भुवनसे निकले। और सोने के लीला-कमलकी तरह, सोनेकी धूपदानी हाथमें ले, तमिस्राके द्वारके पास आये। वहाँके किवाड़ देख, उन्होंने पहले प्रणाम किया क्योंकि शक्तिमान् महापुरुष पहले सामभेदका ही

प्रयोग करने हैं। वहाँ वैताढ्य पर्वत पर सञ्चार करने वाली विद्याधरोंकी स्त्रियोंको स्तम्भन करने या रोकने में औषधिरूप महर्द्धिक अष्टान्हिका उत्सव किया, और मान्त्रिक जिस तरह मण्डल बनाता है, उस तरह सेनापतिने अखण्ड तन्दुलों या चांवलों से वहाँ अष्टमंगलिक बनाये। फिर इन्द्र-वज्रके समान-शत्रुओं का नाश करने वाला चक्रवर्त्तीका दण्डरत्न अपने हाथमें लिया और किवाड़ों पर चोट मारनेकी इच्छासे वह सात-आठ क़दम पीछे हटा; क्योंकि हाथी भी प्रहार करने या चोट करनेकी इच्छा से पीछे हटता है। पीछे सेनापतिने दण्डसे किवाड़ पर तीन चोटें मारी और बाजेकी तरह उस गुफ़ाको बड़े जोर से गुंजाई। तत्कालही ख़ूब ज़ोरसे मींची हुई आँखोंकी तरह, वैताढ्य पर्वतके ख़ूब ज़ोरसे बन्ध किये हुए वज्र निर्म्मित किवाड़ खुल गये। दण्डेकी चोटोंसे खुलने वाले ये किवाड़ ज़ोर ज़ोर से चीख़ते हों, इस तरह तड़ तड़ शब्द करने लगे। उत्तर दिशाके भरतखण्डको जय करनेमें प्रस्थान मंगल रूप उन किवाड़ोंके खुलनेका वृत्तान्त चक्रवर्त्तीको जनाया। इस ख़बरके मिलते ही, गजरत्न पर, सवार होकर, प्रौढ़ पराक्रम वाले महाराजने चन्द्रकी तरह तमिस्रा गुफामें प्रवेश किया।

प्रवेश करते समय, नरपतिने चार अंगुल प्रमाणका सूर्यके समान प्रकाशमान् मणिरत्न ग्रहण किया। वह एक हज़ार यक्षों से अधिष्ठित था। यदि वह शिखाबन्धके समान मस्तक पर धारण किया जाता है, चोटीमें बाँधा जाता है, तो तिर्यञ्च देव और

मनुष्य-सम्बन्धी उपद्रव नहीं होते उस रत्नके प्रभावसे सारे दुःख अन्धकार की तरह नाश हो जाते हैं तथा शास्त्रके घावकी तरह रोग भी निवारण हो जाते हैं। सोने के घड़े पर जिस तरह सोनेका ढक्कन रखते हैं, उसी तरह रिपुनाशक राजा ने हाथीके दाहिने कुम्भस्थल पर उस रत्नको रक्खा। पीछे-पीछे चलनेवाली चतुरंगिणी सहित चक्रको अनुसरण करने वाले, केशरी सिंहके समान गुफामें प्रवेश करने वाले नरकेशरी चक्रवर्त्तीने चार अंगुल प्रमाणका दूसरा काकिंणी रत्न भी ग्रहण किया। वह रत्न सूर्य, चन्द्र और अग्नि के जैसा कान्तिमान् था, आकाशमें अधिकारणी के वरावर था हजार वृक्षोंसे अधिष्ठित था। ये वज़नमें आठ तोले था। छ पत्ते और वारह कोने वाला तथा समतल था: और मान उन्मान एवं प्रमाणसे युक्त था। उसमें आठ कणिकायें थी और वह वारह योजन, यानी छियानवे मील तकके अन्धकार को नाश कर सकता था। गुफाके दोनों ओर, एक योजन या चार चार कोसके फासले पर, उस काकिंणी रत्नसे, अनुक्रमसे गो-मुत्रिके सदृश मण्डल लिखते हुए चक्रवर्त्ती चलने लगे। प्रत्येक मण्डल पाँच सौ धनुषके विस्तार वाला एक योजन—चार कोस तक प्रकाश करने वाला था। वे सब गिन्तीमें उनचास हुए। जहाँ तक महीतल—पृथ्वी पर कल्याणवन्त चक्रवर्त्ती जीते हैं, वहाँतक गुफाके द्वार खुले रहते हैं।

तमीस्रा गुफामें प्रवेश।

चक्ररत्नके पीछे-पीछे चलने वाले चक्रवर्त्तीके पीछे चलनेवाली

उनकी सेना, मण्डलोंके प्रकाशसे, अस्खलिततासे—बेखटके चलने लगी। संचार करने वाली चक्रवर्त्तीकी सेना से वह गुफा असुरादिककी सैन्यसे रत्नप्रभाके मध्य भाग जैसी शोभने लगी। मथनदण्ड या रईसे मथनीमें जैसी आवाज होती हैं, उस संचार करने वाली सेना से वह गुफा उद्दाम घोष—घोर शब्द करने लगी अर्थात् सेनाके चलने से गुफामें घोर रव होने लगा।

जिस गुफामें किसीने भी सञ्चार नहीं किया था, उस गुफाके मार्गमें रथोंके कारण लीकें बन गईं और घोडोंकी टापोंसे कंकर उड गये, अब वह नगर मार्गके जैसा हो गया सेनाके लोगोंके चलने से वह गुफा लोकनालिका या पगडण्डीके समान टेढी तिरछी होगई। चलते-चलते तमिस्रा गुफाके मध्य भागमें—अघो वस्त्रके ऊपर रहने वाली कटिमेखला या कर्द्धनीके समान—उन्मग्ना या निमग्ना नामकी जो नदियोंके निकट चक्रवर्ती जा पहुँचे। वे नदियाँ ऐसी दीखती थीं गोया दक्खन और उत्तर भरतार्द्धसे आने वाले लोगोंके लिये, वेताढय पर्वतने नदियोंके बहाने से दो आज्ञा रेखायें खींच रक्खी हों। उनमें से उन्मग्ना नदीमें पत्थरकी शिला तूम्बीकी तरह तैरती है, और निमग्नामें तूम्बी भी पत्थरकी शिलाकी तरह डूब जाती है। वे दोनों नदियाँ तमिस्रा गुफाकी पूर्व भित्तिमें से निकलती हैं और पश्चिम भित्ति के बीचमें होकर, सिन्धु नदीमें मिलती हैं। उन नदियोंके ऊपर मानो वैताढ्यकुमार देवकी विशाल एकांत शय्या हो, ऐसी एक निर्दोष पुलिया बना दी। वह पुलिया वार्द्धकिरत्नने क्षण भरमें

तैयार कर दी, क्योंकि गुहाकार कल्पवृक्षको जितनी देर भी उसे नहीं लगती। उस पुलियाके ऊपर अच्छी तरहसे जोड़े हुए पत्थर इस तरहसे लगाये गये थे, जिससे सारी पुलिया और उपरकी राह एकही पत्थरसे बनी हुई, की तरह शोभती थी हाथके समान समतल और वज्रवत् मज़बूत होने के कारण से वह पुलिया और राह गुफाद्वारके दोनों किवाड़ोंसे बनाई हुई सी जान पड़ती थी। पदविधि या समासविधिकी तरह, समर्थ चक्रवर्त्ती सेना सहित उन दोनों दुस्तर नदियोंके पार उतर गये। सेनाके साथ चलने वाले महाराज, अनुक्रमसे, उत्तर दिशाके मुख जैसे. गुफाके उत्तर द्वारके पास आ पहुँचे। उसके दोनों किवाड़ मानों दक्खनी दरवाजेके किवाड़ोंका शब्द सुन कर भयभीत हो गये हो, इस तरह—आपसे आप खुल गये। वे किवाड़ खुलते वक्त "सर सर" शब्द करने लगे। उस "सर सर" शब्दसे ऐसा जान पड़ता था, मानो ये चक्रवर्त्तीकी सेनाको गमन करनेकी प्रेरण करते हों—आगे बढ़नेको कहते हों। गुफाकी दोनों ओर की दीवारोंसे वे दोनों किवाड़ इस तरह चिपट गये कि गोया पहले थे ही नहीं और दो भोगलों से दीखने लगे। पीछे सूर्य जिस तरह बादलों में से निकलता है, इस तरह पहले चक्रवर्त्तीके आगे-आगे चलने वाला चक्र गुफामें से निकला और पातालके छेदमें से जिस तरह बलिन्द्र निकलते हैं, उस तरह पीछे पृथ्वीपति भरत महाराज निकले। पीछे विन्ध्याचलकी गुफा की तरह, उस गुफामें से निःशंक होकर मौजके साथ चलते हुए गजेन्द्र निकले।

समुद्र में से निकलनेवाले सूर्यके घाडोंका अनुसरण करते हुए सुन्दर घोडे अच्छी चालोंसे चलते हुए निकले। धनाढ्य लोगोंके घरों मे से निकलते हों, इस प्रकार अपनी अपनी आवाजोंसे आकाशको गुंजाते हुए निकले। स्फटिक मणिके वीमले में से जिस तरह सर्प निकलता उस तरह वैताढ्य पर्वतकी गुफा में से बलवान पैदल भी निकले।

तामिस्रा गुफा से बाहर निकलना।

इस प्रकार पचास योजन अथवा चार सौ मील लम्बी गुफा को पार करके, महाराज भरतेशने उत्तर भरतार्द्धको विजय करने के लिये उत्तर खण्डमें प्रवेश किया। उस खण्डमे "अपात" नामक भील रहते थे। वे पृथ्वी पर रहने वाले दानवों जैसे धनाढ्य, पराक्रमी और महातेजस्वी थे। अनेक बड़ी बड़ी हवेलियों, शयन, आसन, और वाहन एव बहुतसा सोना चाँदी होने के कारण- कुबेरके गोती भाइयोंसे दीखते थे। वे बहु कुटुम्बी और बहुतसे दास परिवार वाले थे और देवताओंके बगीचोंके वृक्षोंकी तरह कोई भी उनका पराभव कर न सकता था। बड़े गाड़े के भारको खींचने वाले बड़े बड़े बैलोंकी तरह, वे अनेक युद्धोंमें अपनी शक्ति और पराक्रम प्रकाशित करते थे। निरन्तर जब यमराजके समान भरतपतिने उन पर बलात्कार से—जबर्दस्ती चढ़ाई की, तब अनिष्ट सूचक बहुतसे उत्पात होने लगे। चलती हुई चक्रवर्त्तीकी सेनाके भार से मानो पीड़ित हुई हो, इस

तरह गृहउद्यानको कंपाती हुई पृथ्वी धूजने लगी। चक्रवर्त्तीके दिगन्त-व्यापी प्रौढ़ प्रतापसे हुआ हो, इस तरह दिशाओंमें दावानल जैसा दाह होने लगा। उडती हुई वहुनसी धूलसे दिशाएँ पुष्पिणी-रजश्वला स्त्री की तरह अनालोकपात्र—न देखने योग्य हो गई। दुष्ट और दुःश्रव निर्घोष करने वाले मगर जिस तरह समुद्रमें परस्पर टकराते हों, इस तरह दुष्ट पवन परस्पर टकराने लगे। आकाशमें से चारों तरफ, मशालोंके समान समस्त म्लेच्छ-व्याघ्रों के हृदयोंको क्षुभित करने वाला उल्कापात होने लगा, अर्थात् आकाशसे तारे टूट टूट कर गिरने लगे, जिसको देख कर म्लेच्छों के हृदय हिलने लगे। क्रोध करके उठे हुए यमराजके हस्ताघात पृथ्वी पर पडते हों, इस तरह भयङ्कर शब्दोंके साथ वज्रपात होने लगा; अर्थात् भयङ्कर गर्जनाके साथ पृथ्वी पर बिजलियाँ पड़ती थीं; उनसे ऐसा जान पड़ता था, मानो यमराज क्रोधमें भर कर पृथ्वी पर अपने भयङ्कर हाथ मार रहे हों।
मृत्यु—लक्ष्मी के छत्र हों, इस तरह कबन्धों के मण्डल आकाश में जगह जगह घूमने लगे।

इस ओर, सोने के कवच, फर्मों और प्रासकी किरणों से, आकाश चारी सहस्र किरण सूर्य को कोटि किरणवाला करनेवाले, उद्दंड दंड कोदंड और दुर से आकाश को उन्नत करने वाले, ध्वजाओं में चिते और लिखे हुए व्याघ्र, सिंह और सर्पों के चित्रों से आकाशचारी—आकाश में रहनेवाली स्त्रियों को भय भीत करनेवाले और बड़े-बड़े हाथियों के घटारूपी मेघों से

दिशाओं को अन्धकारमय करनेवाले महाराज भरत आगे बढ़ने लगे। उनके रथ के आगे जो मगरों के मुख लगे हुए थे, वे यमराज के मुख की स्पर्द्धा करते थे। वे घोड़ोंकी टापों की आवाजों से धरती को और जय-बाजों के घोर शब्द से आकाश को फोड़ते हों, ऐसे जान पड़ते थे और आगे-आगे चलनेवाले मंगल ग्रह से जिस तरह 'सूर्य' भयङ्कर लगता है, उसी तरह आगे आगे चलनेवाले चक्र से वे भयङ्कर दीखते थे।

म्लेच्छों के साथ युद्ध करना।

उनको आते हुए देखकर किरात लोग अत्यन्त कुपित हुए और क्रूरग्रहकी मैत्रीका अनुसरण करने वाले वे इकठे हो कर, मानो चक्रवर्त्ती को हरण करने की इच्छा करते हों, इस तरह क्रोध सहित बोलने लगे—"साधारण मनुष्य की तरह लक्ष्मी लज्जा, धीरज और कीर्ति से वर्जित यह कौन पुरुष है, जो बालक की तरह अल्प बुद्धि से मृत्युकी कामना करता है? हिरन जिस तरह सिंह की गुफा में जाता है; उसी तरह यह कोई पुण्यचतुर्दशी-क्षीण और लक्षणहीन पुरुष अपने देश में आया मालूम होता है। महा पवन जिस तरह मेघों को इधर उधर फैंक देता है; उसी तरह इस उद्धत आकार वाले और फैलते हुए पुरुष को अपन लोग दशों दिशाओं में फैंक दें। इस तरह ज़ोर-ज़ोर से चीख़ते-चिल्लाते हुए इकट्ठे होकर, शरभअष्टपद जिस तरह मेघ के सामने गर्जना करता और दौड़ता है उसी तरह युद्ध करने के लिये

भरत के सामने उद्यत हुए। किरातपतियोंने कछुओंकी पीठोंकी हड्डियों से बनाये हों ऐसे दुर्भेद्य कवच—जिरह बख्तर पहने। उन्होंने मस्तक पर लंबे लंबे बाल वाले निशाचरों की शिरलक्ष्मी को बतोन वाले एक तरह के बालों से ढके हुये शिरस्त्राण धारण किये। रणोत्साह से उन की देह इस तरह फूलने लगी कि, उस से उनके कवचों के जाल टूटने लगे। उनके ऊंचे ऊंचे केश वाले मस्तकों पर शिरस्त्राण रहते न थे, इसलिये मानो हमारी रक्षा कोई दूसरा कर नहीं सकता, इस तरह मस्तकों को अमर्ष करते हों—ऐसे मालूम होते थे। कितने ही कुपित किरात यमराज की भृकुटो जैसे बांके और सींगों से बने हुए धनुषों को लीला से सजा सजाकर धारण करने लगे। कितने ही जयलक्ष्मी की लीला की शय्या की जैसी रणमें दुर्वार और भयङ्कर तलवारों को म्यानों से निकालने लगे। यमराजके छोटे भाई जैसे कितने ही किरात डण्डों को ऊंचा करने लगे। कितने ही धूम्रकेतु जैसी भालों को आकाश में नचाने लगे। कितने ही रणोत्सव में आमंत्रित किये हुए प्रेतराज को खुश करने के शत्रुओं को शूली पर चढ़ानेके हों ऐसे त्रिशूलों को धारण करने लगे। कितने ही शत्रुरूपी चकवेपक्षियों के प्राणनाश करने वाले बाज पक्षी जैसे लोहे के शल्यों को हाथों में धारण करने लगे। कोई मानो आकाश में से तारामण्डल को गिरनेकी इच्छा करते हों, इस तरह अपने उद्धत हाथों से तत्काल मुद्गर फिरने लगे। जिस तरह विना विषके कोई सर्प नहीं होता, इस तरह उनमें से कोई भी हथियार

विना न था। युद्ध रस की इच्छावाले वे, मानो एक आत्मावाले हों इस तरह, एकदम से भरतकी सारी सेना पर टूट पड़े। ओलों की वर्षा करने वाले प्रलयकाल के मेघों की तरह, शस्त्रों की झड़ी लगाते हुए म्लेच्छ, भरत की आगेकी सेना से बड़े ज़ोरों के साथ युद्ध करने लगे। मानो पृथ्वी में से, दिशाओं के मुखों से और आकाशमें से, पड़ते हों इस तरह, चारों ओर से शस्त्र पड़ने लगे। दुर्जनों के वचन जिस तरह सभी के दिलों में लगते हैं, इस तरह किरात लोगों के वाणों से भरत की सेना में कोई भी ऐसा न रहा, जिसके शरीर न छिदा हो, वाणों से कोई भी अछूता न बचा। म्लेच्छों के आक्रमण से चक्रवर्तीके आगे वाले घुड़सवार-समुद्रकी वेला से नदीके पिछले हिस्से की तरंगके समान—पीछे हट कर चलायमान होने लगे; अर्थात् समुद्र की लहरों से जिस तरह नदी के पिछले भागकी तरंगें पीछे को हटती हैं; उसी तरह म्लेच्छों के हमलों से राजा के आगे के घुड़सवार पीछे को हटने को मजबूर हुए। म्लेच्छ-सिंहों के वाण रूपी सफेद नाख़ुनों से चोट खाकर चक्रवर्ती के हाथी बुरी तरह से चिंघाड़ने लगे। म्लेच्छ वीरों के प्रचण्ड दण्डायुधों की मार से पैदल सिपाही गेंदोंकी तरह ज़मीन पर लुढ़कने लगे। वज्राघात से पर्वतों की तरह यवन-सेनाने गदा के प्रहारों से चक्रवर्ती की अगली सेना के रथ चूर्ण कर डाले। संग्राम रूपी सागर में, तिमिंगल जातके मगरों से जिस तरह मछलियाँ ग्रस्त और त्रस्त होती हैं, उस तरह म्लेच्छ लोगों से चक्रवर्ती की सेना ग्रस्त और त्रस्त हुई।

अनाथकी तरह अपनी सेना को पराजित हुई देखकर, राजा की आज्ञा की तरह, क्रोध में सेनापति सुषेण को जोश आगया। उसके नेत्र और मुँह लाल होगये और क्षणभर में मनुष्य रूप में जैसे अग्निहो, इस तरह वह दुर्निरीक्ष्य हो गया ; अर्थात् क्रोध के मारे वह ऐसा लाल हो गया, कि उसकी तरफ़ कोई देख न सकता था। राक्षस पति की तरह समस्त पराई सेना के ग्रास करने के लिये स्वयं तैयार हो गया। अंग में उत्साह—जोश—आ जाने से, उसका सोनेका कवच शरीरमें सटकर दूसरी चमड़ी के समान शोभा देने लगा। कवच पहनकर, साक्षात् जयरूप हो, इस तरह, वह सुषेण सेनापति कमलापीड़ नामक घोड़े पर सवार हुआ। वह घोड़ा अस्सी अँगुल ऊँचा और नवाणु' अँगुल विशाल था तथा एक सौ आठ अँगुल लम्बा था। उसका मस्तक भाग सदा बत्तीस अंगुल की उँचाई पर रहता था। चार अंगुल के उसके बाहु थे, सोलह अँगुलकी उसकी जाँघें थीं, चार अँगुल केघुटने थे, चार अंगुल ऊँचे खुर थे, गोलाकार और घूमा हुआ उसका बीचला भाग था; विशाल, किसी क़दर नर्म और प्रसन्न करनेवाले पिछले भाग से वह शोभायमान था, कपड़ेके तन्तु जैसे नर्म-नर्म रोम उसके शरीर पर थे। उस पर श्रेष्ठ बारह आवर्त्त या भौंरे थे। वह शुद्ध लक्षणों से युक्त था, जवान तोते के पंखों जैसी उसकी कान्ति थी। कभी भी उसने चाबुककी चोट न खाई थी, वह सवार के मनके माफ़िक़ चलनेवाला था, रत्नजड़ित सोने की लगाम के बहाने से मानो लक्ष्मी ने निज

हाथों से उसका आलिङ्गन किया हो, ऐसा दीखता था। उसके ऊपर सोने के घुंघरुओं की मालायें मधुर स्वर से छम-छम करती थीं, इसलिये मानो भौंरोंके मधुर स्वर वाली कमलों की मालाओं से चर्चित किया हुआसा वहदीखता था। पाँच रंगकी मणियों से, मिश्र सुवर्णालङ्कार की किरणों से अद्वैत रूप की पताकाके चिह्न से अकित हुआ सा उसका मुख था। मङ्गल गृह से अंकित, आकाश के समान सोनेके कमल का उसका तिलक था और धारणा किये हुए चमरों के आभूषणों से—मानो उसके दूसरा कान हो ऐसा दीखता था। चक्रवर्ती के पुण्य से प्राप्त हुए इन्द्र के उच्चैःश्रवा की तरह वह शोभायमान था। टेढ़े पाँव रखनेसे उसके पाँव लीला से पड़ते से दीखते थे। दूसरी मूर्त्तिसे मानो गरुड हो: अथवा मूर्तिमान् पवन हो, ऐसा वह एक क्षणमें सौ योजन अथवा आठ सौ मील उलांघ जानेका पराक्रम दिखलाता था। कीचड, जल, पत्थर, कंकड़ और खड्डोंसे विषम वन जगल और पर्वत गुहा आदि दुर्गम स्थानोंको पार करने में वह समर्थ था। चलते समय उसके पाँव ज़मीन को ज़रा ज़रा ही छूते थे। वह बुद्धिमान और नर्म था। पाँच प्रकारकी गतिसे उसने श्रम या थकानको जीत लिया था। कमलके जैसी उसके श्वासकी सुगन्ध थी। ऐसे घोड़े पर बैठ कर सेनापतिने यमराजकी तरह, मानो शत्रुओंका पन्ना हो ऐसा खड्गरत्न ग्रहण किया। वह खड्ग पचास अंगुल लम्बा, सोलह अंगुल चौडा और आधा अंगुल मोटा था और सोने तथा रत्नोंका उसका म्यान था। उसने

उसे म्यानसे बाहर निकाल रखा था, इसलिये वह काँचली से निकले हुए सर्प जैसा दिखाई देता था। उस पर तेज़ धार थी और वह दूसरे वज्रकी तरह मजबूत और अजीव था। विचित्र कमलोकी पंक्ति जैसे साफ अक्षरोंसे वह शोभता था। इस खड्गके धारण करने से वह सेनापति पंख वाले गरुड़ और कवच-धारी केशरी सिंह सा दीखने लगा। आकाशमें चमकने वाली विजली की सी चपलतासे खड्गको फिराते हुए उसने रणक्षेत्रमें घोडेको हाँका। जलकान्त मणि जिस तरह जलको जुदा करती है, उसी तरह शत्रु सेनाको काई की तरह फाड़ता हुआ वह सेनापति रणभूमि में दाखिल हुआ।

जब सुषेण ने शत्रुओं को मारना आरम्भ किया, तब कितने ही शत्रु तो हिरनों की तरह डर गये; कितने ही पृथ्वी पर पडे हुए खरगोश की तरह आँखे वन्द करके वहीं वैठ गये। कितने ही रोहित की तरह दुखित होकर वहीं खड़े रहे; कितने बन्दरों की तरह दरख्तो पर चढ़ गये, वृक्षों की पत्तियों की तरह कितनों ही के हथियार गिर गये, यशकी तरह कितनों ही के छत्र गिर पड़े, मन्त्र से वश किये हुए सर्पकी तरह कितनों ही के घोड़े निश्चल या अचल होगये और मिट्टीके बने हुओं की तरह कितनों ही के रथ टूट गये। अनजानों की तरह कोई किसी की राह देखने को खडा न रहा। सब म्लेच्छ अपने-अपने प्राण लेकर जहाँ जिसके सींग समाये भाग गया। जलके प्रवाह से जिस

तरह वृक्ष नष्ट हो जाते हैं, उसी तरह सुषेण रूपी जलकी बाढ़से निर्बल हो, किरात कोसों दूर भाग गये। फिर कव्वों की तरह इकट्ठे हो, क्षणमात्र में विचार कर, घबराया हुआ बालक जिस तरह माँके पास आता है, उसी तरह महानदी के नजदीक आये और मृत्यु-स्नान करनेके लिये तैयार हो इस तरह उसके किनारों पर बिछौने बिछाकर बैठ गये। वहाँ उन्होंके नङ्गे और उतान हो मेघ मुख आदि नाग कुमार निकाय अपने कुल-देवताओं को याद कर अष्टम तप करने लगे। अष्टम तपके अन्तमें, मानों चक्रवर्ती के तेज से भीत हुए हों, इस तरह नाग कुमार प्रभृति देवताओं के आसन काँपे। अवधिज्ञानसे म्लेच्छों को इस तरह दुखी देखकर दुखित हुए पिताके समान उनके सामने आकर प्रकट हुए और आकाश में ठहर कर उन्होंने किरातों से कहा-"तुम्हारे मनमें किस बातकी चाहना है? तुम क्या चाहते हो?" आकाश में रहने वाले मेघ-मुख नागकुमार को देख, त्रसित हुए या डरे की तरह सिर पर हाथ रख कर उन्होंने कहा—"आज तक हमारे देश पर किसीने भी आक्रमण या हमला नहीं किया लेकिन अभी कोई आया है, आप ऐसा उपाय कीजिये कि वह यहाँ से वापस चला जाय।"

किरातों की प्रार्थना सुन कर देवताओंने कहा—"किरातो! यह भरत नामका चक्रवर्ती राजा है, इन्द्र की तरह यह देव असुर और मनुष्यों से भी अजेय है; अर्थात् इसे सुर; असुर और नर कोई भी जीत नहीं सकते। टांकियों से जिस तरह पहाड़ के

पत्थर नहीं टूटते ; उसी तरह पृथ्वी पर चक्रवर्ती राजा मंत्र, तन्त्र विष, अस्त्र और विद्याओं से परास्त और अधीन किया जा नहीं सकता ; तथापि तुम्हारे आग्रह से हम कुछ उपद्रव करेंगे।" यह कहकर देवता अन्तर्द्धान होगये।

म्लेच्छों का किया हुआ उपद्रव।

क्षणमात्र में मानों पृथ्वी पर से उछल कर समुद्र आकाशमें आगये हों,इस तरह काजल जैसी श्याम कन्ति वाले मेघ आकाश में छागये। वे विजली रूपी तर्जनी अँगुली से चक्रवर्त्ती की सेना का तिरस्कार और उत्कट गर्जनासे वारम्वार आक्रोष कर उसका अपमान करते हुए से दीखते थे। सेना को चूर्ण करने के लिये, वज्रशिला जैसे महाराजा की छावनी पर तत्काल चढ़ आये और लोहेके अग्रभाग, वाण और डण्डों जैसी धाराओं से बरसने लगे। पृथ्वी चारों ओर से मेघ-जलसे भर उठी। उस जलमें रथ नावों की तरह तथा हाथी घोड़े मगर मच्छों से दीखने लगे। सूरज मानो कहीं भाग गया हो, पर्वत कहीं चले गये हों, इस तरह मेघों के अन्धकार से कालरात्रि या प्रलयका सा दृश्य होगया। उस समय पृथ्वी पर जल और अन्धकारके सिवा कुछ न दीखता था। इस कारण मानो एक समय युग्म धर्म वर्त्तते हों, ऐसा दीखने लगा। इस तरह अरिष्टकारक वृष्टि को देख कर चक्रवर्त्ती ने प्यारे सेवकके समान अपने हाथों से चर्म रत्न को स्पर्श किया। जिस तरह उत्तर दिशा की हवासे मेघ बढ़ता है, उस

तरह चक्रवर्ती के हस्तस्पर्श या हाथसे छू देने से चर्मरत्न बारह योजन या छियानवे मील बढ़ गया। समुद्र के बीचमें जमीन हो इस तरह जलके ऊपर रहने वाले चर्मरत्न पर महाराज सेना समेत रहे। फिर प्रवाल या मूँगों से जिस तरह क्षीरसागर शोभता है, उस तरह सुन्दर कान्तिमयी सोने की नवाणु हजार शलाकाओं से शोभित, नालसे कमल की तरह, छेद और गाँठों रहित सरलता से सुशोभित, सोने के डण्डे से सुन्दर और जल, धूप, हवा और धूपसे रक्षा करने में समर्थ छत्ररत्न राजाके छूनेमात्र से चर्मरत्न की तरह बढ़ गया। उस छत्रद-एडके ऊपर अन्धकार नाश करने के लिए, सूर्यके समान अत्यन्त तेजस्वी मणिरत्न स्थापित किया। छत्ररत्न और चर्म रत्न का वह संपुट तैरने वाले अण्डे की तरह दीखने लगा। उसी समय से दुनियामें ब्रह्माण्ड की कल्पना हुई। गृहिरत्न के प्रभाव से उस चर्मरत्न पर, जैसे अच्छे खेतमें सवेरे ही बोये हुए अनाज शाम को पैदा हो जाते हैं; चन्द्र-सम्बन्धी महलों की तरह उसमें प्रातःकालको लगाये हुए कोहले, पालक और मूली प्रभृति सायंकाल को उत्पन्न होते हैं और सवेरे के वक्त के लगाये हुए केले आदिके फल-वृक्ष भी महान् पुरुषोंके आरम्भ के समान सन्ध्या समय फल आते हैं। उसमें रहने वाले लोग पूर्वोक्त धान्य, साग और फलों को खाकर सुखी होते हैं और बगीचो में क्रीड़ा करने को आकर रह गये हों, उस तरह कटक का श्रम भी न जानते थे मानों महलों में रहते हों उस तरह मर्त्य लोकके पति महाराज

भरत छत्ररत्न और चर्मरत्नके बीचमें परिवार सहित सुखसे रहने लगे। इस भाँति उसमें रहने पर; कल्पान्तकालकी तरह, अश्रांत वर्षा करने वाले नागकुमार देवताओं ने सात अहोरात्र—दिन-रात बिता दिये।

इसके बाद, 'यह कौन पापी मुझे ऐसा उपसर्ग करनेके लिए तैयार हुआ है' राजाके मनमें आये हुए ऐसे विचार को जानकर महा पराक्रमी और सदा पास रहनेवाले सोलह हजार यक्ष तैयार हुए, तरकश बाँधकर अपने धनुष सजाये और क्रोध रूपी अग्निसे शत्रुओं को जलाना चाहते हों, इस तरह होकर नाग कुमारों के पास आये और कहने लगे—"अरे शोक करने योग्य नाग कुमारो तुम अज्ञानी की तरह क्या पृथ्वीपति महाराज भरत को नहीं जानते? यह राजा सारे संसार के लिये अजेय है, इस राजा पर किया हुआ उपद्रव, बड़े पर्वत पर दाँतों की चोट करने वाले हाथियों की तरह तुम्हारी ही विपत्ति का कारण होगा। अच्छा हो, यदि तुम खटमलों की तरह यहाँ से फौरन नौ दो ग्यारह हो जाओ, नहीं तो तुम्हारी जैसी पहले कभी नहीं हुई है, वैसी ही अपमृत्यु होगी।"

म्लेच्छों का अधीन होना।

ये बातें सुन कर आकुल व्याकुल हुए मेघमुख नागकुमारों ने ऐन्द्रजालिक जिस तरह अपने इन्द्रजाल का संहार करता है, बाज़ीगर अपनी माया का संहार करता है, उसी तरह क्षण भरमें ही मेघजल का संहार कर दिया। और 'तुम महाराज भरत की

शरण जाओ' इस तरह किरात लोगोंसे कहकर अपने अपने स्थानों को चले गये। देवताओंके वचन से भग्न मनोरथ होकर, दूसरी शरण न होने से, शरण के योग्य भरत महाराज की शरण में वेगये मेरु पर्वत के सार जैसी सुवर्ण राशि, और अश्वरत्नके प्रतिबिंब सदृश लाखों अश्व या घोड़े, उन्होंने भरतराज की भेंट किये। फिर मस्तक पर अञ्जलि जोड़, सुन्दर वचन गर्भित वाणीसे वन्दीजनों के सहोदरों की तरह, ऊँचे स्वर से कहने लगे -हे जगत्पति! हे अखण्ड प्रचण्ड पराक्रमी! आपकी विजय हो, आपकी फतह हो, छः खण्ड पृथ्वी-मण्डल में आप इन्द्र के समान होओ। हे राजन्! हमारी पृथ्वी के किले जैसे वैताढ्य पर्वतके बड़े गुफा-द्वार को आपके सिवाय दूसरा कौन खोल सकता है? हे विजयी राजा! आकाश में ज्योतिश्चन्द्र की तरह, जल के ऊपर सारी सेनाका पड़ाव रखने में आपके सिवा दूसरा कौन समर्थ हो सकता था? हे स्वामिन्! अद्भुत शक्ति होनेके कारण आप देवताओं से भी अजेय हो, यह बात हमें अब मालूम हुई है; इसलिये हम मूर्खों का अपराध क्षमा करें। हे नाथ! नया जन्म देने वाले अपने हाथ हमारी पीठ पर रक्खें। आजके दिन से हम आपकी आज्ञा में चलेंगे।' भरत महाराज ने उनको अपने अधीन कर,उनका सत्कारकर विदा किया; उत्तम पुरुषोंके क्रोध की अवधि प्रणाम नमस्कार तक ही होती है, अर्थात् उत्तम पुरुष चाहे जैसे कुपित क्यों न हो, प्रणाम करते ही शान्त हो जाते हैं, उनका क्रोध काफूर हो जाता है। चक्रवर्ती की आज्ञा से सेनापति सुषेण पर्वत और

समुद्र की मर्य्यादा वाले सिन्धुके उत्तर निष्कुट को विजय करके आया ; और अनार्य लोगों को अपनी संगति या सुहबत से आर्य बनाने की इच्छा करते हों इस तरह सुखोपभोग करते हुए चक्रवर्त्ती वहाँ बहु काल तक रहे।

हिमांचल कुमार देव की साधना।

एक दिन दिग्विजय करने में ज़मानत-स्वरुप, तेजसे विशाल चक्ररत्न आयुधशाला से निकला और क्षुद्र हिमालय पर्वत पर की ओर, पूरब दिशाकी राहसे चला। जलका प्रवाह जिस तरह नौककी राहसे चलता है, उसी तरह चक्रवर्त्ती भी चक्रके मार्गसे चले। गजेन्द्रकी तरह लीलासे चलते हुए महाराज कितने ही कूचोंके बाद क्षुद्र हिमाद्रिके दक्षिण नितम्ब या दक्खन भागके निकट आये। भोजपत्र, तगर और देवदारुके वनसे आकुल उस भागके एक भाग पाण्डुक वनमें इन्द्रकी तरह महाराजा भरतने अपनी छावनी डाली। वहाँ क्षुद्र हिमाद्रि कुमारदेव को उपदेश करके महाराजा भरतने अष्टम तप किया, क्योंकि कार्यसिद्धिमें तपही आदि मंगल है। रातका अवसान या अन्त होने पर, जिस तरह सूर्य पूरब समुद्रके बाहर निकलता है, उसी तरह अष्टमभक्तके अन्तमें तेजस्वी महाराज रथ पर चढ़कर कटक—क्षुद्र हिमालय पर्वतको रथके अगले भागसे तीन बार तड़ित किया। धनुर्धरकी वैशाख आकृतिमें रह कर तीरन्दाज़ के से पैंतरे बदल कर, महाराजने अपने नामसे अङ्कित बाण हिमाचल

कुमार पर छोड़ा। पक्षीकी तरह आकाशमें बहत्तर योजन या पाँच सौ छिहत्तर मील चलकर वह बाण उसके सामने गिरा। अङ्कुश को देखकर मतवाला हाथी जिस तरह कुपित होता है, उसी तरह शत्रु के बाणको देखकर उसके नेत्र लाल हो गये परन्तु बाण को हाथमें लेते ही उसपर सर्पके समान भयकारक नामाक्षर पढ़कर, वह दीपकके समान शान्त हो गया, उसका क्रोध जाता रहा, गुस्सा हवा हो गया। इस कारण प्रधान पुरुषकी तरह उस बाणको साथ रख, भेंट ले वह भरतराजके पास आया। आकाशमें रह कर उच्चस्वरसे "जय जय" कह, बाणकारक पुरुष की तरह, उसने चक्रवर्तीको उनका बाण सौंपा और पीछे देव-वृक्षके फूलोंकी माला, गोशीर्ष चन्दन, सर्वोषधि और पद्मद्रहका जल—ये सब महाराजको भेंट किये, क्योंकि उसके पास यही चीज़ें सार थीं। इनके सिवा कड़े, बाजूबन्द और दिव्य वस्त्र भेंटके मिससे दण्डमें महाराजको दिये और कहा—"हे स्वामिन्! उत्तर दिशा के अन्तमें, आपके चाकरकी तरह मैं रहूँगा।" इस प्रकार कह कर जब वह चुप हो गया तब महाराजने उसका सत्कार कर उसे विदा किया। इसके बाद, क्षुद्र हिमालयके शिखर और शत्रुओंके मनोरथ जैसा अपना रथ वहाँसे वापस लौटाया। इसके बाद ऋषभनन्दन ऋषभकूट पर्वत पर गये और हाथी जिस तरह अपने दाँतोंसे पर्वत पर प्रहार या चोट करता है; उसी तरह रथ शीर्षसे तीन बार ताड़न किया। पीछे सूर्य जिस तरह किरणकोशको ग्रहण करता है; उस तरह चक्रवर्तीने, रथको

वहाँ ठहराकर, हाथमें कांकिणी रत्न ग्रहण किया। उस कांकिणी रत्नसे, उस पर्वतकी पूरवी चोटी पर उन्होंने लिखा—

"अवसर्प्पिणी कालके तीसरे आरेके प्रान्त भागमें, मैं चक्रवर्त्ती हुआ हूं, ये शब्द लिखकर चक्रवर्त्ती अपनी छावनीमें आये और उसके लिए किये हुए अष्टम तपका पारणा किया। फिर हिमालय कुमारकी तरह, उस ऋषभकूटपतिका, चक्रवर्त्तीकी सम्पत्तिके योग अष्टान्हिका उत्सव किया।

नमि और विनमि के साथ युद्ध करना।

गगा और सिन्ध नदीके बीचकी जमीनमें मानो समाते न हों इस कारण आकाशमें उछलने वाले घोड़ोंसे, सेनाके बोझसे ग्लानिको प्राप्त हुई पृथ्वी पर छिड़काव करना चाहते हों. ऐसे पदजलके प्रवाहको भराने वाले गन्धहस्तियोंसे, उत्कट चक्रधार से पृथ्वीको सीमान्तसे भूषित करने वाले उत्तम रथोंसे, और मानो नराद्वैतको बताने वाले अद्वैत पराक्रमशाली भूमिपर फैलने वाले करोड़ों पैदलोंसे घिरे हुये चक्रवर्त्ती महाराज सवारोंका अनुसरण करके चलने वाले जात्यगजेन्द्रकी तरह, चक्रके अनुगत होकर, वैताढ्य पर्वत पर आये। जहाँ शबर स्त्रियाँ—भील रमणियाँ आदीश्वरके आनन्दित गीत गाती थीं, वहीं पर्वतके उत्तर भागमे महाराजने छावनी डाली। वहाँ रह कर भी उन्होंने नमि विनमि नामके विद्याधरों पर दण्ड माँगनेवाला बाण फैंका। बाणको देखते ही दोनों विद्याधरपति कोपाटोप कर—भयङ्कर क्रोधके आवेशमें आ, इस प्रकार विचार करने लगे

"जम्बूद्वीपके भरतखण्डमें यह भरतराज पहले चक्रवर्ती हुए हैं। ऋषभकूट पर्वत पर चन्द्रबिम्ब की तरह अपना नाम लिख कर, वापस लौटते हुए वे यहाँ आये हैं। हाथीके आरोहक या चढ़ने वाले की तरह उन्होंने इस वैताढ्य पर्वत के पार्श्वभाग या बग़ल में डेरे डाले हैं। सर्वत्र विजय लाभ करने या सब जगह फ़तहयाबी हासिल करने की वजह से उन्हें अपने भुजबल का गर्व हुआ है; अतः वह अब अपने से भी जय प्राप्त करने की लालसा करते हैं—अपने ऊपर भी विजयी होना चाहते हैं। मैं समझता हूँ, इसी कारणसे उन्होंने यह उग्र दण्डरूप बाण अपने ऊपर छोड़ा है. इस तरह विचार कर दोनों ही युद्धके लिये तैयार हो, अपनी सेनासे पर्वत शिखर या पहाड़की चोटीको आच्छादन करने—ढकने लगे ; अर्थात् पहाड़की चोटी पर ज़ोरसे फौजें इकट्ठी करने लगे। सौधर्म और ईशानपतिकी देव-सेनाकी तरह, उन दोनों की आज्ञासे विद्याधरोंकी सेना आने लगी। उनके किलकिला शब्दोंसे या किलकारियोंसे वैताढ्य पर्वत हँसता हुआ—गरजता हुआ और फटता हुआ सा जान पड़ता था। विद्याधरेन्द्रके सेवक वैताढ्य गिरिकी गुफाकी जैसी सोनेकी विशाल दुंदुभि या नगाड़ा बजाने लगे। उत्तर और दक्खन श्रेणीकी भूमि, गाँव और शहरके स्वामी या अधिपति, रत्नाकरके पुत्रोंकी तरह विचित्र-विचित्र रत्नाभरण धारण करके गरूड़ की तरह अस्खलित गतिसे आकाशमें चलने लगे। नमि विनमिके साथ चलते हुए वे उनकी तीसरी मूर्त्ति से दीखते थे। कोई विचित्र

माणिकोंकी प्रभासे दिशाओंको प्रकाशित करने वाले विमानों में बैठ कर, वैमानिक देवोंसे अलग न हो जायँ, इस तरह चलने लगे। कोई पुष्करावर्त्त मेघ जैसे मद बिन्दुओंको बरसाने वाले और गर्जना करने वाले गन्धहस्ती पर बैठ कर चले। कोई सूर्य और चन्द्रके तेजसे व्याप्त हों ऐसे सोने और जवाहिरातसे बने हुए रथों पर सवार होकर चले। कितने ही आकाशमें सुन्दर चाल से चलने वाले और अत्यन्त वेगवान, वायुकुमार देव जैसे घोड़ों पर बैठ कर चलने लगे और कितने ही हाथोंमें हथियार ले, वज्र के कवच पहन, बन्दरोंकी तरह कूदते उछलते पैदल ही चलने लगे। इस तरह विद्याधरोंकी सेनासे घिरे हुए नमि विनमि वैताढ्य पर्वतसे उतर कर, महाराज भरतके पास आये।

नमि और विनमि का अधीन होना।

आकाशमें से उतरती हुई विद्याधरोंकी सेना मणिमय विमानों से आकाशको बहुसूर्यमय प्रज्वलित तथा प्रकाशमान् अस्त्र शस्त्रों से विद्युतमय और उद्दाम दुंदुभि ध्वनिसे घोषमय करती हुई सी मालूम होती थी; अर्थात् विद्याधर-सेनाको आकाश से नीचे उतरती हुई देखने से ऐसा मालूम होता था, गोया आस्मानमें अनेक सूरज प्रकाश कर रहे हैं, बिजलियाँ चमक रही हैं और गरजना हो रही है। 'अरे दण्डार्थि' ओ दण्ड माँगनेवाले! तू हम लोगोंसे दण्ड लेगा?' यह कहते हुए, विद्यासे उन्मत्त और गर्वित उन दोनों विद्याधरोंने भरतपतिको युद्धके लिये ललकारा।

पीछे सेना सहित उन दोनोंके साथ अलगअलग और मिलकर, विविध प्रकारसे युद्ध होने लगा। क्योंकि जय लक्ष्मी युद्धसे ही उपार्जन करने योग्य है ; अर्थात विजय लक्ष्मी युद्धसे ही प्राप्त की जाती है। बारह वर्ष तक युद्ध करके, अन्तमें चक्रवर्त्ती ने उन दोनों विद्याधरोंको जीत लिया। पराजित होने के बाद, हाथ जोड़ और प्रणाम करके उन्होंने भरतेश्वरसे कहा—"हे कुल-स्वामी! सूर्यसे दूसरा अधिक तेजस्वी नही,वायुसे अधिक दूसरा वेगवान नहीं और मोक्षसे अधिक दूसरा सुख नहीं, उसी तरह आपसे अधिक दूसरा कोई शूरवीर नहीं। हे ऋषभपुत्र ! आज आपको देखने से हम साक्षात ऋषभदेवको ही देख रहे हैं। हमने अज्ञानतासे जो कष्ट आपको दिया है, उसके लिये क्षमा कीजिये; क्योंकि हमने आपको मूर्खतासे जागृत किया है। जिस तरह पहले हम ऋषभस्वामीके दास थे ; उसी तरह अबसे हम आपके सेवक हुए। क्योंकि स्वामीकी तरह, स्वामी पुत्र की सेवा भी लज्जाकारक नहीं होती। हे महाराज! दक्षिण औरउत्तर भरतार्द्ध के मध्यमें स्थित वैताढ्य पर्वतके दोनों ओर, दुर्गरक्षककी तरह, आपकी आज्ञामें रहेंगे।" इस तरह कहकर विनमि राजाने जो कि महाराजको कुछ भेंट देने की इच्छा रखते थे,मानो कुछ मांगना चाहते हों इस तरह, नमस्कार कर हाथ जोड़,—मानो स्थिर हुई लक्ष्मी हो ऐसी,स्त्रियोंमें रत्नरूप अपनी सुभद्रा नामक पुत्री चक्रवर्त्तीके अर्पण की।

मानो सूत लगा कर बनाई हो, ऐसी उसकी सम चौरस

आकृति थी ; त्रिलोकीके माणिक्योंके तेजपुञ्ज जैसी उसकी कान्ति थी, कृतज्ञ सेवकोंसे घिरी हुई की तरह वह यौवनावस्था तथा नित्य स्थिर रहने वाले शोभायमान केशों और नाखूनोंसे अतीव सुन्दरी मालूम होती थी, दिव्य औषधिकी तरह वह समस्त रोगोंको शान्त करने वाली थी और दिव्य जलकी तरह वह इच्छानुरूप शीत और उष्ण स्पर्श वाली थी। वह तीन ठौरसे श्याम, तीन ठौरसे सफेद और तीन ठौरसे ताम्र, तीन ठौरसे उन्नत, तीन ठौर से गम्भीर, तीन ठौरसे विस्तीर्ण, तीन ठौरसे दीर्घ और तीन ठौरसे कृश थी। अपने केश कलापसे वह मयूरके कलापको जीतती थी और ललाटसे अष्टमीके चन्द्रमाका पराभव करती थी। रति और प्रीति की क्रीड़ा वापिका सी उसकी सुन्दर दृष्टि थी। ललाटके लावण्य-जल की धारा सी उसकी दीर्घ और मनोहर नाक थी। नवीन दर्पके जैसे उसके मनोहर गाल थे। दो झूलोंके जैसे कन्धों तक पहुँचने वाले उसके दोनों कान थे। एक साथ पैदा हुए से विम्बाफल सदृश उसके दोनों होठ थे। हीरे की कनियोंकी शोभा को पराभव करने वाले उसके दाँत थे। पेटकी तरह उसके कण्ठमें तीन रेखायें थी। कमलनाल जैसी सरल और विषके समान कोमल उसकी भुजायें थी। कामदेव के कल्याण कलश जैसे दो स्तन थे। स्तनोंने उदरकी सारी पुष्टता हरली थी, इसलिये उसका उदर कृश और कोमल था। नदीके भँवरोंके समान उसका नाभिमण्डल था। नाभि रूपी वापिकाके किनारेके ऊपरकी दूर्वावली—दूब हो—ऐसी उसकी

रोमावली थी। कामदेवकी शय्याके जैसे उसके विशाल नितम्ब थे। हिंडोलेके सुन्दर खम्भोंके जैसे उसके दोनों उरूदण्ड थे। हिरनीकी जाँघोंका तिरस्कार करने वाली उसकी दोनों जाघे थीं। मोथोंकी तरह उसके चरण भी कमलोंका तिरस्कार करने वाले थे। हाथो और पावोंकी अंगुलियोंसे वह पल्लवित लता सी दीखती थी। प्रकाशमान नखरूपी रत्नोंसे वह रत्नाचलकी तटी सी मालूम होती थी. विशाल, स्वच्छ, कोमल और सुन्दर वस्त्रोंसे वह मन्द मन्द वायुसे तरंगित सरिताके समान दीखती थी। स्वच्छ, कान्तिसे तरङ्गित सुन्दर सुन्दर अवयवोंसे वह अपने सोने और जवाहिरातके गहनोंकी खूबसूरतीको बढ़ाती थी। छायाकी तरह उसके पीछे पीछे छत्रधारिणी स्त्रियाँ उसकी सेवा के लिये रहती थीं। दो हंसोंके बीचमें कमल जिस तरह मनोहर मालूम होता है, उसी तरह दो चँवरोंके अगल बगल फिरनेसे वह मनोमुग्धकर जान पड़ती थी। अप्सराओंसे लक्ष्मी की तरह और नदियोंसे जान्हवी—गंगाकी तरह वह सुन्दरी बाला, समान उम्र वाली हज़ारों सखियोंसे घिरी रहती थी।

नमि राजाने भी महामूल्यवान रत्न चक्रवर्त्तीको भेंट किये। क्योंकि स्वामी घर आवे तब महात्माओंको क्या आदेय है? इसके बाद् महाराज भरतसे विदा होकर नमि, विनमि अपने राज्यमें आये और अपने पुत्रोंके पुत्रोंको राज्य सौंप, विरक्त हो, ऋषभदेव भगवानके चरण-कमलमें जा, व्रत ग्रहण किया।

गंगा देवीकी साधना करके उसके यहाँ रहना ।

वहाँसे चक्ररत्नके पीछे चलने वाले तीव्र तेजस्वी भरत महाराज गङ्गा तटके ऊपर आये। गंगा-तटके पासही महाराजने अपनी सेना सहित पडाव किया। महाराजाकी आज्ञासे सुषेण सेनापतिने सिन्धकी तरह, गङ्गोत्तरीके उत्तर निष्कुटको अपने अधीन किया। फिर चक्रवर्त्तीने अष्टम भक्तसे गङ्गा देवीकी साधना की। समर्थ पुरुषोंका उपचार तत्काल सिद्धिके लिये होता है। गंगा देवीने प्रसन्न होकर महाराजको दो रत्नमय सिंहासन और एक हजार आठ रत्नमय कुम्भ—घड़े दिये। गङ्गा-देवी, रूप और लावण्यसे कामदेवको भी किंकर तुल्य करने वाले महाराजको देखकर क्षोभको प्राप्त हुई; अर्थात् वह महाराजका कामदेवको शर्माने वाला रूप-लावण्य देखकर उन पर आशिक हो गई। गङ्गादेवीने मुखचन्द्रको अनुसरण करने वाले मनोहर तारागण जैसे मोतियोंके गहने सारे शरीरमें पहने थे। केलेके अन्दरकी त्वचा या गाभे जैसे वस्त्र उन्होंने शरीरमें पहने थे। जो उसके प्रवाह जलके परिणामको पहुँचे जान पड़ते थे। रोमाञ्च रूपी कंचुकि या आँगीसे उसकी स्तनोंके ऊपरकी कंचुकि तड़ातड़ फटती थी और स्वयम्वरकी मालाकी तरह वे अपनी धवल दृष्टि महाराज पर फेंकती थीं। इस दशाको प्राप्त हुई गङ्गादेवीने क्रीड़ा करनेकी इच्छासे प्रेमपूरित गद्‌गद् वाणीसे महाराज भरतकी बहुत कुछ खुशामद और प्रार्थना की और उन्हें

अपने रतिगृहमें ले गईं। वहाँ महाराजने उनके साथ नाना प्रकारके भोग-विलास किये और एक हजार वर्ष एक दिनकी तरह विता दिये। शेपमें महाराजने गङ्गादेवीको समझा-बुझा कर उनसे विदा ली और रतिगृहसे बाहर आये। इसके बाद उन्होंने अपनी प्रबल सेनाके साथ खण्डप्रपाता गुफाकी ओर कूच किया।

खण्ड प्रपाता खोलकर निकलना।

जिस तरह केशरी सिंह एक वनसे दूसरे वनमें जाता है, इसी तरह अखण्ड पराक्रमशाली चक्रवर्त्ती महाराज उस स्थानसे खण्डप्रपाताके नजदीक पहुँचे। गुफासे थोड़ी दूर पर इस बलिष्ट राजाने अपनी छावनी डाली। वहाँ उस गुफाके अधिष्ठायक नाट्यमाल देवको मनमे याद कर उन्होंने अष्टम तप किया। इससे उस देवका आसन काँपने लगा। अवधिज्ञान मे भरतचक्रवर्त्तीको आये हुए जान, जिस तरह क़र्ज़दार साहूकारके पास आता है, उसी तरह वह भेंट लेकर महाराजके सामने आया। महत् भक्तिवाले उस देवने छै खण्ड पृथ्वीके आभूषणरूप महाराजको अर्पण किये और उनकी सेवा बन्दगी स्वीकार की। नाटक कर चुके हुए नटकी तरह, नाट्यमाल देवको विचारशील चक्रवर्त्तीने प्रसन्न होकर विदा किया। और फिर पारणा कर उस देवका अष्टाह्निका उत्सव किया। इसके बाद चक्रवर्त्तीने सुषेण सेनापतिको खण्ड-

प्रपाता गुफा खोलनेका हुक्म दिया। सेनापतिने मंत्रके स-मान, नाट्यमाल देवको मनमें याद करके, अष्टमकर पौषधालय में पौषधव्रत ग्रहण किया। अष्टमके अन्तमें पौषधागारसे निकल कर प्रतिष्ठामें श्रेष्ठ आचार्य्य जिस तरह बलि-विधान करता है, उसी तरह बलि-विधान किया। फिर प्रायश्चित्त और कौतुक मंगलकर, थोड़ेसे कीमती कपड़े पहन, हाथमें धूप-दानी ले, गुफाके पास जा, उसे देखते ही पहले नमस्कार कर, उसके द्वारकी पूजा की और वहाँ अष्टमंगलिक लिखे। इसके बाद किवाड़ खोलनेके लिये सात आठ कदम पीछे हटा। इसके बाद मानो किवाड़ खोलनेकी सुवर्णमय कुंजी हो, इस तरह दण्डरत्न ग्रहण किया और उससे द्वारपर प्रहार किया—चोटें मारी। सूर्यकी किरणोंसे जिस तरह कमल खिलता है, उसी तरह दण्डरत्नकी चोटोंसे दोनों द्वार खुल गये। गुफाका द्वार खुलनेकी ख़बर महाराजको दी गई। समाचार मिलते ही हाथीके कन्धे पर सवार हो, हाथीके दाहने कुम्भस्थलके ऊँचे स्थान पर "मणिरत्न" रखकर महाराजने गुफामें प्रवेश किया। आगे-आगे महाराज और पीछे-पीछे फौज चलती थी। गुफामें अँधेरा था, इसलिये महाराज पहलेकी तरह काँकिणी रत्नसे मंडल बनाते हुए गुफामें चले। जिस तरह दो सखियाँ तीसरीसे मिलती हैं, उसी तरह गुफाकी पश्चिम ओर को दीवारमें से निकल कर, पूरबकी दीवारके नीचे होकर उन्मग्ना और निमग्ना नामकी दो नदियाँ गंगामें मिलती हैं। वहाँ

पहुँचते ही, पहले की तरह, दोनों नदियों पर पुलिया और पग-दण्डी बना, चक्रवर्त्ती सेना समेत पार हो गये। सेनाके शब्दसे क्षुभित हो वैताढ्य पर्वतने प्रेरणा की हो, इस तरह गुफा-के दक्खनी द्वार तत्काल आप-से-आप खुल गये। केशरी सिंहके समान नरकेशरी भरत महाराज गुफाके बाहर निकले और गंगाके पश्चिमी किनारे पर उन्होंने पड़ाव डाला।

नौ निधानकी प्राप्ति।

वहाँ नौनिधानको उद्देश करके पृथ्वीपतिने पहलेके तपसे उपार्जन की हुई लब्धियोंसे होनेवाले लाभके मार्गको दिखाने वाला अष्टम तप किया। अष्टमके शेषमें नौनिधि प्रकट हुए और चक्रवर्त्तीके पास आये। उनमेंसे प्रत्येक निधि एक एक हज़ार यक्षोंसे अधिष्ठित थे। उन नौऊ निधियोंके नैसर्ग, पाँडुक, पिंगल, सर्वरत्नक, महापद्म, काल, महाकाल, माणव और शंखक ये नाम थे। आठ चक्रों पर वे प्रतिष्ठित थे। वे आठ योजन—चौंसठ मील ऊँचे, नौ योजन—बहत्तर मील विस्तृत और दश योजन—अस्सी मील लम्बे थे। वैडूर्यमणिके किवाड़ोंसे उनके मुँह ढके हुए थे। वे एक समान सुवर्ण और रत्नोंसे भरे हुए थे एवं उनपर चक्र, चन्द्र और सूर्यके चिह्न थे। उन निधियोंके नामानुसार पल्योपम आयुष्य वाले नागकुमार निकायके देव उनके अधिष्ठायक होकर रहते थे।

उनमेंसे नैसर्ग नामके निधिसे छावनी, शहर, गाँव, खान,

द्रोणमुख, मंडप और पत्तन आदि स्थानोंका निर्माण होता है; यानी ये सब स्थान तैयार होते हैं। पांडुक नामकी निधिसे मान, उन्मान और प्रमाण—इन सबकी गणित और बीज तथा धान्य या अनाजकी उत्पत्ति होती है। पिंगल नामकी निधिसे नर, नारी, हाथी और घोड़ोंके सब तरहके आभूषणोंकी विधि जानी जा सकती है। सर्वरत्नक नामकी निधिसे चक्ररत्न आदि सात एकेन्द्रिय और सात पंचन्द्रिय रत्न पैदा होते हैं। महापद्म नामकी निधिसे सब तरहके शुद्ध और रंगीन वस्त्र तैयार होते हैं। काल नामकी निधिसे भूत, भविष्यत और वर्तमान कालका ज्ञान, खेती प्रभृति कर्म एवं अन्य शिल्प—कारीगरीके कामोंका ज्ञान होता है। महाकालकी निधिसे प्रवाल—मूँगा, चाँदी, सोना, मोती, लोहा तथा लोह प्रभृति धातुओंकी खान उत्पन्न होती है। माणव नामक निधिसे योद्धा - आयुध, हथियार और कवच—ज़िरहबख्तरकी सम्पत्तियों तथा सब तरहकी युद्ध-नीति और दण्ड-नीति प्रकट होती हैं। नवीं शंखक नामकी महानिधिसे चार प्रकारके काव्योंकी सिद्धि, नाट्य—नाटककी विधि और सब तरहके बाजे उत्पन्न होते हैं। इस प्रकारके गुणोंवाली नौ निधियाँ आकर कहने लगीं कि, "हे महाभाग! हम गंगाके मुखमें मागधतीर्थकी निवासिनी हैं। आपके भाग्यके वश होकर, आपके पास आई हैं, इसलिये अपनी इच्छानुसार—अविश्रान्त होकर—हमारा आप भोग लीजिये और दीजिये। कदाचित समुद्र भी क्षयको प्राप्त हो जाय, समुद्र भी

घट जाय, पर हम कभी भी क्षयको प्राप्त नहीं होतीं। हममें कमी नहीं आती।" यह कह कर सारी निधियाँ—नौऊ निधियाँ महाराजके अधीन हो गईं। इसके बाद विकार-रहित राजाने पारणा किया, और वहीं उनका अष्टाह्निका उत्सव किया। महाराजकी आज्ञासे सुषेण सेनापति भी गंगाके दक्खिन निस्कुट को, छोटे भीलोंके गाँवकी तरह, लीलामात्रमें जीतकर आ गया। पूर्वापर समुद्रको लीलासे आक्रान्त करके रहनेवाला मानों दूसरा वैताढ्य पर्वत हो, इस तरह महाराज भी वहाँ बहुत समय तक रहे।

अयोध्याकी ओर प्रयाण

एक दिन सारे भारत क्षेत्रका साधन करने वाला भरत पतिका चक्र अयोध्याकी ओर चला। महाराज भी स्नान कर, कपड़े पहन बलिकर्म प्रायश्चित्त और कौतुक मंगल कर इन्द्रके समान गजेन्द्र पर सवार हुए। कल्पवृक्ष ही हों ऐसी नवनिधियोंसे पुष्ट भण्डार वाले, सुमंगलाके चौदह स्वप्नोंके अलग अलग फल हों ऐसे चौदह रत्नोंसे निरन्तर युक्त, राजाओंकी कुल-लक्ष्मी जैसी, जिन्होंने कभी सूरज भी आँखोंसे नहीं देखा, ऐसी अपनी व्याहता बत्तीस हजार राजकन्याओं सहित मानों अप्सरा हो ऐसी बत्तीस हजार देशोंमें व्याही हुई अन्य बत्तीस हज़ार सुन्दरी स्त्रियोंसे सुशोभित, सामन्त जैसे अपने आश्रित बत्तीस हजार राजाओं तथा विन्ध्याचल जैसे चौरासी लाख हाथियोंसे विराजित और मानों

समस्त जगतमें इकट्ठे किये हों ऐसे चौरासी लाख घोड़ों, उतने ही रथों और पृथ्वीको ढक देने वाले छियानवे करोड़ योद्धाओंसे घिरे हुए भरत चक्रवर्त्ती रवानः होनेके पहले दिनसे साठ हज़ारवें वरस चक्रके मार्गको अनुसरण करते हुए अयोध्या की ओर चले। इसका खुलासा यह है, कि महाराज जब अयोध्याको चले, तब नवनिधियोसे भरे भण्डार, चौदह रत्न, बत्तीस हज़ार राजकन्यायें, अन्य बत्तीस हज़ार सुन्दरी स्त्रियाँ, चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख घोड़े, चौरासी लाख रथ और छियानवे करोड योद्धा और बत्तीस हज़ार सामन्त राजा—ये सब उनके साथ थे। वे प्रयाणके दिनसे ६० हज़ारवे वर्ष फिर अयोध्याको वापस लौटे।

रास्तेमें चलते हुए चक्रवर्त्ती, सेनासे उड़ी हुई धूलके स्पर्श से मलिन हुए खेचरोंको पृथ्वी पर लेटाये हों ऐसा कर देते थे; पृथ्वीके मध्य भागमें रहने वाले भवनपति और व्यन्तरोंको—सेनाके भारसे—पृथ्वीके फट पड़नेकी आशङ्कासे भयभीत कर देते थे; गोकुलमें विकस्वर दृष्टिवाली गोपाङ्गनाओंका माखन रूप अर्घ्य अमूल्य हो इस तरह भक्तिसे ग्रहण करते थे; वन-वनमें हाथियोंके कुम्भस्थलमें से पैदा हुए मोंतियोंकी भीलोंद्वारा दी हुई भेटको ग्रहण करते थे, पर्वत पर्वतके राजाओं द्वारा आगे रखे हुए रत्न और सोनेकी खानोंके महत् सार को अनेक बार स्वीकार करते थे। मानों गाँव-गाँवमें उत्कण्ठित बान्धव हों, ऐसे गाँवके बड़े बूढ़ोंके नज़राने प्रसन्नतासे

स्वीकार करते और उन पर कृपा करते थे, खेतोंमें पड़ने वाली गायोंकी तरह, गावोंमें चारो ओर फैलने वाले सैनिकोंको अपने आज्ञारूपी उग्रदण्डसे रोकते थे, बन्दरोंकी तरह वृक्षोंपर चढ़ कर अपने तई (महाराजके तई) हर्ष-पूर्वक देखने वाले गाँवके बालकोंको पिताकी तरह प्रेमसे देखते थे, धन, धान्य और जीवनसे निरुपद्रवी गाँवोंकी सम्पत्तिको अपनी नीतिरूपी लता के फलरूपसे देखते थे; नदियोंको कीचयुक्त करते थे, सरोवरो सोखते थे और बावड़ी तथा कुओंको पाताल-विवरकी तरह खाली करते थे। दुर्विनीत शत्रुओंको शिक्षा देनेवाले महाराज भरत इस तरह मलय-पवनकी तरह लोगोंको सुख देते हुए और धीरे-धीरे चलते हुए अयोध्यापुरीके समीप आ पहुँचे। मानों अयोध्याका अतिथिरूप सहोदर हो, इस तरह अयोध्याके पासकी ज़मीनमें महाराजने पड़ाव डाला। फिर राज शिरोमणि भरतने राजधानीको मनमें यादकर उपद्रव रहित प्रीतिदायक अष्टम तप किया। अष्टम भक्तके अन्तमें पौषधालयसे बाहर निकल, अन्य राजाओंके साथ दिव्य भोजनसे पारणा किया।

अयोध्याकी विशेष शोभा।

इधर अयोध्यामें स्थान-स्थान पर, मानो दिग्दिगन्तसे आई हुई लक्ष्मीके खेलनेके झूले हों; ऐसे ऊंचे ऊंचे तोरण बँधने लगे। जिस तरह भगवानके जन्म समयमें देवता सुगन्धित जलकी वर्षा करते हैं, उसी तरह नगरके लोग प्रत्येक

राह-वाटमें केशरके जलसे छिडकाव करने लगे। मानों निधियाँ अनेक रूपसे आगे हो आगई हों, इस तरह मंच सोनेके खम्भोंसे बनवाने लगे। उत्तर कुरु देशमें पांच नदियोंके दोनों ओर रहने वाले दश दश सुवर्णगिरि शोभते हैं, इसी तरह राहकी दोनों ओर आमने-सामनेके मंच शोभने लगे। प्रत्येक मंचमें बाँधे हुए रत्न-मय तोरण इन्द्रधनुषकी श्रेणीकी शोभाका पराभव करने लगे और गन्धर्वोंकी सेना विमानोंमें बैठती हों, इस तरह गानेवाली स्त्रियाँ मृदंग और बीण बजानेवाले गन्धर्वोंके साथ, उन मंचों पर बैठने लगीं। उन मंचोंके ऊपरके चन्दवोंके साथ बँधी हुई मोतियोकी झालरें, लक्ष्मीके निवास गृहकी तरह कान्तिसे दिशाओंको प्रकाशित करने लगीं। मानो प्रमोदको प्राप्त हुई नगरदेवीका हास्य हो इस तरह चँवरोंसे, स्वर्गमण्डनकी रचना के चित्रोंसे, कौतुकसे आये हुए नक्षत्र—तारे हों ऐसे दर्पणोंसे, खेचरोंके हाथोंके रूमाल हों ऐसे वस्त्रोंसे और लक्ष्मीकी मेखला विचित्र मणिमालाओंसे नगरके लोग ऊँचे किये हुए खम्भोंमें हारकी शोभा करने लगे। लोगों द्वारा बाँधी हुई घुंघरुओं वाली पताकायें, सारस पक्षीके मधुर शब्द वाले शरद् ऋतुके समय को बताने लगी। व्यापारी लोग हरेक दूकान और मन्दिरोंको यक्ष कर्दमके गोबरसे लीपने लगे और उनके आँगनोंमें मोतियोंके साथिये पूरने लगे। जगह-जगह अगरके चूर्णकी धूपका धूआँ ऊँचा उठ रहा था, इससे ऐसा जान पड़ता था, गोया स्वर्गको भी धूपित करनेकी इच्छा करते हैं।

इस तरह नगरके लोगोंकी सजायी हुई नगरीमें प्रवेश करने की इच्छासे पृथ्वीन्द्र चक्रवर्त्ती शुभ मुहूर्त्तमें मेघवत् गर्जना करनेवाले हाथी पर चढ़े। आकाश जिस तरह चन्द्रमण्डलसे शोभता है; उसी तरह कपूरके चूर्ण जैसे सफेद छत्रोंसे वे शोभते थे। दो चँवरोंके मिषसे, अपने शरीरोंको छोटा बनाकर, आई हुई गंगा और सिन्धने उनकी सेवा की हो, ऐसा मालूम होता था। स्फटिक पर्वतोंकी शिलाओंमें से सार लेकर बनाये हों, ऐसे उज्वल, अति सूक्ष्म, कोमल और घन—ठोस कपड़ोंसे वे शोभते थे, मानों रत्नप्रभा पृथ्वीने प्रेमसे अपना सार अर्पण किया हो, ऐसे विचित्र रत्नालङ्कारोंसे उनके सारे अंग अलंकृत थे। फणों पर मणिको धारण करनेवाले नागकुमार देवोंसे घिरे हुए नागराजकी तरह, वे माणिक्यमय मुकुटवाले राजाओंसे घिरे हुए थे। जिस तरह चारण देवराज इन्द्रके गुणोंका कीर्त्तन करते हैं; उसी तरह जय जय शब्द बोलकर आनन्दकारी चारण और भाट उनके अद्भुत गुणोंका कीर्त्तन करते थे और मंगल बाजे प्रति शब्दके मिषसे, आकाश भी उनकी मंगल ध्वनि करता हुआ सा जान पड़ता था। इन्द्रके समान तेजस्वी और पराक्रमके भण्डार महाराज चलनेके लिए गजेन्द्रको प्रेरणा कर आगे चलने लगे। मानों स्वर्गसे उतरे हों अथवा पृथ्वी में से निकले हों, इस तरह बहुत समयके बाद आनेवाले राजाके दर्शन करनेकी इच्छासे दूसरे गाँवोंसे भी आदमी आये थे। महाराजकी सारी सेना और दर्शनार्थ आये हुए लोग—

इन दोनोंके इकट्ठे होनेसे, सारा मृत्युलोक एक स्थानमें पिण्डीभूत हुआ सा जान पड़ता था। सेना और आये हुए लोगों की भीड़से उस समय तिलका दाना भी फेंकनेसे ज़मीन पर न पड़ता था। कितने ही लोग भाटोंकी तरह खड़े होकर खुशीसे स्तुति करते थे। कोई कोई चंचल भँवरोंकी तरह अपने वस्त्राञ्चलसे हवा करते थे। कोई मस्तक पर अञ्जलि जोड़ कर सूर्यकी तरह नमस्कार करते थे। कोई मालाकार रूपमें फल और फूल अर्पण करते थे। कोई कुलदेवकी तरह उनकी वन्दना करता था और कोई गोत्रके बूढ़े आदमीकी तरह उन्हें आशीर्वाद देता था।

अयोध्या नगरीमें प्रवेश।

जिस तरह ऋषभदेव भगवान् समवशरणमें प्रवेश करते हों, इस तरह महाराजने चार दरवाजेवाली अपनी नगरीमें पूरवी दरवाजेसे प्रवेश किया। लग्न-घड़ीके समय एक साथ वाजोंकी आवाज हो, इस तरह उस समय प्रत्येक मञ्च पर संगीत होने लगा। महाराज आगे चले, तब राजमार्गके घरोंमें रहनेवाली स्त्रियाँ हर्षसे दृष्टिके समान धानी उड़ाने लगीं। पुरवासियों द्वारा फूलोंकी वर्षासे ढका हुआ महाराजका हाथी पुष्पमय रथ-जैसा बन गया। उत्कंठित लोगोंकी अत्यन्त उत्कंठा देखकर चक्रवर्ती राजमार्गमें धीरे-धीरे चलने लगे। लोग हाथीसे न डर कर, महाराजके पास आकर फल वगैरह

भेंट करने लगे। क्योंकि हर्ष ऐसा ही बलवान है। राजा हस्तीके कुम्भस्थलमें अंकुशकी ताड़ना करके उसे हर मचके सामने खड़ा रखते थे। उस समय दोनों तरफके मंचोंके ऊपर, आगे खड़ी हुई सुन्दरी रमणियाँ एक साथ कपूरसे चक्रवर्त्ती की आरती उतारती थीं। दोनों तरफ आरती होनेसे, महाराज दोनों ओर सूर्य-चन्द्र धारण करने वाले मेरु पर्वतकी शोभा को हरण करते थे। अक्षतोंके साथ मोतियोंसे भरे हुए थाल ऊँचेकर चक्रवर्त्तीको बधाई देनेके लिए दूकानोंके आगे खड़े हुए वणिक लोग उनको दृष्टिसे आलिङ्गन करते थे। राजमार्ग की बड़ी बड़ी हवेलियोंके दरवाज़ोंमें खड़ी हुई कुलीन स्त्रियों के किये हुए माँगलिकको महाराज अपने बहनोंके किये हुए माँगलिककी तरह मानते थे। दर्शनोंकी इच्छासे पीड़ित कितने ही लोगोंको देखकर, वे अपना अभयप्रद हाथ ऊंचा करके छड़ीदारोंसे उनकी रक्षा करवाते थे। इस तरह चलते-चलते महाराजने अपने पिताके सतमञ्जिले महलमें प्रवेश किया। उस महलके आगेकी जमीनमें राजलक्ष्मीके क्रीड़ापर्वत—जैसे दो हाथी बँधे थे। दो चकवोंसे जिस तरह जल-प्रवाह शोभता है, उसी तरह दो सोनेके कुलड़ोंसे उस महलका विशाल द्वार सुशोभित था और इन्द्रनीलमणिसे बने हुए कंठाभरणकी तरह, आमके पत्तोंके मनोहर तोरण वन्दनवारोंसे वह राजमहल शोभता था। उसमें कितनी ही जगह मोतियोंसे, कितनी ही जगह कपूरसे और कितनी ही जगह चन्द्रकान्तमणिसे, स्वस्तिक

और मंगलिक किये गये थे। कहीं चीनी कपड़ोंसे, कहीं रेशमी कपड़ोंसे और कहीं दिव्य वस्त्रोंसे लगाई हुई पताकाओंकी पंक्तियोसे वह महल शोभायमान था। उस महलके आँगनमें कहीं कपूरके पानीसे, कहीं फूलोंके रससे और कही हाथियोंके मद-जलसे छिड़काव किया गया था। उसके ऊपर जो सोनेके कलश रखे थे, उससे ऐसा मालूम होता था, गोया उनके मिश से वहाँ सूर्यने विश्राम किया है। उस राजगृहके आँगनमें अग्र-वेदी पर अपने पैर जमाकर छड़ीदारने हाथका सहारा देकर महाराजको हाथीसे उतारा और प्रथम आचार्यके समान अपने सोलह हजार अंगरक्षक देवोका पूजन कर महाराजने उन्हें बिदा किया। इसी तरह बत्तीस हज़ार राजे, सेनापति, प्रोहित, गृहपति और वर्द्धकिको भी महाराजने विसर्जन किया। हाथि-योंको जिस तरह आलान—स्तम्भसे बाँधनेकी आज्ञा देते हैं, उसी तरह तीनसौ तिरेसठ रसोइयोंको अपने-अपने घर जानेकी आज्ञा दी। उत्सवके अन्तमें अतिथिकी तरह सेठोंको, *श्रेणी-प्रश्रेणियोंको, दुर्गपालों और सार्थवाहोको भी जाने की छुट्टी दी। पीछे इन्द्राणी के साथ इन्द्रकी तरह, स्त्रीरत्न सुभद्राके साथ बत्तीस हज़ार राज-कुलमें जन्मी हुई रानियोंके साथ उतनी ही; यानी बत्तीस हज़ार देशके आगेवानोंकी कन्याओंके साथ बत्तीस-बत्तीस पात्रवाले उतने ही नाटकोंके साथ मणिमय शिलाओंकी पंक्तिपर दृष्टि

* माली वगैरः नौ जातियां श्रेणी कहलाती हैं और घांची प्रभृति नौ जातियाँ प्रश्रेणी कहलाती हैं।

फेंकते हुए महाराजने,- यक्षपति कुवेर जिस तरह .कैलाशमें प्रवेश करते हैं ; उसी तरह उत्सवके साथ राजमहलमें प्रवेश किया । वह क्षणभर पूरबकी तरफ मुँह करके सिंहासन पर बैठे और कितनी ही सत्कथाएं करके स्नानागार या गुशल-खानेमें गये। हाथी जिस तरह सरोवरमे स्नान करता है, उसी तरह स्नान करके परिजनोंके साथ अनेक प्रकारके रसोंवाले आहारका भोजन किया। पीछे योगी जिस तरह योग में काल निर्गमन करता है—समय विताता है, उसी तरह राजा ने नवरस पूर्ण नाटकों और मनोहर संगीतमें कितनाही समय विताया ।

चक्रवर्तीका राज्याभिषेकोत्सव ।

एक समय सुरनरोंने आकर प्रार्थना की कि महाराज! आपने विद्याधरपति समेत षट्खण्ड पृथ्वीका साधन किया है—छहों खण्ड मही जीत ली है ; इस कारण हे इन्द्रके समान पराक्रमशाली! अगर आप हमें आज्ञा दें, तो हम स्वच्छन्दता-पूर्व्वक आपका महाराज्याभिषेक करें । महाराजने आज्ञा दे दी,--तब देवताओंने शहरके वाहर ईशान कोणमें, सुधर्मा सभाके एक खण्ड जैसा मण्डप बनाया । वे सरोवर, नदियाँ, समुद्र और अन्यान्य तीर्थोंसे जल, औषधि और मिट्टी लाये । महाराजने पौषधालयमें जाकर अष्टम तप किया, क्योंकि तपसे मिला हुआ राज्य तपसे ही सुखमय रहता है । अष्टम तप पूर्ण होनेपर

अन्तःपुर और परिवारसे घिर कर हाथी पर बैठे और उस मण्डपमें गये। फिर अन्तःपुर और हज़ारों नाटकोंके साथ उन्होंने उच्च रूपसे बनाये हुए अभिषेक-मण्डपमें प्रवेश किया। वहाँ स्नान-पीठमे सिंहासन पर चढ़े, उस समय हाथीके पर्वत-शिखर पर चढ़नेका सा दृश्य हुआ। मानों इन्द्रकी प्रीतिके लिये हो, इस तरह वे पूर्व दिशाकी ओर मुंह करके रत्नसिंहासन पर बैठे। थोड़ेही हों इस तरह बत्तीस हज़ार राजा लोग उत्तर ओरकी सीढ़ियोंसे स्नान-पीठ पर चढ़े और चक्रवर्त्तीके पास भद्रासनोंपर हाथ जोड़कर उसी तरह बैठे, जिस तरह देवता इन्दके सामने हाथ जोड़कर बैठते हैं। सेनापति, गृहपति, वर्द्धकि, पुरोहित और सेठ-साहूकार प्रभृति दक्खनकी सीढ़ियोंसे स्नान-पीठ पर चढ़े। मानों चक्रवर्त्तीसे प्रार्थना करनेकी इच्छा रखते हों, इस तरह अपने योग्य आसनों पर हाथ जोड़कर बैठ गये। पीछे आदिदेवका अभिषेक करनेके लिये इन्द्र आये हों उस तरह इस नरदेवका अभिषेक करनेके लिये उनके आभियोगिक देव निकट आये। जलपूर्ण होनेसे मेघ जैसे, मानों चकवा पक्षी हो इस तरह मुख भाग पर कमल वाले और भीतरसे जल गिरते समय बाजेकी सी आवाज़ करने वाले स्वाभाविक और वैक्रियक रत्न कलशोंसे वे सब महाराजका अभिषेक करने लगे। मानों अपने ही नेत्र हों ऐसे जलसे भरे हुए कलशोंसे बत्तीस हज़ार राजाओंने, शुभ मुहूर्त्तमें उनका अभिषेक किया और अपने सिरपर कमल कोषकी तरह